Hindi-II
DHIN201

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

हिंदी–2

HINDI - 2

Copyright © 2012
All rights reserved with publishers

Produced & Printed by
USI PUBLICATIONS
2/31, Nehru Enclave, Kalkaji Extn.,
New Delhi-110019
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)

हिंदी – 2

उद्देश्य:

1. विद्यार्थियों को भक्तिकालीन काव्य से परिचित करवाना।
2. विद्यार्थियों को काव्य में आये हुए कला पक्ष का ज्ञान देना।
3. विद्यार्थियों को विभिन्न गद्य विधाओं से परिचित करवाना।
4. विद्यार्थियों को लिपि संबंधी जानकारी देना।
5. विद्यार्थियों को व्यावहारिक व्याकरण और अनुवाद संबंधी जानकारी देना।

Sr. No.	Content
1	कावेतावली: तुलसीदास का काव्य पारेचय एवम् व्यक्तेगत विशेषताए
2	कावेतावली: पद सख्या १ से ७० तक सन्दभे साहेत व्याख्या
3	कावेतावली: मुख्य उद्देश्य। भाषाशेल
4	मीरा-माधुरी: मीराबाइ का जीवन पारेचय एवम् व्यक्तेगत विशेषताए। लीला पद को सप्रसग व्याख्या। लीला पद का सार। भाषाशेली
5	शतरज के खिलाड़ी: सप्रसग व्याख्य , सार,पात्र एव चारेत्र-चित्रण,उद्देश्य। ममता: सप्रसग व्याख्या , सार,पात्र एव चारेत्र-चित्रण,उद्देश्य।
6	आशीक्षेत का हृदय: सप्रसग व्याख्य , सार,पात्र एव चारेत्र-चित्रण,उद्देश्य। न्यायमत्र : सप्रसग व्याख्य , सार,पात्र एव चारेत्र-चित्रण,उद्देश्य। सभ्य-असभ्य: सप्रसग व्याख्य , सार,पात्र एव चारेत्र-चित्रण,उद्देश्य।
7	लिपि: अथे एव महत्व। देवनागरी लिपि का नामकरण एव विशेषताए।
8	वाक्याश के लिए एक शब्द। सान्धि-विच्छेद। अशुद्धि सशोधन
9	विराम-चिन्ह। निधारित विषय पर अनुच्छेद लेखन। आशय-लेखन।
10	उपसगे। प्रत्यय। अग्रेजी-हिन्दी वाक्याश तथा पारिभाषिक शब्द।(सूची सलग्न है)

अनुक्रमणिका (Contents)

इकाई-1:	तुलसीदास– जीवन-वृत्त एवं काव्य-परिचय	1
इकाई-2:	कवितावली– व्याख्या खण्ड (दोहा संख्या 1 से 70 तक)	17
इकाई-3:	कवितावली– मुख्य उद्देश्य	67
इकाई-4:	कवितावली– भाषा शैली	71
इकाई-5:	मीरांबाई का जीवन-परिचय एवं रचनाएँ	77
इकाई-6:	मीरा माधुरी– व्याख्या भाग (केवल लीला पद)	91
इकाई-7:	मीरा माधुरी– लीला पद का सार	105
इकाई-8:	मीरा माधुरी– भाषा-शैली	108
इकाई-9:	शतरंज के खिलाड़ी– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या	115
इकाई-10:	ममता– कथासार, चरित्र–चित्रण, सप्रसंग व्याख्या	119
इकाई-11:	अशिक्षित का हृदय– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या	124
इकाई-12:	न्यायमंत्री– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या	128
इकाई-13:	सभ्य–असभ्य– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या	132
इकाई-14:	लिपि– अर्थ एवं महत्त्व	136
इकाई-15:	देवनागरी लिपि का नामकरण एवं विशेषताएँ	140
इकाई-16:	वाक्यांश के लिए एक शब्द	150
इकाई-17:	सन्धि–विच्छेद	159
इकाई-18:	अशुद्धि संशोधन	169
इकाई-19:	विराम चिह्न	187
इकाई-20:	अनुच्छेद–लेखन	192
इकाई-21:	आशय–लेखन	196
इकाई-22:	उपसर्ग	202
इकाई-23:	प्रत्यय	209
इकाई-24:	पारिभाषिक शब्दावली– अंग्रेजी हिंदी वाक्यांश तथा पारिभाषिक शब्द	222

नोट

इकाई–1: तुलसीदास– जीवन-वृत्त एवं काव्य-परिचय

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

1.1 जीवन-वृत्त

1.2 काव्य-परिचय

1.3 सारांश

1.4 शब्दकोश

1.5 अभ्यास-प्रश्न

1.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे।

- गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

भारत के मूर्धन्य साहित्यकारों के संबंध में एक दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना यह रही है कि उनके जीवन से संबद्ध तथ्यों पर उत्तरवर्ती लेखकों को प्राय: केवल अटकलों का ही सहारा लेना पड़ता है। लेखकों द्वारा स्वयं कुछ संकेत न करने के कारण आज का समीक्षक अन्त: साक्ष्यों से जुटाए प्रभावों के आधार पर अपनी धारणा बनाता है और उनके साँचे में उन साहित्यकारों को फिट करता है। भले ही उसकी वे धारणाएं यथार्थ से दूर हों। यही स्थिति महाकवि तुलसीदास की भी है।

1.1 जीवन-वृत्त

प्राचीन साहित्यकारों के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में असंदिग्ध-सामग्री प्राय: बहुत कम मिलती है। अंत: साक्ष्य रूप आत्मोल्लेख सीमित और अस्पष्ट मिलते हैं तथा बहिर्साक्ष्य प्राय: संदिग्ध। उनपर सम्प्रदाय का रंग चढ़ा रहता है। इस प्रकार प्राचीन साहित्यकारों के जीवन-वृत्त को बहुत-कुछ अनुमान के आधार पर निर्मित करना पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृत्त इस कथन का अपवाद नहीं, यद्यपि आत्मोल्लेख अपेक्षाकृत अधिक हैं, जीवन चरितों और जनश्रुतियों की सामग्री प्रचुर है और विद्वानों ने इसकी छान-बीन में भी पर्याप्त परिश्रम किया है।

अध्ययन की आधारभूत सामग्री–अंत:साक्ष्य रूप जीवन-वृत्त सम्बन्धी आत्मोल्लेख रामचरितमानस, विनय पत्रिका, कवितावली तथा दोहावली में ही प्राय: मिलते हैं। बहि:साक्ष्य-रूप प्राप्त सामग्री को दो वर्गों में रखा जा सकता है– प्राचीन सामग्री और अर्वाचीन सामग्री। प्राचीन सामग्री के स्रोत निम्नलिखित हैं–

(क) भक्तों तथा सन्तों के उल्लेख–ये उल्लेख पुस्तक रूप भी हैं तथा छुट-पुट रूप में प्रसंगवश भी। एकाध ग्रंथ को छोड़कर अधिकांश सामग्री संदिग्ध है, साम्प्रदायिक-निष्ठा तथा भक्ति-माहात्म्य से अनुप्राणित है। मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं–

नोट

(1) नाभादास का भक्तमाल (2) प्रिया दास की टीका (3) वैष्णवदास की टिप्पणी (4) नागरीदास की 'पद प्रसंग माला' तथा 'तीर्थानन्द' (5) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता (6) गोसाई-चरित्र (7) वेणीमाधवदास का 'मूल-गोसाईं-चरित' (8) रघुबरदास का 'तुलसी चरित' (8) तुलसी साहब का आत्मचरित (10) मोरोपंत का 'तुलसी स्तव' (11) भविष्य पुराण (12) मोहन साईं का एक गीत।

(ख) स्थानीय सामग्री– काशी, अयोध्या, राजापुर तथा सोरों से प्राप्त सामग्री। इस विषय में सोरों से प्राप्त सामग्री जितनी अधिक है, उतनी विवादास्पद भी।

(ग) जनश्रुतियाँ– ये जनश्रुतियाँ कई प्रकार की हैं। अधिकांश में तुलसीदास की भक्ति तथा अलौकिक शक्ति अर्थात् चमत्कारों का ही परिचय मिलता है। कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों, भक्तों तथा कवियों (जहांगीर, रहीम, टोडरमल, नन्ददास, मीरा, केशवदास) से भेंट या पत्र-व्यवहार आदि के सम्बन्ध में भी हैं। कुछ का सम्बन्ध तुलसी के जीवन से है जैसे रत्नावली के कथन 'लाज न लागत आपको...' से तुलसी का वैराग्य, हुलसी का गोद लिये तुलसी को फिरना आदि। अधिकांश जनश्रुतियाँ ऊपर दिये ग्रन्थों में निर्दिष्ट हैं। तुलसी के जीवन-वृत्त से संबंधित आधुनिक सामग्री के भी तीन स्त्रोत हैं–

(क) विदेशी-विद्वानों के मत– इनमें विल्सन, गार्सा द तासी, ग्राउस, ग्रियर्सन, ग्रीव्स, टेसीटरी आदि के मत उल्लेखनीय हैं। इनमें भी विशेषकर उल्लेखनीय विद्वान एफ० एस० ग्राउज हैं। जिन्होंने अंग्रेजी में रामचरितमानस का अनुवाद किया तथा दूसरे डा० ग्रियर्सन जिन्होंने वास्तव में तुलसीदास के जीवन और साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसंधान का सूत्रपात किया।

(ख) तुलसी साहित्य के सम्पादक– रामचरितमानस तथा अन्य रचनाओं का समय-समय पर सम्पादन करते हुए विद्वान् सम्पादकों ने तुलसी सम्बन्धी अध्ययन को अग्रसर करने में विशेष कार्य किया है।

(ग) तुलसी साहित्य के समीक्षक– भारतीय आलोचकों में सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास 'शिवसिंह सरोज' में सं० 1934 में बेनीमाधव के 'गुसाई-चरित्र' के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला। इसके उपरांत इस विषय पर आधारित समीक्षाएं पत्र-पत्रिकाओं में भी निकलीं तथा पुस्तकाकार रूप में भी।

तुलसीदास का जीवन-वृत्त– अंत: साक्ष्य तथा बहिसाक्ष्य के आधार पर तुलसीदास के जीवन की रूप-रेखा निश्चित करने के लिए यद्यपि आधारभूत सामग्री की कमी नहीं किन्तु फिर भी एक सुनिश्चित जीवन-वृत्त देना संभव नहीं हो सका क्योंकि राजापुर और सोरों के आग्रह से अनुप्रेरित ऐसी सामग्री प्रस्तुत की गई है कि जिसके द्वारा मतैक्य पाना कठिन है।

तुलसीदास का जन्म–*(i)* **तुलसीदासजी के जन्म पर तीन दृष्टियों से विचार किया जा सकता है–** संवत् तथा जन्मतिथि की दृष्टि से, जन्म-स्थान की दृष्टि से तथा जन्म के समय शुभ-अशुभ मुहूर्त की दृष्टि से।

(ii) **तुलसीदास का जन्म संवत् तथा जन्म तिथि–** अंत:साक्ष्य में प्रत्यक्ष रूप से जन्म-संवत् तथा जन्म-तिथि का कोई उल्लेख नहीं। किन्तु इस सम्बन्ध में दो विचार-सूत्र उपलब्ध होते हैं। एक 'रामचरितमानस' से तथा दूसरा तुलसीदास की तथाकथित रचना 'राममुक्तावली' से। रामचरितमानस में कवि ने रचना के आरंभकाल का उल्लेख किया है–"संवत सोरह सै एकतीसा, करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।" यदि मानस की रचना 40 वर्ष की अवस्था में कल्पित की जाए तो कवि का जन्मकाल सं० 1590 के लगभग अनुमानित किया जा सकता है। दूसरा अनुमान 'राममुक्तावली' देती है। इस ग्रन्थ में एक पंक्ति है–"पवन तनय मो सन कह्यौ पाँच बीस अरु बीस"। इस पंक्ति से 'पाँच बीस' अर्थात् सौ और बीस अर्थात् 120 वर्ष की आयु का अर्थ लगाकर तथा संवत् 1680 को कवि का निधनकाल मानते हुए इस आधार पर तुलसीदास का जन्म-काल 1560 संवत् निश्चित किया जा सकता है। किन्तु एक तो रचना-शैली, छंद योजना तथा विचारधारा की दृष्टि से यह तुलसी की रचना ही नहीं मानी जाती तथा दूसरे 1560 को जन्मकाल मानने से मानस की रचना इकहत्तर वर्ष की अवस्था में माननी पड़ेगी, पंचायतनामा (जिसका समय सं० 1669) एक सौ नौ वर्ष की अवस्था में, जो किसी प्रकार भी मान्य नहीं। अतएव अंत:साक्ष्य तुलसीदास

नोट

के जन्म संवत् तथा जन्मतिथि के सुनिश्चित निर्धारण में कोई विशेष सहायता नहीं देता।

'मूल गुसाई चरित' में जन्म-काल का उल्लेख इस प्रकार है– "पन्द्रह सौ चौवन वर्ष कालिन्दी के तीर, सावन सुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ सरीर" सं० 1961 में विरचित 'मानस-मयंक' की टीका में भी पंडित शिवलाल पाठक ने इसी जन्मकाल का उल्लेख किया है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने 'मूल गोसाई चरित' को प्रामाणिक मानते हुए इस जन्म-संवत् की पुष्टि की है। किन्तु श्री रामनरेश त्रिपाठी, डा० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों की दृष्टि में 'मूल गोसाई चरित' को कवि के जीवन-वृत्त के लिये आधार नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त 'मूल गोसाई चरित' में दी हुई तिथि गणना के आधार पर ठीक नहीं ठहरती। डॉ० माताप्रसाद गुप्त इस संवत् को मान्यता देने से कवि की जन्म-परम्परा में कठिनाई अनुभव करते हैं।

शेष एक ही मत संवत् 1589 का रह जाता है। इसका समर्थन तीन ओर से हुआ है। एक ओर डा० ग्रियर्सन का कहना है–"सबसे अधिक विश्वस्त विवरणों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म सं० 1589 में हुआ था।" दूसरी ओर मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी पंडित तथा अपने आपको तुलसीदास की शिष्य परम्परा में मानने वाले पं० रामगुलाम द्विवेदी भी भक्तों की जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 मानते हैं। तीसरी ओर सं० 1820 से 1900 में वर्तमान तुलसी साहिब ने अपने चरित्र में, जो 'घट रामायण' में संकलित है, तुलसीदास का जन्म सं० 1589, भाद्रपद शुक्ल 11, मंगलवार बताया है। यह तिथि विगत-संवत् वर्ष प्रणाली पर गणना करने से शुद्ध ठहरती है। इस प्रकार तुलसी के जन्म-संवत् तथा जन्म तिथि के संबंध में पहले तो कोई निर्भ्रान्त मत नहीं मिलता। अनुमान तथा संभावनाओं के आधार पर यदि हम कोई तिथि तथा संवत् सुनिश्चित करना चाहें तो संवत् 1554 से कहीं अधिक संवत् 1589 उचित है।

किन्तु डॉ० भागीरथ मिश्र का विचार केवल परम्परा को मान्यता देता है और यह परम्परा जिन चरित्रों पर आधारित है, उनकी वैज्ञानिक-परीक्षा नहीं करता और न ही इस संवत् की संभावना-असंभावना पर विचार करता है। उन्होंने 'मूल गोसाई चरित' को आग्रहपूर्वक प्रामाणिक रचना स्वीकार करते हुए साथ में यह भी कह दिया है, "अतएव हमें, जो कुछ अशुद्ध निकलता है, उसको छांटकर, अन्य बातों के मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।" यह वस्तुस्थिति सिद्ध करती है कि लेखक परम्परा पर जोर दे रहा है, वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा सत्य की खोज पर नहीं। तुलसीदास की ख्याति का आधार रामचरितमानस था। यदि उसका जन्म सं० 1554 मानें तो यह मानना होगा कि उन्हें अस्सी वर्ष की अवस्था के उपरांत ख्याति प्राप्त हुई। यह किसी प्रकार भी उचित प्रतीत नहीं होता। अतएव संवत् 1589 ही अधिक संभावित जन्म काल है।

तुलसी का जन्म स्थान–तुलसीदास के जन्म-स्थान को लेकर बड़ा मतभेद मिलता है। इस संबंध में हाजीपुर, तारी, राजापुर तथा सोरों– चार स्थानों के नाम सामने आये हैं। हाजीपुर का उल्लेख विल्सन द्वारा हुआ था, किन्तु पुष्ट प्रमाण के अभाव में इसे मान्यता नहीं मिली। तारी का उल्लेख डा० ग्रियर्सन ने किया था। इस संबंध में डा० ग्रियर्सन का आधार तो संभवत: जनश्रुति थी किन्तु बाबू शिवनन्दन सहाय ने अपनी रचना 'गोस्वामी तुलसीदास' में इसके पक्ष में श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद कृत भक्तमाल की टीका की चर्चा करते हुए उनके एक पत्र से उद्धरण दिया है जिसमें यह कहा गया है, "तारी में जन्म बूढ़े-बूढ़े भक्तमाली बताते हैं, कई एक प्रसिद्ध रामायणी लोगों ने अपने-अपने रामायणी गुरुओं से सुना है, संस्कृत में जो भक्तमाल का उल्था है, उसमें भी तारी ही लिखा है, राजापुर के बूढ़ों से भी सुना गया है कि तारी ही में गोस्वामीजी का जन्म हुआ था, राजापुर में नहीं। अयोध्या निवासी श्री रामरसरंगमणि जी ने भी कवित्त रामायण की टीका में तारी को ही जन्म-स्थान माना है।"

राजापुर के पक्ष में कई विद्वानों ने विचार करते हुए पक्ष-विपक्ष में तर्क दिये हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं–

(क) राजापुर के पक्ष में विद्वान् तथा उनके मत–यद्यपि राजापुर के पक्ष का मुख्य समर्थन राजापुर में प्राप्त सामग्री से होता है, किन्तु अन्य विद्वानों ने भी इसके पक्ष में कई तर्क दिये हैं। गोसाई चरित के बाबा वेणीमाधव दास, शिवसिंह सेंगर, तुलसी साहिब, पं० रामगुलाम द्विवेदी आदि का मत है कि तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर

नोट

था। किन्तु इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामबहोरी शुक्ल, पं० महादेव पांडेय, श्री अयोध्याप्रसाद पांडेय आदि विद्वानों ने विशेष तर्क दिये हैं जो राजापुर की सामग्री के साथ-साथ अन्य तथ्यों को भी प्रकट करते हैं। ये संक्षेप में इस प्रकार हैं–

(*i*) राजापुर में तुलसीदास के रहने का स्थान है, तुलसी की मूर्ति है, उन्हीं के हाथ की लिखी बताई जाने वाली अयोध्याकांड की एक प्रति है, तुलसीदास द्वारा संस्थापित संकटमोचन हनुमान की एक मूर्ति है, तुलसीदास के शिष्य गणपति उपाध्याय का कुल है जिन्हें आज भी कर आदि से कुछ मुआफियाँ प्राप्त हैं और इनकी पुष्टि के लिये उनके पास बादशाही फरमान तथा पन्ना के हिन्दू राजा के पट्टे हैं। इनके साथ ही राजापुर के पास के एक ग्राम खटवारा से एक वंशावली प्राप्त हुई है जिसमें एक पूर्वज के समकालीन होने के कारण तुलसीदास का भी उल्लेख आता है।

(*ii*) रामचरितमानस के अयोध्याकांड में जो 'तापस प्रसंग' आता है उसका तापस स्वयं कवि है और उसने इस ढंग से अपने आपको तापस रूप में राम के पास पहुँचाया है और ठीक उसी प्रदेश में जहाँ के वे निवासी थे अर्थात् प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए यमुनापार करने पर राजापुर के पास। इससे तुलसी मूल रूप में राजापुर के निवासी सिद्ध होते हैं।

(*iii*) आचार्य शुक्ल ने तुलसी की भाषा से उदाहरण देते हुए यह मत प्रकट किया है कि जिन्हें भाषा की परख है उन्हें यह देखते देर न लगेगी कि तुलसी की भाषा में ऐसे शब्द (माहुर, सरौं, फुर, कूटि आदि), जो स्थान-विशेष के बाहर नहीं बोले जाते हैं, केवल दो स्थानों के हैं– चित्रकूट के आसपास के और अयोध्या के आसपास के। किसी कवि की रचना में यदि किसी स्थान विशेष के भीतर ही बोले जाने वाले अनेक शब्द मिलें तो उस स्थान विशेष से कवि का निवास संबंध मानना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर यह बात मन में बैठ जाती है कि तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ जहाँ उनकी कुमार अवस्था बीती।

क्या आप जानते हैं तुलसीदास की पत्नी का नाम रत्नावली था।

तुलसीदास का परिवार–गोस्वामी तुलसीदास के परिवार के लिये उनके माता, पिता, जाति-पाति, पत्नी तथा भाई और स्नेही मित्रों की चर्चा उपयुक्त होगी।

तुलसीदास की माता–अन्तः साक्ष्य रूप मानस के बालकांड में राम महिमा की चर्चा करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है–

"रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी, तुलसीदास हित हियं हुलसी सी।"

क्योंकि जनश्रुति तुलसी की माता का नाम हुलसी बताती है। अतएव इन पंक्तियों का अर्थ भी टीकाकारों ने इसी रूप में किया है। अन्यथा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि तुलसी इस शब्द-प्रयोग में इस अर्थ को व्यंजित करना चाहते थे या नहीं। माता के नाम के लिये रहीम का दोह तो प्रसिद्ध है ही–

"सुरतिय, नरतिय नागतिय सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय।।"

तुलसीदास के पिता– अन्तः साक्ष्य इस संबंध में मौन हैं किन्तु गोसाई चरित के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे था। डा० ग्रियर्सन ने 'इंडियन ऐंटीक्वेरी' में परिवार का परिचय देने वाले तीन दोहे दिये हैं जो इस प्रकार हैं–

"दूबे आत्मा राम है, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान।।

नोट

प्रह्लाद उधारन नाम है गुरु का सुनिये साध।
प्रगट नाम नहीं कहत जो, कहत होय अपराध॥
दीन बन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है, सुत तारक गत होइ॥"

सोरों की सामग्री भी तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम बताती है। किन्तु 'तुलसी चरित' में लिखा है कि तुलसीदास मुरारी मिश्र के पुत्र थे और उनका नाम तुलाराम था। किन्तु ये तीनों बहिर्साक्ष्य विद्वानों द्वारा अप्रमाणिक माने गये हैं। किन्तु जनश्रुति प्राय: तुलसीदास के पिता का नाम आत्मा राम ही मानती आयी है।

तुलसीदास की जाति-पाँति–प्राय: यह निर्विवाद स्वीकार किया जाता है कि तुलसीदास जाति के ब्राह्मण थे। अन्त:साक्ष्य रूप में तुलसीदास ने अपने आप को 'विनयपत्रिका में सुकुल अर्थात् उत्तम कुल जन्मा कहा है,' दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।" अतएव अब यह निश्चित करना शेष रह जाता है, कि गोस्वामी जी की उपजाति क्या थी। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं–

(1) डॉ० ग्रियर्सन–तुलसीदास सरयूपारीण ब्राह्मण थे, कान्यकुब्ज नहीं, क्योंकि कान्यकुब्ज ब्राह्मण दान लेना तथा भिक्षा माँगना गर्हित मानते हैं।

(2) सोरों का मत है कि तुलसी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनका गोत्र शुक्ल था। अपने पक्ष में वे 252 वैष्णवन की वार्ता में नन्ददास का प्रसंग, विनय-पत्रिका में 'सुकुल' का प्रयोग तथा काशी में तुलसी का अपनी जाति-पांति न बताना आदि के तर्क देते हैं।

(3) मिश्र बन्धुओं ने सरयूपारीण ब्राह्मणों तथा कन्याकुब्ज ब्राह्मणों के पाठकों के साथ विवाह संबंधों की खोज करते हुए 'हिन्दी कविरत्न' में यह मत प्रकट किया है कि तुलसीदास कान्यकुब्ज थे, सरयूपारीण नहीं। कान्यकुब्जों में पाठक द्विवेदियों से नीचे माने जाते हैं अतएव विवाह संबंध संभव है। सरयूपारी द्विवेदी पाठकों से नीचे हैं अतएव उनमें विवाह संबंध नहीं होते। तुलसी द्विवेदी थे और उनका विवाह पाठकों में हुआ था। अतएव इस प्रकार संभावना उनके कन्याकुब्ज ब्राह्मण होने की है यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि राजापुर में जनश्रुति तुलसी को सरयूपारीण ब्राह्मण ही मानती हैं।

यदि ऊपर दिये मतों का संक्षेप में विश्लेषण करें तो कहना होगा कि तुलसी की जाति ब्राह्मण थी, इसमें तो कोई संदेह नहीं। किन्तु वह कैसे ब्राह्मण थे, यह विवादग्रस्त है।

तुलसीदास का नाम–अंत: साक्ष्य में ऐसा उल्लेख मिलता है जिसमें तुलसी नाम के कारण की चर्चा है। कवितावली के उत्तरकांड में कवि ने कहा है– "नाम तुलसी पै भोड़े भाग सों कहायो दास, कियो अंगीकर ऐसे बड़े दगाबाज को।" अंत: साक्ष्य में दूसरा नाम 'रामबोला' मिलता है–"राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम, काम यहै नाम द्वै हों कबहुँ कहत हों" (विनय पत्रिका 77वां पद) तथा "रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।" (कवितावली, उत्तरकांड) किन्तु यह नाम राम का दिया है और राम की चाकरी के कारण है, वास्तविक नाम नहीं।

बहिर्साक्ष्य में 'तुलसीचरित' में मूल नाम तुलाराम बताया है। गुरु का नाम तुलसीराम था और इसी कारण गुरु के स्नेह से इन्हें तुलसी गुरु के दासरूप तुलसीदास कहा जाने लगा। किन्तु जैसा कि कई बार कहा जा चुका 'तुलसी-चरित' संदिग्ध रचना है। गोस्वामी इनकी उपाधि थी। इसकी चर्चा उन्होंने स्वयं 'बाहुक में की है–"तुलसी गोसाई भयो भौडे दिन भूलि गयो" इस प्रकार तुलसी मठाधीशों-सी इस उपाधि को पाकर प्रसन्न नहीं थे।

1.2 तुलसीदास: काव्य-परिचय

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त की भाँति उनकी कृतियाँ भी विद्वत्वर्ग में मत-वैभिन्य का विषय रही हैं। उदाहरणार्थ– शिवसिंह सेंगर ने उनकी रचनाओं की संख्या अठारह निर्दिष्ट की है, जबकि बंगवासी 'तुलसी ग्रंथावली'

नोट

में उनकी कृतियों की संख्या साठ निर्दिष्ट की गई हैं। इसी प्रकार मिश्रबंधुओं ने उनकी रचनाओं की संख्या पच्चीस स्वीकार की है, जबकि जार्ज ग्रियर्सन और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने तुलसी की निम्नांकित बारह रचनाओं को ही उनकी प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार किया है–

(1) वैराग्य संदीपिनी–सं॰ 1926-27 वि॰ (2) रामाज्ञा प्रश्न–सं॰ 1621 तथा 1627-28 वि॰ (3) रामलला नहछू–सं॰ 1628-29 वि॰ (4) जानकी मंगल–सं॰ 1629-30 वि॰ (5) रामचरितमानस–सं॰ 1631 वि॰ (6) पार्वती-मंगल–सं॰ 1643 वि॰ (7) कृष्ण गीतावली–सं॰ 1643-60 वि॰ (8) गीतावली–सं॰ 1631-80 वि॰ (9) विनय-पत्रिका–सं॰ 1631-79 वि॰ (10) दोहावली–सं॰ 1628-80 वि॰ (11) बरवै रामायण–सं॰ 1630-80 वि॰ (12) कवितावली–सं॰ 1631-80 वि॰।

उपर्युक्त बारह कृतियों के अतिरिक्त 'हनुमानबाहुक' तथा 'तुलसीसतसई' को भी डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने गोस्वामीजी की प्रामाणिक कृतियों में स्थान दिया है, जबकि अन्य विद्वान इन्हें उनकी अर्द्ध-प्रामाणिक रचनाएँ स्वीकार करते हैं। अब हम गोस्वामीजी की प्रामाणिक मानी जाने वाली उपर्युक्त बारह कृतियों की वर्ण्य-वस्तु पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं।

1. वैराग्य-संदीपिनी– यह तथ्य किंचित विवादास्पद ही है कि 'वैराग्य-संदीपिनी' और 'रामाज्ञा प्रश्न' में से गोस्वामीजी की किस कृति की पहले रचना हुई है? हाँ, अधिकांश विद्वान तुलसी की इसी रचना को उनकी प्रथम कृति मानते हुए इसका रचनाकाल सं॰ 1626-27 वि॰ स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यता है कि तुलसी ने इस कृति की रचना उनके वैराग्य ग्रहण करने के बाद, दो-एक वर्षों के अन्तराल में की है। प्रस्तुत कृति में कुल 62 छंद हैं जिनमें राम, लक्ष्मण और सीता की स्तुति के साथ-साथ भक्ति और निर्गुण ब्रह्म का भी सुन्दर निरूपण किया गया है। स्वयं को राम-भक्त निर्दिष्ट करते हुए गोस्वामीजी ने यह मनोद्‌गार व्यक्त किए हैं कि जो ब्रह्म अजन्मा, अद्वैत, अनाम, अलख और निराकार है, उसी ने माया के पति राम के रूप में अपने दासों अर्थात् भक्त-सेवकों के लिए मानव शरीर धारण किया है–

'अज अद्वैत अनाम अलख रूप गुन रहित जो।
माया पति सोई राम, दास हेतु नर तन धरेउ॥'

प्रस्तुत कृति के लगभग पच्चीस छन्दों में (आठवें से लेकर 33वें दोहे तक) कवि ने संतों की महिमा का वर्णन करते हुए दिखाया है कि वे प्रायः सम-भाव और सम-शील की वृत्ति वाले होते हैं, जिससे न तो कोई शत्रु होता है और न मित्र ही हुआ करता है। वे स्वर्ण को काँच की तरह समझते हैं, जबकि नारियों को काष्ठ अथवा पत्थर-तुल्य समझा करते हैं–

शत्रु न काहू करि गनै गनै, मित्र नहिं काहि।
तुलसी यह सम संत की, बोलै समता काहि॥
कंचन कांचहिं सम गनै, कामिनि काठ समान।

इन गुणों से ओत-प्रोत संतों के संबन्ध में तुलसी ने यह मत व्यक्त किया है कि वे इस पृथ्वी पर ब्रह्म के समान होते हैं–

'तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान।'

तुलसी ने इस प्रकार की संत-भावना के विकसित होने हेतु वैराग्य-भाव को परमावश्यक बताया है। जब इस भावना को भक्ति का भी आश्रय मिल जाता है तो यह अपनी उत्कृष्ट कोटि की ओर गतिशील हो उठती है। उन्होंने संतों के लिए आंतरिक के साथ-साथ बाह्य-शांति को आवश्यक बताया है तथा सन्तों की संगति को अनन्य सुख-दायक निर्दिष्ट करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि वैसा सुख तीनों लोक, सातों-द्वीपों तथा नक्खण्डों में नहीं उपलब्ध हो सकता–

नोट

'सात दीप नक्खण्ड लौं, तीन लोक जग माहिं।
तुलसी संगति समान सुख, और दूसरो नाहिं।'

गोस्वामीजी ने जहाँ 'रामचरितमानस' में यह विनम्रता प्रदर्शित की है कि–

'कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहहुं लिखि कागद कोरे।।'

वहीं अपनी इस प्रथम कृति में भी यह विनम्रता प्रदर्शित की है कि इसमें मुझसे जो कुछ अनुचित बातें व्यक्त हो गई हों, सज्जन उन्हें स्वयं सुधार लें–

'यह विराग संदीपिनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।
अनुचित वचन विचारि कै, जस सुधारि तस देहु।'

2. रामाज्ञा-प्रश्न– इस कृति में कुल 343 दोहे हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, कतिपय विद्वान गोस्वामीजी की प्रथम कृति 'रामाज्ञा-प्रश्न' को मानते हैं और वे इस सम्बन्ध में प्रस्तुत कृति के रचना-काल के सूचक निम्नांकित दोहे का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं–

'सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नय बान।
होइ सकल सुभ जसु, प्रीति प्रतीति प्रमान।।'

अर्थात् सगुन सत्य ससि=6, सहित 1 अर्थात् 16, गुना=6, ससि=1, नयन=2, अधिक नयवान=5-4=1 अर्थात् इन दोनों का अन्तर = 1। इस प्रकार कुल अंकों को मिलाकर अर्थ हुआ सं॰ 1621 वि॰। शकुन-विचार हेतु प्रणीत प्रस्तुत कृति की रचना की प्रेरणा हेतु जार्ज ग्रियर्सन ने निम्नांकित किंवदंती का उल्लेख किया है–

'पं॰ गंगाराम काशी-नरेश के ज्योतिषी थे। उनके दरबार में उनका ज्योतिष-ज्ञान के कारण बड़ा सम्मान था। एक दिन काशी का राजकुमार शिकार खेलने के लिए गया और संध्या तक लौटकर नहीं आया। काशी नरेश ने ज्यातिषी से उसका अदृष्ट बताने को कहा और साथ ही यह शर्त रख दी कि यदि आपकी बात ठीक निकली तो एक लाख रुपया इनाम मिलेगा और अगर आपका कहा मिथ्या निकला तो धड़ से गर्दन अलग कर दी जाएगी। ज्योतिषीजी उस दिन बड़े निराश होकर घर पहुँचे। तुलसीदासजी उन्हीं के घर ठहरे हुए थे। तुलसीदास ने गंगाराम के शोक-निवारणार्थ 'रामाज्ञ-प्रश्न' की रचना कर डाली और राजकुमार का अदृष्ट बताया कि वह घड़ी प्रहर रहते ही संध्या समय तक लौट आएगा। ज्योतीषीजी ने यही राजा को बता दिया और राजा ने उनको बन्दी बना लिया। संध्या को जब राजकुमार लौट आया तो उन्हें मुक्त करके तथा एक लाख रुपया देकर सम्मान सहित विदा किया। उन्होंने वह एक लाख रुपया लाकर तुलसीदास के सामने रख दिया। बहुत आग्रह करने पर तुलसीदास ने उसमें से केवल बारह हजार रुपया लिए और बारह हनुमानजी के मंदिर बनवा दिए। उनमें से एक मंदिर काशी और दूसरा राजापुर में आज तक विद्यमान है।

श्री अमृतलाल नागर ने भी गोस्वामीजी की जीवनी पर आधारित 'मानस का हंस' नामक उपन्यास में इस घटना को गोस्वामीजी द्वारा वैराग्य लेने से पहले की घटना दिखाया है और वस्तुत: इनाम में मिले रुपयों को गोस्वामीजी द्वारा अपने मित्र गंगाराम को तथा मंदिर बनवाने के लिए राजा भगत को सौंप देने के तथ्य को रत्नावली और तुलसी के मध्य उस कलह का एक कारण प्रदर्शित किया है, जिसके कारण गोस्वामीजी अंतत: वैराग्य ग्रहण की ओर उन्मुख हुए थे।

यह किंवदंती कदाचित् सत्याधृत ही है क्योंकि इस कृति के निम्नांकित दोहे में तुलसी ने अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी का उल्लेख किया है–

'सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर, गोगन गंगाराम।।'

नोट

प्रस्तुत कृति में गोस्वामीजी ने उच्च कुलोत्पन्न लोगों को संस्कारों की दृष्टि से उत्कृष्ट दिखाते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि विप्र-गण इसलिए संपूज्य होते हैं कि उनमें संस्कारगत उच्चता होती है और उनके आर्शीवाद से सभी प्रकार की कामनाएँ सफल हो जाती हैं–

'पुत्र जागु करवाई ऋषि, राजहिं दीन्ह प्रसाद।
सकल सुमंगल मूल जन, भूसुर आसिरबाद॥'

नोट्स श्री अमृतलाल नागर के उपन्यास 'मानस का हंस' गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित है।

3. रामलला नहछू– प्रस्तुत कृति की परिगणना गोस्वामीजी की आरंभिक कृतियों में की जाती है और इसमें मात्र बीस सोहर छंद हैं। सोहर बाईस मात्राओं का लोक-गीतों से सादृश्य रखने वाला छंद है। 'नहछू' शब्द 'नह-खुर' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है, जो उस संस्कार का संकेत करता है जिसे यज्ञोपवीत और विवाह संस्कारों के अवसर पर सम्पन्न किया जाता है और नाई अथवा नाइन द्वारा नाखून काटे जाते हैं। प्रस्तुत कृति में तुलसी ने नाइन द्वारा राम के नाखून काटे जाने का वर्णन करते हुए दिखाया है कि कौशल्याजी दूल्हा बने राम को अपनी गोद में लिए बैठी हैं और उनके शीश पर अपने अंचल की छाया कर रही हैं–

'गोद लिए कौसल्या बैठी रामहि वर हो,
सोभित दूलह राम सीस पर अंचर हो।'

प्रस्तुत कृति के वर्ण्य-वस्तु के सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि कवि ने राजा दशरथ की रसिक मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए उनको निम्न जातियों की स्त्रियों के रूप-यौवन पर मोहित होते प्रदर्शित किया है, जैसे–

'बनि-बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिन हाथ बरायन हो।
नाउनि अति गुन खानि तो बेगि बुलाई हो।
करि सिंगार अति लौन तौ विहँसति आई हो।
अहिरिन हाथ दहेंहि सगुन लेइ आवइ हो।
उतरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।'

इस संस्कार के अवसर पर निम्नवर्ग की नारियाँ कौशल्या आदि रानियों के साथ परिहास करते चित्रित की गई हैं–

'काहे राम जिउ साँवर लछिमन गोर हो,
कीदहुं रानी कौसिलिहु परिथा भोर हो।'

वे नारियां राम को भी गालियां देती चित्रित की गई हैं, जिन्हें सुनकर राम लज्जित होते प्रदर्शित किए गए हैं–

"गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु-गारी हो।
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो।"

4. जानकी मंगल– वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से प्रस्तुत कृति 'रामलला नहछू' की अगली कड़ी कही जा सकती है, क्योंकि 'रामलला नहछू' में राम के वर-रूप का चित्रण किया गया है, जबकि 'जानकी मंगल' में कवि ने राम और सीता के विवाह का वर्णन किया है। इस कृति का श्रीगणेश सीता के जन्म की घटना से किया गया है। तदन्तर सीता के विवाह-योग्य हो जाने पर, उनके विवाह हेतु 'सीता-स्वयंवर' का आयोजन किये जाने, उस 'स्वयंवर' में विभिन्न नरेशों के शामिल होने, राम द्वारा धनुष को भंग करने तथा सीता और उनकी तीन बहनों– श्रुतकीर्ति, माण्डवी और उर्मिला का क्रमशः राम, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण के साथ विवाह किए जाने का वर्णन किया गया है। विवाह के पश्चात् बारात के अयोध्या लौट जाने के साथ कृति का समापन हुआ है।

नोट

प्रस्तुत कृति की वर्ण्य-वस्तु का– रामचरितमानस' में वर्णित इसी प्रसंग से यह पार्थक्य उल्लेखनीय है कि 'मानस' में धनुष-भंग के कुछ समय बाद ही परशुराम आ जाते हैं और धनुष के भंग को लेकर उनका लक्ष्मण से तीखा वाद-विवाद होते चित्रित किया गया है। इसके विपरीत 'जानकी मंगल' में परशुराम चारों दुल्हनों के साथ अयोध्या लौटती बारात को रास्ते में मिलते चित्रित किया गया है -

'पंथ मिले भृगुराज हाथ फरसा लिए॥'

प्रस्तुत कृति में भी कवि ने राम की शक्ति और सौन्दर्य का निधान चित्रित किया है-

4. जानकी मंगल–

'सुचि सुजान नृप कहहिं, हमिं अस सूझइ।
तेज प्रताप रूप जहँ-जहँ बल बूझइ ॥'

प्रस्तुत कृति में गेस्वामीजी की परवर्ती कृतियें जैसी प्रौढ़ता और काव्य-कौशल के दर्शन नहीं होते, अत: यह निश्चय ही उनकी काव्य-यात्रा के आरंभिक काल की कृति सिद्ध होती है।

5. रामचरित मानस- गोस्वामीजी द्वारा विरचित कृतियों में 'रामचरितमानस' ही उनकी अक्षय-कीर्ति का मेरुदण्ड कही जा सकती है। प्रस्तुत महाकाव्य को विश्व-साहित्य में अग्रगण्य महाकाव्यों से तुलना की जा सकती है, जबकि भारतीय महाकाव्यों में तो इसका महत्व अक्षुण्ण ही है। इस कृति की रचना का समारम्भ संवत् सोलह सौ इकत्तीस में फाल्गुन मास की नवमी को अयोध्या में किया गया था, जैसा कि गोस्वामीजी ने स्वत: ही निर्दिष्ट कर दिया है–

'संवत! सोलह सो इकतीसा। करौं कथ हरिपद धारि सीसा।
नौंमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥'

गोस्वामिजी ने कृति के आरम्भ में इस तथ्य का भी निर्देश कर दिया है कि इसमें मैंने निगम (वेद), अगम (तंत्र) और पुराण आदि में उपलब्ध महत्वपूर्ण ज्ञान-राशि का समन्वय करते हुए, निज बुद्धि के अनुसार कतिपय नई बातों का भी समावेश किया है-

'नाना पुराण निगमागम् सम्मतं यद्
रामायणे निगदिंत क्वचिदन्यतोपि॥'

'रामचरितमानस' की कथा-वस्तु का विभाजन वाल कांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किधा कांड, सुन्दर कांड, लंका कांड और उत्तर कांड नामक सात कांडों में किया गया है। उन्होंने इस कृति के नामकरण के सन्दर्भ में यह भाव व्यक्त किया है कि इसकी कथा को शिव ने पहले ही अपने हृदय में स्थान दे रखा था और सु-अवसर आने पर उसे पार्वती को सुनाया था-

'रचि महेश निज मानस राखा।
पाइ सुसमय शिवासन भाखा ॥
ताते रामचरित मानस वर।
धरेउ नाम हिय हेरि हरषि वर॥'

6. पार्वती मंगल– प्रस्तुत कृति का वर्ण्य-विषय शिव और पार्वती का विवाह है। इसके रचनाकाल का कवि ने निम्नांकित छन्द में निर्देश करते हुए, उसे जय संवत् अर्थात् 1643 वि. बताया है–

'जय संवत् फागुन सुदी पाँचे गुरु दिनु,
अस्विन विरचेउ मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु॥'

पावर्ती को मंगल की खान घोषित करते हुए कवि ने दिखााया है कि जब तक वह पर्वतराज हिमालय के यहाँ था, उनके घर में ऋद्धियों-सिद्धियों ने निवास करना आरम्भ कर दिया था–

'मंगल खानि भवानि प्रगट जबतें भई।

नोट

तबतें ऋधि-सिधि सम्पति गिरि गृह नित नई॥'

कवि ने प्रस्तुत कृति में शिव और पार्वती के विवाह का जिस रूप में वर्णन किया है, वह बहुत कुछ अंशों में 'रामचरितमानस' के वर्णन से सादृश्य रखता है। हाँ दोनों कृतियों में यह अन्तर अवश्य है कि पार्वती के तप की परीक्षा के लिए, 'रामचारितमानस' में तो सप्तर्षि जाते चित्रित किए गए हैं, जबकि- 'पार्वती-मंगल' में कालिदास-कृत 'कुमारसम्भवम्' की भाँति पार्वती की परीक्षा हेतु स्वयं शिव ही एक तपस्वी के वेश में आते चित्रित किए गए हैं।

7. कृष्ण-गीतावली– वैसे तो गोस्वामी के जीवन-वृत्त के साथ यह किंवदती भी जुड़ी हुई है कि एक बार जब वे ब्रजमण्डल में अपने चचेरे भाई नन्ददास से मिलने गए थे, तो उन्होंने श्रीकृष्ण की मूर्ति के सम्मुख यह भाव व्यक्त किया था कि में आपकी प्रतिमा को तभी शीश झुकाऊँगा जब आप (राम के रूप में) मुरली के स्थान पर धनुष और बाण धारण कर लेंगे-

'कहा कहौं छबि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-वाण लेउ हाथ॥'

तथापि उनकी 'कृष्ण-गीतावली' नामक रचना से सिद्ध हेता है कि गोस्वामीजी में उक्त किंवदंती जैसी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना नहीं थी। प्रस्तुत कृति में 61 छन्द है, जिनमें उन्होंने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है। कृति के छन्दों में सूर के पदों जैसा लालित्य तो नही है, तथापि तुलसी ने कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं को देखकर प्रमुदित होती यशोदा की मनोभावनाओं का सुन्दर निरूपण किया है। कवि ने गोपी-उद्धव-संवाद की भी योजना की है तथा निम्नांकित छन्द में श्रीकृष्ण द्वारा द्रौपदी की प्रार्थना पर उसकी साड़ी को बढ़ाकर उसकी मर्यादा की रक्षा का चित्रण किया है-

'सिथिल सनेह मुदित मन-ही-मन,
बसन बीच-बीच बधू विराजी ।
क्षमासिंधु जदुपति जय-जय जनु,
राम प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी॥'

8. गीतावली– प्रस्तुत कृति में 238 छंद हैं जबकि इसका रचनाकाल सं. 1630 से लेकर 1670 वि. अर्थात् लगभग चालीस वर्ष स्वीकार किया जाता है। अभिप्राय यह है कि इसके अंतर्गत गोस्वामीजी द्वारा समय-समय पर रचे गए पद संकलित कर दिए गए हैं। प्रस्तुत कृति में कवि ने 'रामचरितमानस' की भाँति पदों में राम-कथा का वर्णन किया है और इन पदों को 'मानस' की भाँति ही सात कांडों में विभक्त किया है। कवि ने घटना-योजना की अपेक्षा भाव-संयोजना पर अधिक बल दिया है, जिससे इस कृति के विभिन्न कांडों में रचित पदों की संख्या में बहुत अधिक अन्तर विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ इसका सबसे बड़ा कांड बालकांड है जिसमें 110 पद हैं, जबकि 'किष्किंधा कांड सबसे छोटा है, जिसमें मात्र दो छंद हैं। अन्य कांडों में से अयोध्या कांड में 89, अरण्य कांड में 8, सुन्दरकांड में 51, लंका कांड में 23 तथा उत्तर कांड में 38 पद हैं। इसके कुछ पदों को सूरसागर के पदों में अद्‌भुत साम्य दृष्टिगत होता है, जैसे-

(i) सूरदास-'खेलन चलिए बाल गोविंद।'
तुलसी-'खेलन चलिए आनन्द कंद।'
(ii) सूरदास 'यशोदा हरि पालने झुलावें
तुलसी-'पालने रघुपति झुलावै ॥'

गीतावली में राम-लक्ष्मणादि भ्राताओं की बाल-क्रीड़ाओं का तुलसी ने मनोरम चित्रण किया है। उदाहरणार्थ सुमित्राजी की यह मनोकामना अवलोकनीय है कि ये चारों भाई कब चलना सीखेंगे-

'पगहिं कब चलिहै चारौ भैया।
प्रेम पुलक, उर लाह सुवल सब, कहति सुमित्रा मैया॥'

नोट

इसी प्रकार कवि ने राम के वन-गमन के प्रसंग में राम-लक्ष्मण और सीता की सैन्दर्य-सुषमा को देखाकर वन के पशु-पक्षी तक मोहित होते चित्रत किए है–

देखो राम-पथिक नाचत मुदित मोर
मनत मानहु सतड़ित ललित धन,
धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर
कंपे कलापि वर बरहिं फिराबन,
गावत कल कोकिला किसोर।
जहँ-जहँ प्रभु विचरत तहँ-तहँ,
सुख दंडक वन कौतुक न थोर।'

टास्क तुलसीदास की कृतियों का उल्लेख कीजिए।

9. विनयपात्रिका- प्रस्तुत कृति का तुलसी की कृतियों में अन्यतम महत्व है। इसमें कुल 279 पद हैं। इस कृति का रचनाकाल सं. 1660 से 1670 वि. स्वीकार किया जाता है अर्थात् यह कवि के प्रौढ़ काल की रचना स्वीकार की जाती है। जैसा कि कृति के नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है, इसमें कवि ने भगवान राम से अपने उद्धार की विनयपूर्ण प्रार्थना की है और इस प्रार्थना-पत्रिका की स्वीकृति हेतु लक्ष्मण हनुमानादि उन राम-भक्तों की भी स्तुति की है, जिनसे इस प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति में सहायता मिल सके। एक पद में कवि ने यह भाव व्यक्त भी किया है कि उसके आराध्य ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकृति प्रदान करके कवि को अपना दास स्वीकार कर लिया है।

10. दोहावाली- प्रस्तुत कृति में कुल 573 छंद है। जिनमें से 551 दोहे तथा 22 सोरठा हैं। इन छंदों की रचना कवि ने विभिन्न अवसरों पर की है, जिसे उनके वर्ण्य-विषय में विविधता आ गई है। इस कृति में संकलित कतिपय दोहे 'रामचरितमानस', 'वैराग्य-संदीपिनी' और 'रामाज्ञा-प्रश्न' में भी मिलते हैं। इस कृति के कुछ दोहों से गोस्वामी जी की रुग्णता का संकेत मिलता है, जैसे–

'रोग निकर तनु जरठवनु, तुलसी संग कुलोग।
राम कृपा ले पालिये, दीन पालिवैं जोग॥'

कवि ने शैवों और वैष्णवों में समन्वय करने का प्रयास करते हुए राम के मुख से कहलाया है–

'संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भर, घोर नरक महँ बास ।'

इसी प्रकार कवि ने निर्गुण और सगुण की भक्ति का निरूपण करते हुए सगुण भक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया है-

'हिय निर्गुन, नयनहिं सगुन, रसना नाम सुनाम।
मनुहु पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित, ललाम।'

तुलसी की वह प्रसिद्ध उक्ति भी 'दोहावली' के ही एक दोहे में उपलब्ध है जिसमें उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि यदि हृदय में ईश्वर के प्रति सच्चा भक्ति-भाव हो तो इस तथ्य से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि उनकी आराधना संस्कृत में की जा रही है, अथवा भाषा में–

'का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँचु ।
काम जु आवै कामरी, का लै करिअ कुमचु।'

नोट

11. बरवै रामायण– इस कृति में कवि ने राम-कथा का वर्णन मात्र बरवै नामक छंद में किया है अत: तदनुकूल ही इसका नामकरण 'बरवै रामायण' किया गया है। प्रस्तुत कृति में भी राम-कथा का विभाजन 'रामचरितमानस' की भाँति सात कांडों में ही किया गया है। यह माना जाता है कि गोस्वामीजी ने विभिन्न अवसरों पर राम-कथा से सम्बन्धित जिन बरवै छन्दों की रचना की थी, उन्हें ही बाद में उनके शिष्यों ने 'बरवै रामायण' के रूप में संकलित कर दिया है, अर्थात् इस कृति की तुलसी ने स्वतन्त्र रूप में रचना नहीं की है यह भी माना जाता है कि गोस्वामीजी ने इस छन्द को कहीं से अपनाया है, जिससे इन बरवै छन्दों में श्रृंगार-भावना का भी अच्छा समावेश मिलता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित बरवै में सीता की सखियां उन्हें यह कहकर अकेली छोड़ जाती चित्रित की गई हैं कि रघुबर और सीता के नेत्र उनींदे प्रतीत हो रहे हैं–

'उठी सखी हँसि निस करि कहि मृदु बैन ।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन ।'

कवि ने राम के सुकुमार रूप का चित्रण करते हुए लिखा है–

कुंकुम तिलक भाल स्तुति कुंडल, लोल
काक पच्छ मिलि, सखि, कस लसत कपोल ।'

तो दूसरी ओर उसने उनके नाम-स्मरण की महिमा को इस रूप में उभारा है–

'राम नाम की महिमा जान महेश ।
देत परम पद कासी करि उपदेश।'

तुलसी ने राम के विरह में व्याकुल विरहिणी सीता की मनोभावनाओं का भी मार्मिक अंकन किया है–

''विरह आगि उर ऊपर अब अधिकाइ ।
ये अँखियाँ बैरिनि देहि बुझाइ।
दुहुकन है उजियार या निसी मँहि व्योम।
जगत् जरत लागु मोहि बिनु राम।'

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुक्तक छन्दों के रूप में रचना किए जाने के कारण 'बरवै रामायण' में प्रबन्धात्मकता का तो भली प्रकार निर्वाह नहीं हो पाया है, किन्तु मार्मिकता की दृष्टि से इनमें संकलित बरवै पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

12. कवितावली– गोस्वामीजी की जिन बारह कृतियों को उनकी प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार किया जाता है, उनमें से 'कवितावली' अंतिम रचना है। आरम्भ में कवित्त-छंद का अर्थ व्यापक था और सवैया तथा छप्पय छंदों की भी कवित्तों में परिगणना की जाती थी। हाँ, कालान्तर में कवित्त का अर्थ संकुचित हो गया है और अब सवैया तथा छप्पय प्रथम छन्द स्वीकार किए जाने लगे हैं। अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत कृति में कवित्तों की अवली अर्थात् कविता– अवली मिलने के कारण ही इसका नामकरण 'कवितावली' किया गया है। इसकी वर्ण्य-वस्तु भी 'मानस' की तरह राम कथा है और कथा का विभाजन भी सात कांडों में किया गया है। विभिन्न कांड और उनमें संकलित कवित्तों की संख्या इस प्रकार है–

बालकांड = 21 छंद, अयोध्याकांड = 28 छंद, अरण्यकांड = 1 छंद, किष्किंधा कांड = 1 छंद, सुन्दरकांड = 32 छंद, लंकाकांड = 58 छन्द, उत्तरकांड = 183 छन्द।

इस से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने सर्वाधिक मात्रा में छंद 'उत्तराकंड' से सम्बन्धित प्रसंग को लेकर लिख हैं। विभिन्न कांडों में संकलित छन्दों की यह असमानता, तथा अरण्यकांड और किष्किंधा कांड की घटनाओं को मात्र एक-एक छंद में ही समाहार कर देना इस तथ्य का परिचायक है कि गोस्वामी जी ने प्रस्तुत कृति की रचना किसी निश्चित कालावधि में और प्रबन्ध रूप में नहीं की है, अपितु उनके द्वारा विभिन्न कानों में रच गये छंद बाद में प्रबन्ध-काव्य के रूप में संकलित कर दिए गए हैं।

नोट

वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से कहा जा सकता है कि कवि ने बालकांड में राम की क्रीड़ाओं का मनोरम चित्रण किया है–

'कबहूँ ससि मांगत आरि करैं,
कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूं करताल बलाइ के नाचत,
मातु सबै मन मोद भरैं'।

इसी प्रकार कवि का यह वर्णन अवलोकनीय है–

'अवधेस के द्वारे सकारे गई,
सुत गोद में भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को,
ठगि सी रही, जे न ठगे धिकते ।
तुलसी मन-रंजन रंजित अंजन,
नैन सुखंजन जातक से ।
सजनी ससि में समसील उभै ।'
नवनील सरोरूह से बिकसे ।

'कवितावली' छन्दों में कवि की भक्ति-भावना का भी पर्याप्त समावेश मिलता है, क्योकि वह उन लोगों के तो जीवन लेने को ही व्यर्थ घोषित कर देता है, जिन्होंने राम-लक्ष्मणादि भ्राताओं की मुख-श्री का अवलोकन नहीं किया है–

'पग नूपुर औ पहुंगी कर कंजनि,
मंजु बनी मनिमाल हिए ।
नवनील कलेवर पात झगा,
झलकैं पुलकैं नृपु गोद लिटा।
अरबिंद सो आननु रूप मरुंद,
अनंदित लोचन भृंग पिए ।
मन मो न बस्यो अस बालकु जौं,
तुलसी जग में फलु कौन जिएँ।'

'कवितावली' काव्योत्कर्ष की दृष्टि से निश्चय ही गोस्वामीजी की प्रौढ़तम रचनाओं में से एक है। मार्मिकता एवं भाव-सैन्दर्य की दृष्टि से 'कवितावली' का निम्नांकित छन्द अवलोकनीय है, जिसमें कवि ने राम और सीता के विवाहावसर पर, सीता द्वारा अपने कंगन में लगे नग में राम की प्रतिच्छवि देखकर भाव-विभोर हो उठने का मार्मिक चित्रण किया है –

''दूलह श्री रघुनाथ बने,
दुलही सिय सुन्दर मंदिर माँही
× × ×
राम को रूप निहारति जानकी
कंगन के नग की परछाँही।
याते सबै सुधि भूलि गई,
कर टेकि रहीं, पल टरति नाहीं ।'

'कवितावली' के उत्तरकांड में कवि ने मुगल-शासन में भारतवासियों की दयनीय दशा का मार्मिक वर्णन किया है। इस कांड में तीन ऐसे भी छन्द उपलब्ध होते हैं जो वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा

नोट

रचित भ्रमरगीत प्रसंग से सादृश्य रखते हैं। जैसाकि कहा जा चुका है कुछ विद्वान 'तुलसी सतसई' और 'हनुमान बाहुक' को भी गोस्वामीजी की प्रामाणिक रचनाओं में परिगणना करते हैं।

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए–

1. गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से संबंधित वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है–
   (क) शिवसिंह सेंगर ने (ख) डॉ. ग्रियर्सन ने (ग) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने
2. गोस्वामी तुलसीदास की माता का नाम था–
   (क) कौशल्या (ख) रत्नावली (ग) हुलसी
3. कवितावली के बालकाण्ड में कुल छंद हैं–
   (क) 28 (ख) 21 (ग) 32
4. पावर्ती मंगल का वर्ण्य विषय है–
   (क) लक्ष्मण-उर्मिला विवाह (ख) राम-सीता विवाह (ग) शिव-पार्वती विवाह

1.3 सारांश

लेखकों द्वारा स्वयं कुछ संकेत न करने के कारण आज का समीक्षक अन्त:साक्ष्यों से जुटाए प्रभावों के आधार पर अपनी धारणा बनाता है और उनके साँचे में उन साहित्यकारों को फिट करता है। भले ही उसकी वे धारणाएं यथार्थ से दूर हों। यही स्थिति महाकवि तुलसीदास की भी है।

रामचरितमानस तथा अन्य रचनाओं का समय-समय पर सम्पादन करते हुए विद्वान् सम्पादकों ने तुलसी सम्बन्धी अध्ययन को अग्रसर करने में विशेष कार्य किया है।

भारतीय आलोचकों में सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास 'शिवसिंह सरोज' में सं० 1934 में बेनीमाधव के 'गुसाई-चरित्र' के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला। इसके उपरांत इस विषय पर आधारित समीक्षाएं पत्र-पत्रिकाओं में भी निकलीं तथा पुस्तकाकार रूप में भी।

तुलसीदास के जीवन की रूप-रेखा निश्चित करने के लिए यद्यपि आधारभूत सामग्री की कमी नहीं किन्तु फिर भी एक सुनिश्चित जीवन-वृत्त देना संभव नहीं हो सका क्योंकि राजापुर और सोरों के आग्रह से अनुप्रेरित ऐसी सामग्री प्रस्तुत की गई है कि जिसके द्वारा मतैक्य पाना कठिन है।

एक ओर डा० ग्रियर्सन का कहना है–"सबसे अधिक विश्वस्त विवरणों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म सं० 1589 में हुआ था।" दूसरी ओर मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी पंडित तथा अपने आपको तुलसीदास की शिष्य परम्परा में मानने वाले पं० रामगुलाम द्विवेदी भी भक्तों की जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 मानते हैं। तीसरी ओर सं० 1820 से 1900 में वर्तमान तुलसी साहिब ने अपने चरित्र में, जो 'घट रामायण' में संकलित है, तुलसीदास का जन्म सं० 1589, भाद्रपद शुक्ल 11, मंगलवार बताया है। यह तिथि विगत-संवत् वर्ष प्रणाली पर गणना करने से शुद्ध ठहरती है।

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त की भाँति उनकी कृतियाँ भी विद्वत्वर्ग में मत-वैभिन्य का विषय रही हैं। उदाहरणार्थ–शिवसिंह सेंगर ने उनकी रचनाओं की संख्या अठारह निर्दिष्ट की है, जबकि बंगवासी 'तुलसी ग्रंथावली' में उनकी कृतियों की संख्या साठ निर्दिष्ठ की गई हैं। इसी प्रकार मिश्रबंधुओं ने उनकी रचनाओं की संख्या पच्चीस स्वीकार की है।

यह तथ्य किंचित विवादास्पद ही है कि 'वैराग्य-संदीपिनी' और 'रामाज्ञा प्रश्न' में से गोस्वामीजी की किस कृति की पहले रचना हुई है? हाँ, अधिकांश विद्वान तुलसी की इसी रचना को उनकी प्रथम कृति मानते हुए इसका

नोट

रचनाकाल सं॰ 1626-27 वि॰ स्वीकार करते हैं।

इस कृति में कुल 343 दोहे हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, कतिपय विद्वान गोस्वामीजी की प्रथम कृति 'रामाज्ञा-प्रश्न' को मानते हैं।

प्रस्तुत कृति में गोस्वामीजी ने उच्च कुलोत्पन्न लोगों को संस्कारों की दृष्टि से उत्कृष्ट दिखाते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि विप्र-गण इसलिए संपूज्य होते हैं कि उनमें संस्कारगत उच्चता होती है और उनके आशीर्वाद से सभी प्रकार की कामनाएँ सफल हो जाती हैं–

प्रस्तुत कृति की परिगणना गोस्वामीजी की आरंभिक कृतियों में की जाती है और इसमें मात्र बीस सोहर छंद हैं। सोहर बाईस मात्राओं का लोक-गीतों से सादृश्य रखने वाला छंद है। 'नहछू' शब्द 'नह-खुर' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है, जो उस संस्कार का संकेत करता है जिसे यज्ञोपवीत और विवाह संस्कारों के अवसर पर सम्पन्न किया जाता है और नाई अथवा नाइन द्वारा नाखून काटे जाते हैं। प्रस्तुत कृति में तुलसी ने नाइन द्वारा राम के नाखून काटे जाने का वर्णन करते हुए दिखाया है कि कौशल्याजी दूल्हा बने राम को अपनी गोद में लिए बैठी हैं और उनके शीश पर अपने अंचल की छाया कर रही हैं।

वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से प्रस्तुत कृति 'रामलला नहछू' की अगली कड़ी कही जा सकती है, क्योंकि 'रामलला नहछू' में राम के वर-रूप का चित्रण किया गया है, जबकि 'जानकी मंगल' में कवि ने राम और सीता के विवाह का वर्णन किया है।

गोस्वामीजी द्वारा विरचित कृतियों में 'रामचरितमानस' ही उनकी अक्षय-कीर्ति का मेरुदण्ड कही जा सकती है। प्रस्तुत महाकाव्य को विश्व-साहित्य में अग्रगण्य महाकाव्यों से तुलना की जा सकती है, जबकि भारतीय महाकाव्यों में तो इसका महत्व अक्षुण्ण ही है। इस कृति की रचना का समारम्भ संवत् सोलह सौ इकत्तीस में फाल्गुन मास की नवमी को अयोध्या में किया गया था, जैसा कि गोस्वामीजी ने स्वत: ही निर्दिष्ट कर दिया है–

'संवत! सोलह सो इकतीसा। करौं कथ हरिपद धारि सीसा।
नौंमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।'

गोस्वामिजी ने कृति के आरम्भ में इस तथ्य का भी निर्देश कर दिया है कि इसमें मैंने निगम (वेद), अगम (तंत्र) और पुराण आदि में उपलब्ध महत्वपूर्ण ज्ञान-राशि का समन्वय करते हुए, निज बुद्धि के अनुसार कतिपय नई बातों का भी समावेश किया है।

पार्वती मंगल– प्रस्तुत कृति का वर्ण्य-विषय शिव और पार्वती का विवाह है।

पावर्ती को मंगल की खान घोषित करते हुए कवि ने दिखााया है कि जब तक वह पर्वतराज हिमालय के यहाँ थी, उनके घर में ऋद्धियों-सिद्धियों ने निवास करना आरम्भ कर दिया था

वैसे तो गोस्वामी के जीवन-वृत्त के साथ यह किंवदती भी जुड़ी हुई है कि एक बार जब वे ब्रजमण्डल में अपने चचेरे भाई नन्ददास से मिलने गए थे, तो उन्होंने श्रीकृषण की मूर्ति के सम्मुख यह भाव व्यक्त किया था कि मैं आपकी प्रतिमा को तभी शीश झुकाऊँगा जब आप (राम के रूप में) मुरली के स्थान पर धनुष और बाण धारण कर लेंगे।

तथापि उनकी 'कृष्ण-गीतावली' नामक रचना से सिद्ध हेता है कि गोस्वामीजी में उक्त किंवदंती जैसी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना नहीं थी। प्रस्तुत कृति में 61 छन्द है, जिनमें उन्होंने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है। कृति के छन्दों में सूर के पदों जैसा लालित्य तो नहीं है।

प्रस्तुत कृति में 238 छंद हैं जबकि इसका रचनाकाल सं. 1630 से लेकर 1670 वि. अर्थात् लगभग चालीस वर्ष स्वीकार किया जाता है। अभिप्राय यह है कि इसके अंतर्गत गोस्वामीजी द्वारा समय-समय पर रचे गए पद संकलित कर दिए गए हैं।

नोट

प्रस्तुत कृति का तुलसी की कृतियों में अन्यतम महत्व है। इसमें कुल 279 पद हैं, जिनमें वर्णित विषय-वस्तु पर आगे प्रकाश डाला गया है। इस कृति का रचनाकाल सं. 1660 से 1670 वि. स्वीकार किया जाता है अर्थात् यह कवि के प्रौढ़ काल की रचना स्वीकार की जाती है।

प्रस्तुत कृति में कुल 573 छंद है। जिनमें से 551 दोहे तथा 22 सोरठा हैं। इन छंदों की रचना कवि ने विभिन्न अवसरों पर की है, जिसे उनके वर्ण्य-विषय में विविधता आ गई है।

इस कृति में कवि ने राम-कथा का वर्णन मात्र बरवै नामक छंद में किया है अत: तदनुकूल ही इसका नामकरण 'बरवै रामायण' किया गया है। प्रस्तुत कृति में भी राम-कथा का विभाजन 'रामचरितमानस' की भाँति सात कांडों में ही किया गया है।

कवितावली– गोस्वामीजी की जिन बारह कृतियों को उनकी प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार किया जाता है, उनमें से 'कवितावली' अंतिम रचना है। आरम्भ में कवित्त-छंद का अर्थ व्यापक था और सवैया तथा छप्पय छंदों की भी कवित्तों में परिगणना की जाती थी।

इसकी वर्ण्य-वस्तु भी 'मानस' की तरह राम कथा है और कथा का विभाजन भी सात कांडों में किया गया है। विभिन्न कांड और उनमें संकलित कवित्तों की संख्या इस प्रकार है –

बालकांड = 21 छंद, अयोध्याकांड = 28 छंद, अरण्यकांड = 1 छंद, किष्किंधा कांड = 1 छंद, सुन्दरकांड = 32 छंद, लंकाकांड = 58 छन्द, उत्तरकांड = 183 छन्द।

1.4 शब्दकोश

1. **अक्षय कीर्ति–** कभी न नष्ट होने वाली ख्याति
2. **यज्ञोपवीत–** जनेऊ, उपनयन, यज्ञ सूत्र
3. **किंवदन्ती–** अफवाह, लोकापवाद

1.5 अभ्यास प्रश्न

1. गोस्वामी तुलसीदास का जीवन परिचय लिखिए।
2. तुलसीदासस के जन्म संबंधी विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अध्ययन का विवेचन कीजिए।
3. तुलसी साहित्य का विस्तार से परिचय दीजिए।
4. श्रीरामचरित मानस की लोकप्रियता का आधार बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. (ख) 2. (ग) 3. (ख) 4. (ग)

1.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *कवितावली–* गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. *गोस्वामी तुलसीदास–* रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली।

नोट

इकाई–2: कवितावली– व्याख्या खण्ड
(दोहा संख्या 1 से 70 तक)

अनुक्रमणिका

उद्देश्य
प्रस्तावना
2.1 कवितावली– सप्रसंग व्याख्या (बालकांड, आयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड एवं सुन्दरकांड)
2.2 अभ्यास-प्रश्न
2.3 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे।

- कवितावली के अवधी छंदों की व्याख्या रूप में समझ सकेंगे।

प्रस्तावना

गोस्वामीजी की जिन बारह कृतियों को उनकी प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार किया जाता है, उनमें से 'कवितावली' अंतिम रचना है। आरम्भ में कवित्त-छंद का अर्थ व्यापक था और सवैया तथा छप्पय छंदों की भी कवित्तों में परिगणना की जाती थी। हाँ, कालान्तर में कवित्त का अर्थ संकुचित हो गया है और अब सवैया तथा छप्पय प्रथम छन्द स्वीकार किए जाने लगे हैं। अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत कृति में कवित्तों की अवली अर्थात् कविता– अवली मिलने के कारण ही इसका नामकरण 'कवितावली' किया गया है। इसकी वर्ण्य-वस्तु भी 'मानस' की तरह राम कथा है और कथा का विभाजन भी सात कांडों में किया गया है। विभिन्न कांड और उनमें संकलित कवित्तों की संख्या इस प्रकार है –

बालकांड = 21 छंद, अयोध्याकांड = 28 छंद, अरण्यकांड = 1 छंद, किष्किंधा कांड = 1 छंद, सुन्दरकांड = 32 छंद, लंकाकांड = 58 छन्द, उत्तरकांड = 183 छन्द।

2.1 कवितावली– सप्रसंग व्याख्या (बालकांड, आयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड एवं सुन्दरकांड)

बालकाण्ड

अवधेस के द्वारे सकारे गइ, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-विलोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक से।
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन नैन सु-खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥ 1 ॥

नोट

शब्दार्थ–अवधेस = अयोध्या नगरी के राजा (दशरथ)। **द्वारे** = दरवाजे पर। **सकारे** = सवेरा। **लै** = लेकर। **निकसे** = निकले। **अवलोकि** = देखकर। **हौं** = मैं। **सोच विमोचन** = सोच से मुक्त करने वाले। **ठगि-सी रही** = मोहित-सी हो गई। **धिक** = धिक्कार। **रंजित-अंजन** = काजल लगे हुए। **नैन** = नेत्र। **खंजन** = पक्षी विशेष। **जातक** = बच्चा। **सजनी** = सखी। **ससि** = चन्द्रमा। **उभै** = दोनों (सं. उभय)। **सरोरुह** = कमल।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में गोस्वामी तुलसीदासजी ने प्रभु राम के बाल-रूप का वर्णन किया है।

व्याख्या–एक सुन्दरी सखी को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि हे सखि! मैं प्रातः अयोध्या नगरी के राजा दशरथ के द्वार पर पहुँची–इसी बीच वे अपने पुत्र (राम) को अपनी गोद में लिए हुए भवन से बाहर निकले। समस्त शोकों से मुक्त करने वाले बाल-रूप को देखकर मैं तो मोहित हो गई–ठगी-सी रह गई। बाल-रूप राम के इस अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर जो मोहित नहीं होते, उन्हें धिक्कार है। खंजन पक्षी के बच्चे के सदृश चपल, काजल लगे हुए तथा मन को मोहित करने वाले बालक राम के उन नेत्रों को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो चन्द्रमा के भीतर अर्थात् चन्द्र-मण्डल में समान गुण वाले दो नवीन नील कमल विकसित हो गये हों।

विशेष–

(1) यहां नेत्रों का साधर्म्य खंजन शावक के नेत्रों को उपस्थित किया गया है, इससे चपलता ध्वनित हो रही है।

(2) 'जे न ठगे धिक से' में तुलसी की अनन्य भावना अभिव्यंजित हो रही है।

(3) यहाँ बालक राम के रूप-लावण्य विषयक प्रभाव का वर्णन एक सुन्दरी के द्वारा किया है।

(4) नेत्रों का सादृश्य खंजन के नेत्रों से करना एक प्रकार से कविरूढ़ि के अन्तर्गत है। सूरदासजी ने श्रीकृष्ण के नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है–

"दैख री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज-चपलाई, नहिं पट तर इक सैन।"

(5) **अलंकार**–उपमा एवं गम्योत्प्रेक्षा।

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिए।
नवनील कलेवर पीत झंगा झलकै, पुलकै नृप गोद लिए।
अरविन्द सौ आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-मृग पिये।
मन में न बस्यों अस बालक जौ 'तुलसो' जग में फल कौन जिये॥ 2 ॥

शब्दार्थ–पग = पैर, चरण। **नूपुर** = घुंघरू। **औ** = और। **करकंजनि** = कमल रूपी हाथों में। **मंजु** = मनोहर। **मनिहाल** = मणियों की माला। **हिए** = हृदय पर। **पुलकै** = पुलकित। **अरविन्द** = कमल। **सौ** = समान। **आनन**= मुखमण्डल। **रूपमरंद** = रूप रूपी पराग। **लोचन-भृंग** = नेत्र रूपी भौंरे। **अस** = ऐसा। **जग** = जगत।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने प्रभु राम के बाल-रूप का वर्णन किया है।

व्याख्या–बालक राम के चरणों में घुंघरू, कमल रूपी हाथों में पहुँचियां तथा वक्षस्थल पर मनोहर मणियों की माला सुशोभित प्रतीत हो रही है। उनके नवीन नीले कमल वर्ण अर्थात् शरीर पर पीले रंग का चोगा (झगला) झलक रहा है। ऐसे रूप-माधुरी से युक्त बालक राम को राजा दशरथ गोद में लिए पुलकित हो रहे हैं। उनके नेत्र भौंरे उनके मुखमण्डल के सौन्दर्य रूपी पराग का पान करने में प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे परम सुन्दर बालक राम को यदि अपने हृदय में न बसाया तो इस संसार में जीने का फल ही क्या है अर्थात् मनुष्य-जीवन के उत्कृष्ट फल की प्राप्ति इसी में है कि वह ऐसी अनुपम छवि से युक्त बालक राम को अपने मन में बसाये अर्थात् उसका मन से ध्यान करे।

विशेष–

(1) यहाँ बाल-रूप राम का मनोहर एवं नख-शिख वर्णन हुआ है।

नोट

(2) बालक के लिए द्वारा दर्शन कराना शास्त्रोक्त प्रमाण है।

(3) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें–

"उर मनिहार पदिक की शोभा। बिप्रचरन देखत मन लोभा।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मन मोहे।"

(4) **अलंकार**–उपमा एवं रूपक।

तन को दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरै।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरै, छबि भूरि अनंग की दूरि धरै।
दमकै दंतियां दुति दामिनि ज्यों, किलकै कल बाल बिनोद करै।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन-मन्दिर में बिहरै ॥ 3 ॥

शब्दार्थ–तन = शरीर। **कंज** = कमल। **मंजुलताई** = मनोहरता। **हरै** = हरण करना। **सोहत** = शोभित होना। **छबि** = शोभा। **अनंग** = कामदेव। **दंतियां** = छोटे-छोटे दाँत। **दुति** = कांति (संब्द्युति)। **दामिनि** = बिजली। **ज्यों** = जिस प्रकार। **किलकै** = किलकारियां मारना। **क्ल** = मधुर, मनोहर। **बिनोद** = मन-बहलाव। **मन-मन्दिर** = मन रूपी मंदिर। **बिहरै** = बिहार करना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी न कामना की है कि राजा दशरव के चारों पुत्र (बाल-रूप) उनके अन्तस् में निवास करें।

व्याख्या–उनके शरीर की कांति श्याम वर्ण वाले कमल के सदृश है और नेत्र कमलों की मनोहरता को हरण करने वाले हैं। जब वे धूल-धूसरित होते हैं तब पे परम सुन्दर प्रतीत होते हैं–उस समय की सुन्दरता के समक्ष काम देव की सुन्दरता भी फीकी जान पड़ती है। जब वे किलकारियां मारते हैं और आपस में हंसते है तब उनके छोटे-छोटे दांत दमकने लगते हैं जिस प्रकार विद्युत् दमक रही हो। अंत में तुलसीदासजी यहाँ कामना करते है कि उनके मन-रूपी मंदिर में अयोध्या के नृप दशरथ के चारों बालक सदैव बिहार करें।

विशेष–

(1) 'मन मन्दिर' से मन की पवित्रता एवं एकाग्रता अभिव्यक्त हो रही है।

(2) यहां बाल-रूप का माधुर्यपूर्ण वर्णन हुआ है।

(3) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें–

'धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहांसि गोद बैठाए।'

(4) **अलंकार**–रूपक।

कबहूं ससि मांगत आरि करै, कबहूं प्रतिबिंब निहारि डरै।
कबहूं करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरै।
कबहूं रिसिआइ कहै हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मन्दिर में बिहरै ॥ 4 ॥

शब्दार्थ–कबहूँ = कभी। **आरि करें** = हठ करना। **प्रतिबिंब** = परछाई। **निहारि** = देखकर। **करताल** = हाथों की ताली। **मातू** = माता। **मोद** = आनंद। **जेहि लागि** = जिसके लिये। **अरै** = अड़ जाना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने बाल-लीला की मनोहर झांकी प्रस्तुत की है।

व्याख्या–नृपति दशरथ के राम चारों बालक कभी तो चंद्रमा को माँगने के लिए हठ करने लग जाते हैं तो कभी अपनी परछाई को देखकर डरने लग जाते हैं। कभी वें हाथों से तालियाँ बजाते हुए नृत्य करने लग जाते हैं। उनकी इस प्रकार की क्रीड़ा को देखकर सभी माताएं मन में परमानन्दित हो उठती हैं। कभी वे कुपित होकर हठ पकड़

नोट

कर किसी वस्तु को ग्रहण करने के लिए मचल उठते हैं–उस वस्तु को लेकर ही मानते हैं। तुलसीदासजी यही कामना करते हैं कि अयोध्या नगरी के राजा दशरथ के चारों पुत्र उनके मन रूपी-मन्दिर में सदा बिहार करें।

विशेष–

(1) यहाँ बाल-लीला एवं तद्विषयक स्वभाव का वर्णन हुआ है।

(2) बाल-स्वभाव में मनोवैज्ञानिकता का समावेश है।

(3) **अलंकार**–स्वाभावोक्ति एवं दीपक।

बर दन्त की पंगति कन्दकली अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच, जगै छबि मोतिन माल अमोलन की।
घुंघरारि लटै लटकै मुख ऊपर, कुन्डल लोल कपोलन की।
'नवछावरि प्रात करै तुलसी' बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥ 5 ॥

शब्दार्थ–बर = श्रेष्ठ। **पंगति** = पंक्ति। **कुंदकली** = कुंद (श्वेत-वर्ण का पुष्प) की कली। **अधराधर** = दोनों ओठ। **पल्लव** = पत्ते। **चपला** = विद्युत। **घन** = मेघ। **मोतिन माल** = मोतियों की माला। **धुंधरारि** = धुंधराली। **लोल** = चंचल। **बलि जाऊँ** = न्योछावर होता हूँ। **बोलन** = बोलना, (तुतलाहट)।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदसजी ने राम के बाल-रूप का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या–कुंद नामक पुष्प की कलिकाओं के समान सुन्दर दांतों की पंक्ति तथा नये कोमल पत्तों के समान ऊपर-नीचे दोनों ओष्ठों के खोलने पर मैं (तुलसीदास) बलि जाता हूँ। वे मोतियों की माला को धारण किए हैं–जिसकी कांति मेघों में चमकती विद्युत् के समान है–ऐसी शोभा पर मैं (तुलसीदास) न्योछावर होता हूँ। उनके मुखमण्डल पर घुंघराली लटाएं लटक रही है तथा उनके कपोल प्रदेशों पर कानों में धारण किए हुए हिलते हुए कुंडलों और उनकी तोतली बोली पर मैं बलि जाता हूँ। सब प्रकार से तुलसीदासजी उनके इस प्रकार के बाल-रूप-माधुर्य पर अपने प्राणों को न्योछावर करते हैं।

विशेष–

(1) यहाँ बाल-रूप राम की दंत-पंक्ति, अधराधर, मोतियों की माला घुंघराली अलकों तथा चपल कुण्डलों का मनोहर वर्णन हुआ है।

(2) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस के निम्न अंश देखें –

'चिक्कण कध कुंचित गमुआरे। बहु प्रकार रचि मातु संवारे।
सुन्दर अवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
दुई दुई दसन अधर अरुणारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥"

(3) **अलंकार**–उपमा एवं रूपक।

पदकंजनि मंजु बनीं पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानि लिये।
लरिका संग खेलत डोलत है, सरजूतट, चौहट, हाट, हिए।
'तुलसी' अस बालक सौ नहिं नेह कहा जय जोग समाधि किए।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहाँ जग में फल कौन किए ॥ 6 ॥

शब्दार्थ–पदकंजनि = कमल रूपी चरणों में। **मंजु** = मनोहर। **पनहीं** = जुतियां। **धनुहीं** = छोटा (बालानुरूप) धनुष। **सर** = बाण (सं. शर)। **पंकजपानि** = कमल रूपी हाथ। लरिका **संग** = लड़कों (साथियों) के साथ। **सरजूतट** = सरयू नामक नदी के किनारे। **हाटा** = बाजार। **अस** = ऐसा। **नेह** = स्नेह, प्रेम। **जोग** = योग। **खर** = गधा। **सूकर** = सूअर। **जग** = संसार।

नोट

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने बालक राम के क्षत्रियोचित वेश एवं कीड़ा भ्रमण करने के विषय में वर्णन किया है।

व्याख्या–बालक राम कमल के सदृश कोमल चरणों में जूतियाँ धारण किए हुए हैं जो परम मनोहर प्रतीत हो रही हैं। वे अपने कमल रूपी हाथों में धनुष बाण (बालोचित) धारण किए हुए हैं। वे सरयू नदी के किनारे, चौमुहानियां, बाजारों एवं अपने सेवकों के हृदय में अपने साथियों (बालकों) के साथ खेलते घूम रहे हैं। जिसे ऐसे परम सुन्दर बालक (राम) के प्रति स्नेह नहीं है तो उसे योग, जप एवं समाधि आदि साधनाओं के करने से क्या प्राप्त हो सकता है अर्थात् ये सब व्यर्थ ही हैं, ऐसे मनुष्य के जीवित रहने से उसे इस संसार में रहकर ये सब व्यर्थ ही हैं, ऐसे मनुष्य के जीवित रहने से उसे इस संसार में रहकर भला क्या फल मिल सकता है?

विशेष–

(1) यहां बाल-रूप राम के दर्शन को ही भक्त के जीवन का चरम लक्ष्य अभिहित किया गया है।

(2) यहां बालक राम के दर्शन को योग, जप तथा समाधि से कहीं उत्कृष्ट बतलाया गया है।

(3) **अलंकार**–स्वाभावोक्ति एवं रूपक।

सरज बर तीरहितीर फिरै रघुवीर सखा अरु वीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै।
'तुलसी' तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इक्कीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न पबै ॥ 7 ॥

शब्दार्थ–तीरहितीर = किनारे-किनारे। **फिरै** = भ्रमण करना। **सखा** = मित्र। **बीर** = भाई। **निषंग** = तरकश, तूणीर। **कटि** = कमर। **पीत** = पीला। **दुकूल** = रेशमी वस्त्र। **फबै** = शोभित होना। **तेहि** = उसी। **औसर** = अवसर (क्षण)। **लावनिता** = लावण्य, सौन्दर्य। **मति** = बुद्धि। **भारति** = सरस्वती, भारती। **पंगु** = लंगड़ी अर्थात् असमर्थ। **निहारि** = देखकर। **पबे** = प्राप्त होना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने बालरूप राम का उनके साथियों तथा भाइयों सहिन सरयू के तट पर भ्रमण करने के विषय में वर्णन किया है।

व्याख्या–श्री रामचन्द्रजी अपने सभी भाइयों तथा मित्रों को अपने साथ लिए हुए सरयू नामक नदी के किनारे-किनारे भ्रमण कर रहे हैं। उन सभी के हाथों में छोटे आकार वाले धनुष-वाण हैं, उनके कटि प्रदेश पर तूणीर कसा हुआ है और पीत वर्ण वाला रेशमी वस्त्र बंधा हुआ है, जो परम शोभायमान दृष्टिगोचर हो रहा है। उस समय की शोभा का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि इस दिग्पालों, कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध–इन चारों चतुर्व्युहियों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश–इन तीनों देवताओं, ऐश्वर्य सम्बन्धी नौ गुणों सतोगुणादि तीन गुणों से भी उस अवसर की शोभा उत्कृष्टतर थी। उस समय की शोभा सब प्रकार से इक्कीस अर्थात् बढ़कर थी। उस समय की सुन्दरता को देखकर सरस्वती की बुद्धि भी खोजने पर कोई उपमा नहीं पा सकी क्योंकि उसकी बुद्धि भी पंगु हो गई। भाव यह है कि जब सरस्वती देवी की बुद्धि ही उस शोभा का वर्णन करने में असमर्थ हो गई तो भला तुलसीदास उस अवसर की शोभा का वर्णन करने में किस प्रकार समर्थ हो सकता है।

विशेष–

(1) प्रयुक्त संख्यावाचक शब्दों के अर्थ के विषय में विद्वत्जन मतैक्य नहीं हैं, फलतः उन्होंने अपने-अपने ढंग से अर्थ किया है। 'इक्कीस' शब्द का अर्थ कुछ विद्वानों ने अतिशय बतलाया है। कुछ लोग इसे मुहावरे के रूप में भी स्वीकार करते हैं।

(2) यहां क्षत्रियोचित वेषभूषा का मनोहर वर्णन किया गया है।

(3) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें

"करतल बाण धनुष अति लोहा। देखत रूप चराचर मोहा।
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

नोट

(4) **अलंकार**–वीप्सा एवं सम्बन्धातिशयोक्ति।

छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया,
छोनी छोनी छाए छिति आए निभिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर मेष बपु,
बरबे को बोले बयदेही बरकाज के।
बोले बदी बरुद बजारु बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
'तुलसी' मुदित मन पुर नरनारि जैते,
बार बार हेरे मुख औद्य मृगराज के। ॥ 8 ॥

शब्दार्थ–छोनी = पृथ्वी (सं. क्षोणी)। **छोनीपति** = पृथ्वीपति। **छाजै** = सुशेभित होना। **छिति** = पृथ्वी। **प्रचंड** = पराकमी। **बरिबंड** = बलशाली। **दधु** = शरीर। **बरबे को** = वरण करने के हेतु। **बयदेही** = वैदेही अर्थात् सीता। **बाजे-बाजे (अरबी)** = बिरले, कोई-कोई। **बाहु धुनत** = भुजाएँ ठोकना। हैरे = देखना। **औध मृगराज** = अयोध्या नगरी के सिंह।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुसलीदासजी ने सीता-स्वंयवर में उपस्थित राज-समाज के ठाठ-बाट का वर्णन किया है।

व्याख्या–तुलसीदासजी कहते हैं कि निमिराज (महाराज जनक के पूर्वज) की इस धरती पर अर्थात् मिथिला नगरी में स्थान-स्थान से अनेक राजा लोग आकर उपस्थित हुए हैं। छत्रों की छाया में वे शोभायमान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उन राजाओं ने अपनी-अपनी अक्षौहिणी सेनाओं के पड़ाव स्थान-स्थान पर डाले हुए हैं। वे अतिशय बलशाली एवं पराक्रमी हैं। वे सुगठित शरीरधारी हैं तथा मनोहर वेष से युक्त हैं। उन्हें वैदेही (सीता) का वरण करने के हेतु–श्रेष्ठ कार्य विधिवत् पूर्ण हो सके–इसीलिए यहां आमंत्रित किया गया है। बंदी, चारण इत्यादि विरुदावली का गान कर रहे हैं। सुमनोहर वाद्यों का बजना आरम्भ हो गया है। उस राज-समाज में कोई-कोई वीर परमोत्साहित होकर अपनी भुजाएं ठोक रहा है। राज-समाज के इस सुन्दर दृश्य का वर्णन करने के पश्चात् तुलसीदासजी कह रहे हैं कि अयोध्या के निवासी स्त्री-पुरुष सभी अयोध्या के मृगराज के समान श्रीरामचन्द्रजी के मुख की ओर परमोल्लास के साथ बार-बार देख रहे हैं।

विशेष–

(1) सीता-स्वयंवर में उपस्थित राज-समाज की मनोरम झांकी प्रस्तुत की गई है।

(2) राज-समाज की वेष-रचना, रूप-रचना एवं उनके आनंदातिरेक कार्यों का वर्णन सुन्दर ढंग से हुआ है।

(3) अयोध्या के नर-नारियों का राम की ओर बारम्बार देखने से उनके हृदय में व्याप्त हर्षोतिरेकता ध्वनित हो रही है।

(4) **अलंकार**–रूपक एवं अनुप्रास।

सीय के स्वयंवर, समाज जहाँ राजनि को,
राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को?
पबन, पुरंदर, वृकसानु, भानु धनद से,
गुन के निधान रूपधाम सोम-काम को?
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर,
जिन्ह के गुमान सदा सालिम संग्राम को,
तहां दसरत्थ के, समर्थ साथ नाथ 'तुलसी' के,
चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम को ॥ 9 ॥

शब्दार्थ–राजनि को = राजाओं का। **पुरंदर** = इन्द्र। **कृसानु** = अग्नि (सं. कृशानु)। **भानु** = सूर्य। **धनद** = कुबेर। **सोम** = चन्द्रमा। **काम** = कामदेव। **बान** = बाणासुर (राक्षस)। **जातुधानप** = राक्षसपति अर्थात् रावण। **सरीखे** = समान। **सूर** = शूरवीर। **गुमान** = बहंकार। **सालिभ** = समूचा। **संग्राम** = युद्ध। **दसरत्थ** = दशरथ। **चपरि** = फुर्ती

नोट

से। **चाप** = धनुष। **चद्रमा ललाम** = चन्द्र भूषण जिनके भाल पर चन्द्रमा विराजमान है अर्थात् महादेव।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने प्रभु राम के द्वारा शिव-धनुष के चढ़ाये जाने के स्फूर्तिपरक कौशल का वर्णन किया है।

व्याख्या–सीता के स्वयंवर में उपस्थित राजाओं का इतना विशाल समुदाय है जिसमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे एकत्रित हुए हैं–उनके नाम के विषय में ऐसा भला कौन है, जो जान सके। उन्हें नामों से पहिचान सकना परम दुष्कर कार्य हो गया है। वे सभी अनेक गुणों से समाविष्ट हैं। वे बल-शक्ति में वायुदेव के समान, ऐश्वर्य में देवेन्द्र के समान, तेज में अग्निदेव के समान, वीरता में सूर्य के समान तथा धन-सम्पत्ति में कुबेर के समान हैं। रूपशालिता में वे चंद्रमा तथा कामदेव से भी कहीं बढ़कर हैं। जहाँ वाणासुर बलशाली तथा रावण सरीखे शूरवीर उपस्थित हैं, युद्ध-विषयक अहंकार उनके मन में सदा छाया रहता है। ऐसे समाज की उपस्थिति में राजा दशरथ के पुत्र एवं तुलसीदास के स्वामी श्री रामचंद्र ने स्फूर्ति के साथ भगवान् शिव के धनुष को चढ़ा दिया है।

विशेष–

(1) स्वयंवर में आमंत्रित राज समुदाय का सुन्दर वर्णन है।

(2) यहां विशेष रूप से राजाओं के अनेक गुणों का निरूपण हुआ है।

(3) यहां रावण तथा बाणासुर के स्वभाव के विषय में बताया गया है।

(4) यहाँ ओज गुण की झलक विशेषत: द्रष्टव्य है।

(5) **अलंकार**–अनुप्रास एवं विभावना।

मयनमहन पुरदहम गहन जानि,
आनि कै सबै को सार धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल,
किए बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है।
कुलिस कठोर कर्मपीठ सै कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है।
'तुलसी' सो राम के सरोज-पानि पर्सत ही,
टूट्यो मानों बारे तें पुरारि ही पढ़ायो है ॥ 10 ॥

शब्दार्थ–मयन महन = कामदेव का नाश करना। **पुरदहन** = त्रिपुर राक्षस का भस्म करना। **गहन** = दुष्कर। **आनि कै** = लाकर। **सारु** = सार, तत्व। **गढ़ायौ है** = बनाया है। **सदसि** = सभा में। **जेते** = जितने। **कुलिस** = वज्र। **कूर्मपीठ** = कछुवे की पीठ। **पिनाक** = शिव-धनुष। **सरोजपानि** = कमल रूपी हाथ। **पर्सत ही** = स्पर्श होते ही। **बारे तें** = बचपन से ही। पुरारि = शिव।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने धनुर्भंग का वर्णन किया है।

व्याख्या–महादेव ने कामदेव को भस्म करने तथा त्रिपुर नामक राक्षस के वध करने को दुष्कर कार्य समझ कर समस्त दुर्लभ पदार्थों से सार ग्रहण कर इस धनुष का निर्माण किया है। राजा जनक की सभा (सीता-स्वयंवर) में जितने बलशाली राजा लोग एकत्रित हुए थे उन सभी को इस शिव-धनुष ने बल में छका दिया अर्थात् वे सारे बलहीन सिद्ध कर दिए और ऐसा कर उस शिव-धनुष ने अपने बल तथा मर्यादा को सुरक्षित रक्खा। इस प्रकार उसने अपने बल को और भी अधिक बढ़ा लिया। वह धनुष वज्र तथा कछुवे की पीठ के समान कठोर था फलत: उस धनुष को कोई भी राजा स्फूर्ति से नहीं चढ़ा सका–उस धनुष के सामने सभी हार मान गए किन्तु राम के कमल रूपी हाथ के स्पर्श मात्र से ही शिव का धनुष इस प्रकार से टूट गया मानो उस धनुष को बचपन में ही महोदव ने पढ़ा दिया हो–सिखला दिया हो कि वह केवल राम के हाथ का स्पर्श प्राप्त कर ही टूटे।

नोट

विशेष–

(1) शिव-धनुष की रचना समस्त पदार्थों के सार से बताई है।

(2) यहाँ शिव धनुष की कठोरता को वज्त्र एवं कच्छप पीठ से भी कहीं कढ़कर बतलाया गया है।

(3) शिव-धनुर्भंग में राम के हस्त स्पर्श की परिकल्पना एक अनूठापन लिये हुए है।

(4) **अलंकार–**रूपक, उत्प्रेक्षा एवं विभावना।

डिगति उर्बि अति गुर्वि, सर्ब पब्बै समुद्र सर।
व्याल बधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरबिमान, हिमभानु, भानु संघटित परस्पर।
चौके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमलयौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि सबहिं राम सिवधनु दल्यौ ॥11॥

शब्दार्थ–डिगति = डिगना, हिलना। **उर्बि** = धरती (उर्वी)। **गुर्वि** = भारी (सं. गुर्वी)। **पब्बे** = पर्वत। **सर** = तालाब। **बिकल** = व्याकुल। **चराचर** = जंगम, स्थावर अर्थात समूचा जगत्। **दिग्गयंद** = दिशाओं के गजराज। **लरखत** = लड़खडाना। **हिमभानु** = शशि–(शीतल किरणोंवाला)। **दसकंठ** = रावण। **मुक्खभर** = मुँह के बल, औंधे मुंह । **बिरंचि** = ब्रह्म। **कोल** = सुअर। **कमठ** = कछुआ। **अहि** = सर्प। **चंड** = तीव्र। **धुनि** = आवाज, (ध्वनि)। **सिवधनु** = शिव-धनुष।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने धनुर्भग विषयक प्रभाव की व्यापकता का निरूपण किया है।

व्याख्या–जब रामचन्द्रजी ने शिव के धनुष को तोड़ा, तब ही उसकी कर्कश ध्वनि ने समूचे ब्रह्माण्ड को खण्ड-खण्ड कर दिया। बड़ी भारी धरती डगमगाने लगी। समस्त पर्वत, तालाब तथा सागर खलबला गए। उस क्षण सर्पराज उसकी कठोर ध्वनि को सुनकर बधिर हो गए तथा दिशाओं के पालक, चर-अचर सभी व्याकुल हो उठे, दिशाओं के गजराज ध्वनि से संत्रस्त होकर लड़खड़ाने लगे और रावण मुंह के बल गिर पड़ा। आकाश में देवताओं के विमान, चन्द्रमा तथा सूर्य परस्पर टकरा उठे–यहाँ तक कि शंकर सहित ब्रह्मा, वाराह सर्प एवं कच्छप–सभी पूर्ण रूप से विकल हो उठे।

विशेष–

(1) धनुर्भंग से उत्पन्न तीव्र ध्वनि की कर्कशता से उत्पन्न हुए प्रभाव का अंकन किया गया है।

(2) भावसाम्य के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–

"भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाज तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।
सर असर मनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं।
को दंड खंण्डेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं॥"

(3) **अलंकार–**अतिशयोक्ति।

लोचनाभिराम धनस्याम रामरूप-सिसु,
सखी कहे सों तू प्रेम-पय पालि री।
वालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तोरयो,
मंडलीक मंडली-प्रताप-दाप दालि री।

नोट

जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, 'तुलसी' को,
सबको भावतौ ह्वै मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला की कोखि पर तोखि तन वारिए री,
राम दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥ 12 ॥

शब्दार्थ–लोचनाभिराम = नयनों को आंदित करने वाले। **सों** = से। **प्रेम-पय** = प्रेम रूपी दूध। **ख्याल ही** = खेल ही में, लीला ही में। **दाप** = घमंड (सं. दर्प)। **भावतौ** = मन को रुचने वाला, मनोवांछित। **कौसिला** = कौशल्या। **तोखि** = तुष्ट होना। **तन** = शरीर। **आलि** = सखी, सहेली।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने श्रीराम के विषय में अयोध्या निवासी स्त्रियों के स्वाभाविक अनुराग का निरूपण किया है।

व्याख्या-एक सुन्दरी अपनी सहेली को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि हे सखि! श्याम मेघ के समान वर्ण वाले तथा नयनों को आनन्दित करने वाले राम के बालरूप को स्वकीय स्नेहरूपी दूध से पालन कर–दूसरे शब्दों में–राम के बालरूप के प्रति अपनी अनुरक्ति को बराबर बनाये रक्खा। नृपति दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र ने शिव के धनुष को खेल-खेल ही में अर्थात् सुगमता पूर्वक तोड़ दिया, इस प्रकार उन्होंने राज-समाज के पराक्रम विषयक अभिमान को चूर-चूर कर दिया। इसमें राजा विदेह, सीता हमारी, तुम्हारी और तुलसी की–सभी की मनचाही हो गई जिसके बारे में मैंने कल ही तुम्हें बतलाया था। माता कौशल्या धन्य हैं। हमें उनकी कोख पर प्रसन्न होकर अपने शरीर को न्यौछावर कर देना ही श्रेयस्कर है। हमें राजा दशरथ पर बलि-बलि जाना चाहिए।

विशेष–

(1) यहां कौशल्या की कोख की सराहना की गई है जिससे राम उत्पन्न हुए और उन्होंने शिव-धनुष को भंग करके राजा-महाराजाओं के अहंकार का नाश किया।

(2) 'रामरूप-सिसु' तथा 'प्रेम-पय' का अर्थ विशेष साभिप्रेत है।

(3) **अलंकार–**अनुमान एवं रूपक।

दूध दधि रोचना कनकथार भरि-भरि,
आरती संवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल कर-कंज सोहै जानकी के,
"पाहिराऔ राधोजू को" साखियाँ सिखावतीं।
तुलसी मुदितामन जनक नगर-जन,
झांकती झरोखे लागीं शोभां रानी पावतीं।
मनहुं चकोरी चारु बैठीं निज-निज नींड़,
चंद की किरन पीवै पलकैं न लावतीं ॥ 13 ॥

शब्दार्थ–दधि = दही। **कनक थार** = सोने का थाल। **बर नारि** = सुन्दर तथा श्रेष्ठ स्त्रियाँ। **राघोजू** = श्री रामचन्द्र। **चारु** = मनोहर। **निज** = अपना। **नीड़** = घौंसला। **किरन** = किरण।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने जयमाला हाथों में धारण किए हुए सीता के प्रस्थान की सुन्दर झांकी उपस्थित की है।

व्याख्या–सौभाग्यवती सुन्दरियाँ सोने की थालियों में दूध, दही, रोली भर-भर कर आरती संवार कर मंगलगीत गाती हुई मंडप को चल दीं। उस समय कमल रूपी हाथों में जयमाला को धारण किए हुए सीता परम शोभायमान प्रतीत हो रही थीं और उनकी सहेलियाँ 'श्रीराम को यह माला पहिनाओ'–इस प्रकार से उन्हें सिखला रहीं थीं। उस क्षण जनकनगरी के सभी स्त्री-पुरुष हृदय में परमानन्दित हो रहे थे। उस समय अन्तः पुर के झरोखों से झाँकती हुईं रानियाँ

नोट

इस प्रकार से प्रतीत हो रही थीं मानो श्रेष्ठ चकोरियाँ अपने-अपने घौंसलों में बैठी हुई चन्द्रमा (राम के मुखमण्डल) की किरणों को बिना पलक झंपाए (निर्निमेष दृष्टि से) निहार रहीं थीं।

विशेष–

(1) यहाँ जनकनगरी के निवासियों में व्याप्त परमानन्द का चित्रण किया गया है।

(2) यहाँ रानियों में व्याप्त राम-दर्शनजन्य उत्कंठा का मनोहर चित्रण है।

(3) 'पलकै न लावतीं' में मुहावरे का प्रयोग दर्शनीय है।

(4) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का प्रस्तुत अंश देखें–

"कर सरोज जयमाल सुहाई। विश्व विजय शोभा जनु पाई।

× × ×

जाइ समीप राम छवि देखी। रहि जनु कुंवरि चित्र अवरेखी।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।।"

(5) **अलंकार–**छेकानुप्रास एवं उत्प्रेक्षा।

नोट्स रामचरित मानस में तुलसीदास ने राम के निर्गुण रूप का भी विवेचन किया है। किंतु कवितावली में राम के केवल सगुण रूप का ही वर्णन हुआ है।

नगर निसान बर बाजै, ब्योम दुन्दुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं।
जय जय तिहूं पुर, जयमाल राम-उर,
बरषै सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं।
जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
'तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
सांवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरी,
'जोरी जियौ जुग-जुग' सखीजन जांचहीं ॥ 14 ॥

शब्दार्थ–व्योम = आकाश। **दुंदुभी** = नगाड़े। **सुरनारि** = देव-ललनाएँ। **सुमन** = फूल। **रूरै** = मनोहर। **रांचही** = रंगना, अनुरक्त होना। **पन** = प्रण। **तृन तोरी** = तिनका तोड़ना। **जांचहीं** = याचना करना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने सीता द्वारा राम को जयमाला पहिनाये जाने तथा व्याप्त परमानन्द का वर्णन किया है।

व्याख्या–राजा जनक की नगरी में अनेक प्रकार के मनोहर एवं मांगलिक वाद्य बजने लगे तथा आकाश में ढोलों-नगाड़ों का शब्द होने लगा। देव-ललनाएं आकाश में विमानरूढ़ होकर गीत गाती हुई नृत्य करने लगीं। श्रीराम के गले में जयमाला को देखकर समूचे संसार में–तीनों लोकों में जयघोष होने लगा। श्रीराम के मनोहर रूप के प्रति विशेषत: अनुरक्त होकर देवजनों में पुष्पों की वर्षा की। राजा जनक की धनुष तोड़े जाने की प्रतिज्ञा का निर्वाह हो गया और सभी की मनोनुकूलतापूर्ण हो गई। समस्त जनों के रोम-रोम में परम हर्ष व्याप्त हो रहा था। समस्त सखियाँ श्याम वर्ण वाले किशोरवय राम तथा गोरे वाली सीता की शोभा पर तिनके तोड़ रहीं थीं जिससे उन्हें किसी प्रकार की कुदृष्टि न पड़े और यह प्रार्थना कर रहीं थीं कि यह सीता-राम की युगल जोड़ी युग-युग तक जीवित रहे।

नोट

विशेष–

(1) देवजनों तथा देव-ललनाओं में व्याप्त परम हर्ष का सजीव चित्रण हुआ है।

(2) जनकपुरी के परमानन्दमय वातावरण की सुन्दर सुष्टि हुई है।

(3) 'तृन तोरी' मुहावरे का प्रयोग विशेषत: प्रेक्षणीय है।

(4) **अलंकार**–अनुप्रास।

भले भूप कहत भले भदेस भूपति सौ,
लोक लखि बोलिए, पुनीत रीतिमारषी।
जगदंबा जानकी, जगतपितु रामचन्द्र,
जानि, जिय जीबौ, जो न लागै मुंह कारषी।
देख हैं अनेक व्याह, सने हैं पुरान-वेद
बूझे हैं सुजान-साधु नर-नारि पारषी।
ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान,
राम से न वर, दुलही न सीय सारषी ॥ 15 ॥

शब्दार्थ–भूप = राजा। **भदेस** = बुरे स्वभाव वाले अर्थात् दुष्ट। **लोक** = लोकाचार, लोक व्यवहार (लक्ष्यार्थ)। **लखि** = देखकर। **पुनीत** = पवित्र। **रीतिमारषी** = ऋषियों, मुनियों द्वारा विहित परम्परा। **जगदम्बा** = जगत् माता। **जानि** = जानकर। **मुंह कारषी** = मुंह पर कालिख लगना। **सुजान** = चतुर। **पारषी** = परख करने वाले। **सम** = समान। **बर** = दुल्हा। **दुलही** = दुल्हिन। **सीय** = सीता। **सारषी** = समान, बराबर।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने श्रीराम तथा सीता के वैवाहिक प्रसंग की अनुपमता एवं समधियों (राजा दशरथ तथा जनक) की पारस्परिक अनुरूपता का मनोरम वर्णन किया है।

व्याख्या–जनकपुरी में सीता स्वयंवर में आमन्त्रित राज-समाज में भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले राजा विराजमान थे। वहाँ उपस्थित श्रेष्ठ प्रकृति के राजा लोग दुष्ट स्वभाव वाले राजाओं से शुभ वचन कहने लगे कि आप जो-कुछ भी बोलें वह सब लोक-व्यवहार के अनुकूल तथा ऋषि-प्रणीत परम्परा के अनुकूल होना चाहिए। आप सभी अब जानकी को जग-माता के रूप में तथा श्रीरामचन्द्र को जगत्पिता के रूप में समझिए ताकि बाद में किसी के मुख पर कालिमा न लगे अर्थात् किसी को निन्दा का भाजन न बनना पड़े। हम लोगों ने अनेक विवाह देखे हैं। वेदों एवं पुराणों में अनेक विवाहों का वर्णन सुना है तथा चतुरों, ज्ञानियों, साधुजनों, अनुभवी नर-नारियों से भी वैवाहिक विषय में पूछा है। अन्त में हम सभी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हमने राजा दशरथ और राजा जनक जैसे समान समधियों के रूप में, श्रीराम के समान वर-रूप में तथा सीता के समान वधू के रूप में कभी नहीं देखा जैसाकि हम यहाँ देख रहे हैं।

विशेष–

(1) यहां राजा दशरथ और राजा जनक को सुयोग्य समधियों के रूप में चित्रित किया गया है। तद्विषयक पराक्रम आदि ध्वनित है।

(2) 'लागे मुंह कारषी' मुहावरों का प्रयोग प्रेक्षणीय है।

(3) राम-सीता के विवाह को अनुपम एवं दिव्य विवाह के रूप में व्यक्त किया गया हैं

(4) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति एवं अनुप्रास।

बानी, बिधि, गौरी, हर, सैसहू, गनंस कहो,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहु-बारिखो।

नोट

चारिदस भुवन निहारि नर नारि सब,
नारद को परदा न नारद सौ पारखो।
तिन कही जग में जगमगाति जोरी एक,
दूजो की कहैया और सुनुया चख चारिखो।
रमा रमारमन, सुजान हनुमान कही,
सीय-सी न तीय, न पुरुष राम सारिखो ॥ 16 ॥

शब्दार्थ–बानी = सरस्वती (वाणी)। **बिधि** = ब्रह्मा। **गौरी** = पार्वती। **हर** = महादेव। **सैसहू** = शेषनाग। **गनेस** = गणेश। **लोमस** = ऋषि का नाम। **बहु बारिखो** = बहुवर्षीय, वृद्ध। **चारिदास** = चौदह। **निहारि** = देखकर। **पारखो** = परख करने वाला। **जग** = संसार। **दूजों** = दूसरा। **चख चारिखो** = चार नेत्रों (चक्षुओं) वाला।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने राम-सीता की युगल-छवि का मनोहर वर्णन किया है।

व्याख्या–सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, शिव, शेषनाग तथा गणेश–सभी देवी-देवताओं ने राम-सीता की इस जुगल जोड़ी को यश, प्रताप, कीर्ति, गुण, रूप आदि में अनुपम बतलाया है। इसके समकक्ष कोई भी जोड़ी इस सम्पूर्ण विश्व में नहीं है। देवी-देवताओं के इस कथन का समर्थन बहुवर्ष जीवी मुनि लोमश तथा काकभूशुंडि ने किया है। इसके अतिरिक्त नारद मुनि जो पारखी हैं, उन्होंने भी इसी बात को कहा है। नारदमुनि से तो कोई बात छिपी हुई रह ही नहीं सकती। मात्र राम-सीता की जोड़ी ही देदीप्यमान हो रही है। इसकी समता करने वाली दूसरी जोड़ी के बारे में बतलाने और सुनने वाला चार नेत्रों वाला भी कोई व्यक्ति नहीं है। लक्ष्मी, विष्णु, तथा वीर हनुमान् ने भी यही बतलाया है कि राम के समान न तो कोई श्रेष्ठ पुरुष है और सीता के समान न कोई नारी है।

विशेष–

(1) सीता-राम की मनोहर तथा दिव्य जोड़ी अनुपमेय है।

(2) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति, अनुप्रास एवं व्यतिरेक।

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलहीं सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुबा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।
राम को रूप निहारिति जानकि कंगन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥ 17 ॥

शब्दार्थ–सुन्दरि = सुन्दरियां। **जुबा** = द्यूत, जुआ। **जुरि** = मिलकर, एकत्रित होकर। **विप्र** = ब्राह्मण। **निहाराति** = देखना। **यातें** = इससे।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने श्रीरामचन्द्रजी के प्रति सीता की विशेष अनुरक्ति का वर्णन किया है।

व्याख्या–श्रीरामचन्द्र वर के रूप में तथा सीता सुन्दर वधु के रूप में थे। सभी सुन्दरियां एकत्रित होकर मांगलिक गाती हुई मन्दिर में उन्हें ले पहुंची। लोक-परम्परा के अनुसार वहां वर-वधू की पारस्परिक द्यूत क्रीड़ा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ तथा दूसरी ओर ब्राह्मणों द्वारा वेद-मंत्रों का सस्वर पाठ होने लगा। सीता अपने कंगन के नग में राम की परछाईं को देखने लगीं–जिसके फलस्वरूप उनकी ओर विशेष आसक्त हो गई और इससे अपने दांव को चलने की उन्हें तनिक भी सुधि नहीं रही। सीता अपने हाथ को टिकाये हुए ही रह गई–एक पल के लिए भी उन्होंने उस हाथ को तनिक भी नहीं हटाया।

विशेष–

(1) यहां सीता के सात्विक भावों का प्रकाशन हुआ है।

(2) चित्रात्मकता विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

नोट

(3) अलंकार–स्वाभावोक्ति।

भूपमण्डली प्रचंड चंडीस-कोदंड खड्यो,
चड बाहुदंड जाको तौहि सौ कहतु हों।
कठिन कुठार-धार धारिबे की धीरताहि,
बीरत बिदित ताकी देखियै चहतु हों।
'तुलसी' समाज-राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हों।
छोनी में न छंड्यो छप्यो छनिप को छोना छोटो,
छोनिप छपन बांको बिरुद बहतु हों ॥ 18 ॥

शब्दार्थ–भूपमंडली = राजाओं का समाज। **चंडीस-कोदंड** = महादेव का धनुष। **चंड** = पराक्रमशाली। **कुठारधार** = परशु की धार। **तजि** = त्यागकर। **गाज्यौ** = गर्जना की। **मृगराज** = सिंह। **गहतु** = पकड़ना। **छोनी** = पृथ्वी। **छोनिप** = भूपति। **छोना** = छोटा बच्चा। **छोनिप छपन** = क्षत्रिय-संहारक।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने राज-समाज में परशुराम के पधारने तथा क्रुद्ध होने का वर्णन किया है।

व्याख्या–श्री राम के द्वारा धनुष तोड़े जाने से उसकी कठोर ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गई। उस कर्कश ध्वनि को सुनकर परशुराम सीता-स्वयंवर में आमंत्रित राजाओं के समाज में पधारे। वहां आकर वे कहने लगे–राजाओं के समाज में जिसने महादेव के धनुष को तोड़ा है–जिसके भुजदंड परम शक्तिशाली हैं–उसी से मैं कह रहा हूँ। उसकी वीरता तथा अपने परशु की कठिन धार को सहन करने की धीरता को मैं देखना चाहता हूँ। वह राज-समाज को त्यागकर बाहर आ जावे। जैसे मृगराज गजराज को पकड़ लेता है, वैसे ही मैं (परशुराम) उसे भी पकड़ लूंगा। मैंने इस धरती पर छिपे हुए छोटे-छोटे बालकों को भी नहीं छोड़ा। मैं तो क्षत्रिय राजाओं के नाशकर्ता के रूप में अपने बांके यश को धारण करता हूँ।

विशेष–

(1) परशुराम को क्षत्रिय-कुल-संहारक के रूप में चित्रित किया गया है।

(2) परशुराम के क्रोध का मूल कारण धनुष-भंग अभिहित है।

(3) यहां परशुराम की दर्पोक्ति विशेषत: ध्यातव्य है।

(4) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें–

अति रिस बोले वचन कठौरा। कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा॥
बेगि दिखाउ मूढ़ ननु आजू। उलयै महि जहँ लगि तब राजू॥

(5) **अलंकार–**अनुप्रास।

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानों मौनता गही।
रौषै माषै लखन अकनि अनखौहीं बातें,
'तुलसी' बिनीत बानी विहंसि ऐसी कही।
सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ,
प्रगट प्रताप, आपु कहौ सो सब सही।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक में सरीकता कहा रही ॥ 19 ॥

नोट

शब्दार्थ–निपट = पूर्णतया। **निदरि** = अपमानित कर। **कुठार पानि** = कुठार है पारिम में जिसके अर्थात् परशुराम। **त्रास** = भय। **औनिपन** = राजाओं ने (स. अवनिप)। **गही** = ग्रहण की। **लखन** = लक्ष्मण। **अकनि** = सुनकर (सं. आकर्णय)। **अनखौहीं** = क्रोधपरक। **सरासन** = धनुष। **महेसजू** = महादेवजी। **रावरी** = आपकी। **सरीकता** = साझेदारी। **कहा** = क्या।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने लक्ष्मण के व्यंग्यपूर्ण वचनों को व्यक्त किया है।

व्याख्या–परशुराम ने सभी राजाओं को अपमानित करते हुए वचन कहे। उन वचनों से संत्रस्त होकर राजाओं ने मौनता ग्रहण कर ली। अर्थात् चुप हो गए (मानो उन्हें मौनता ने ग्रस लिया हो) किन्तु परशुराम के ऐसे अपमानजनक वचनों को सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया। उन्होंने क्रोध को दबाकर हंसते हुए नम्र स्वर में कहा कि हे भृगुनाथ! आपका सुयश तो सर्वलोकों मे फैला हुआ है। आपका पराक्रम सबको विदित है। आप जो-कुछ भी कह रहे हैं, सब सत्य है। महादेवजी का धनुष, जो टूट गया है, अब जुड़ नहीं सकता। इस धनुष में आपकी कोई साझेदारी तो नहीं रही है?

विशेष–

(1) यहाँ लक्ष्मण के स्वभाव के विषय में संकेत मिलता है।

(2) लक्ष्मण की व्यंग्योक्ति का प्रकाशन हुआ है।

(3) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें।

एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतु॥

(4) **अलंकार–**वस्तुत्प्रेक्षा।

गर्भ के अर्भक काटन को पटु-धार कुठार कराल सौं जाको।
सोई हौं बूझत राज-सभा 'धनु को दल्यो ?' हौ दलिहौं बल ताको।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै, मरिहै, करिहै कछु साकै।
गौरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ॥ 20 ॥

शब्दार्थ–गर्भ के अर्भक = गर्भ में स्थित शिशु (भ्रूण)। **पटुधार** = तेजधार। **कराल** = डरावना। **धनु कौ दल्यो** = धनुष किसने तोड़ा है। **हौं** = मैं। **दलिहौं** = दलन कर दूँगा (कुचल दुंगा)। **ताको** = उसका। **लघु आनन उत्तर देत बड़ो** = छोटा मुंह बड़ी बात (मुहावरा)। **गरूर गुमान** = अभिमान। **कौसिक** = विश्वामित्र। **ढोटो** = बालक। **काको** = किसका।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने परशुराम के वचनों को उपवर्णित किया है।

व्याख्या–गर्भस्थ शिशुओं अर्थात् भ्रूणों को काटकर गिराने में भयंकर एवं तीक्ष्ण धार वाले कुठार का धारण करने वाला मैं राज-समाज से पूछ रहा हूँ कि इस धनुष को किसने तोड़ा है। मै आज उसकी शक्ति को कुचल दुंगा। विश्वामित्र को सम्बोधित करते हुए वे कह रहे हैं कि हे विश्वामित्र! छोटा मुंह और बड़ी बात–यह छोट-सा बालक मुझसे लड़ेगा, मरेगा या यह मुझे जीतकर अपना शासन स्थापित करेगा। यह गौरवर्ण वाला, अहंकारी और छोटा-सा बालक किसका है?

विशेष–

(1) यहाँ परशुराम की उक्ति में अहँकार व्यक्त हो रहा है।

(2) यहाँ परशुराम की निर्दयता का प्रकाशन हुआ है।

(3) 'लघु आनन उत्तर देत बड़ो'–मुहावरे का प्रयोग प्रेक्षणीय है।

(4) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें–

बोले चितइ परशु की ओरा। रे सठ सुनेसि सुभाउ न मोरा॥

नोट

(5) यहाँ रौद्ररस की अभिव्यक्ति हुई है।

(6) **अलंकार**–अनुप्रास।

मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दए,
जीते जातुधान, जै जितैया बिबुधेस के।
गौतम की तीय तारी, मेटे अध भूरी भारी,
लोचन अतिथि भए जनक जनेस के।
चंड बाहुदण्ड-बल चंडीस-कोदंड खंड्यो,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देस के।
सांवरे-गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ,
नाम राम-लखन, कुमार कोसलेस के ॥ 21 ॥

शब्दर्थ–मख = यज्ञ। **काज** = कार्य। **जातुधान** = राक्षस। **जै** = जो। **जितैया** = जीतने वाले, विजयी। **बिबुधेस** = देवराज इन्द्र। **गौतम की तीय** = गौतम की पत्नी (अहल्या)। **अघ** = पाप। **भूरि** = प्रचुर, अधिक। **जनेस** = जनेश अर्थात् राजा। **चंड** = पराक्रमी। **चंडीस को दंड** = शिवधनुष। **खंड्यो** = तोड़ा। **लखन** = लक्ष्मण। **कोसलेस** = अयोध्यापति दशरथ।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने राम-लक्ष्मण के बारे में विश्वामित्र द्वारा दिए गए उनके शौर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या–विश्वामित्र ने परशुराम से निवेदन किया कि श्याम-वर्ण वाले कुमार और गौरवर्ण वाले कुमार अयोध्यापति दशरथ के पुत्र हैं और इन दोनों के नाम राम और लक्ष्मण हैं। ये दोनों धीर तथा महावीर हैं। मेरे यज्ञ की रक्षा करने के लिए राजा ने मुझे इन्हें दिया है (मैंने उनसे इन दोनों को मांगा और उन्होंने मुझे दे दिया)। देवताओं को विजित करने वाले राक्षसों को इन्होंने जीत लिया है। इन्होंने बहुत-से पापों को मिटा दिया है। इन्होंने मुनिवर गौतम की पत्नी अहल्या का उद्धार कर दिया। ये राजा जनक के नेत्रों के अतिथि हुए हैं, अर्थात् राजा जनक के नेत्रों को परमानंदित करने वालों के रूप में ये हैं। अपने पराक्रमपूर्ण भुजदण्डों से इन्होंने (राम ने) शिव के धनुष को तोड़ा है और इन्होंने देश-देशांतरों के राजाओं को जीत कर जानकी से विवाह किया है। भाव यह है कि ये साधारण पुरुष न होकर शूरवीर एवं अवतारी हैं।

विशेष–

(1) विश्वामित्र द्वारा दिए गए परिचय से राम-लक्ष्मण के अवतारी होने का संकेत उपलब्ध होता है।

(2) यहाँ विश्वामित्र ने राम-लक्षमण के द्वारा किए गए महान् कार्यों को भी संक्षेप में व्यक्त कर दिया है।

(3) यहाँ प्रसाद गुण की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई हैं

(4) **अलंकार**–अनुप्रास।

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए।
लक्खन-राम बिलोकि सप्रेम, महारिसि ते फिरि आंख दिखाए।
धीर सिरोमनि, बीर बड़े, बिनयी बिजयी, रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक सो धनु-सायक सौंपि सुभाय सिधाए ॥ 22 ॥

शब्दार्थ–कराल = भयंकर। **नृपालन के** = राजाओं के। **धाए** = दौडे। **लक्खन** = लक्ष्मण। **विलोकि** = देखकर। **महारिसि** = अत्यधिक क्रोध। **आँख दिखाए** = आँख दिखाना, डराना (मुहावरा)। **सिरोमनि** = शिरोमणि, श्रेष्ठ। **लायक** = योग्य। **भृगुनायक** = परशुराम। **सायक** = बाण। **सौंपि** = सौंपकर, सुपुर्द कर। **सिधाए** = प्रस्थान किया।

नोट

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने परशुराम के भिन्न-भिन्न भावों को व्यंजित करते हुए उनके द्वारा धनुबाण राम को सौंपे जाने का वर्णन किया है।

व्याख्या–समस्त राजाओं के लिए भयंकर कालस्वरूप परशुराम शिव के धनुष के भंग होने की प्रचंड ध्वनि को सुनकर हाथ में परशु को धारण किए दौड़ पड़े। उन्होंने पहले तो राम-लक्ष्मण को प्रेमसहित दृष्टि से देखा और बाद में महाक्रुद्ध होकर वे आंखें दिखाने लगे। उन्हें श्रीराम धीर, सर्वश्रेष्ठ, महावीर, विनयशील, विजयी के रूप में शोभायमान प्रतीत हुए। परशुराम सर्वप्रकारेण योग्य होते हुए भी उन्हें परब्रह्म समझकर अपने धनुष-बाण रामजी को सौंपकर बन को चले गए।

विशेष–

(1) यहाँ परशुराम के बाह्य एवं आंतरिक भावों का प्रस्फुटन हुआ है। भाव-शबलता का एक सुन्दर उदाहरण है।

(2) 'आँख दिखाए'–मुहावरे का प्रयोग विशेष रूप से दृष्टव्य है।

(3) यहाँ श्रीराम के स्वरूप के विषय में प्रभावकारी वर्णन हुआ है।

(4) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें:-

सुनि मृवु गूढ़ वचन रघुपति के। उघरे पटल परशुधर मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचेहू चाप मिटै संदेहू।
जान राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले बचन, प्रेम न हृदय समात॥

(5) यहाँ ओज-गुण की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(6) **अलंकार–**अनुप्रास।

क्या आप जानते हैं कवितावली की रचना भाटों की शैली में हुई है। इसलिए तुलसी ने कवितावली के पद संभवत: गाए जाने के लिए लिखे हैं।

अयोध्याकाण्ड

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई।
सग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥ 1 ॥

शब्दार्थ–कीर = तोता। **कागर** = पंख। **नृपचीर** = राजोचित वस्त्र। **उप्पम** = उपमा। **औध** = अयोध्या। **मगबास** = मार्ग की निवासस्थली। **रूख** = वृक्ष। **सुबंधु** = सुयोग्य भाई। **पुनीत** = पवित्र। **देह** = शरीर। **राजिवलोचन** = कमल नेत्र। **बटाऊ** = राहगीर।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने श्रीराम के वन-प्रस्थान का वर्णन किया है।

व्याख्या–प्रभु राम ने वन को प्रस्थान करते समय राजोचित वस्त्रों एवं आभूषणों को उसी प्रकार त्याग दिया जैसे बसन्त ऋतु में तोता अपने पंखों को त्याग देता है। कोई पथिक थककर कहीं मार्ग में वृक्ष के नीचे विश्राम करता

नोट

है, और फिर उसे त्यागकर अपने लक्ष्य की ओर आगे चल देता है उसी प्रकार राम ने अयोध्या नगरी को त्याग दिया। उन्होंने मार्ग पर चलने वाले असंख्य नर-नारियों का साथ इसी प्रकार छोड़ दिया। राम के साथ उनके छोटे एवं सुयोग्य भाई लक्ष्मण थे तथा उनकी पवित्र विचारों वाली पत्नी सीता थी जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो धर्म तथा क्रिया ने मूर्तरूप धारण कर लिया हो। कमल-नेत्र प्रभु राम अपने पिता दशरथ के राज्य (अयोध्या) को त्याग कर इस प्रकार चल दिए जिस प्रकार कोई पथिक अपनी मंजिल की ओर आगे बढ़ता जाता है। उसे लक्ष्य प्राप्ति की ही चिन्ता रहती है, किसी प्रकार का आर्कषण उसे नहीं होता।

विशेष–

(1) यहां अयोध्या-विषयक राज्य-त्याग से प्रभु राम की इच्छातीतावस्था अभिव्यंजित हो रही है। वे सभी प्रकार के हर्ष-विवाद की सामान्य दशा से परे दिखलाए गए हैं।

(2) यहां श्रीराम को एक पथिक के रूप में चित्रांकित किया गया है।

(3) यहां माधुर्य गुण की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

(4) **अलंकार–**उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास।

कागर-कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिया लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।
संग सुभामिनी भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥ 2 ॥

शब्दार्थ–कागर कीर = तोते के पंख। **चीर** = वस्त्र। **लस्यो** = सुशोभित। **नीर** = जल। **सनमानि** = सम्मानित कर। **सुभाय** = अच्छे भाव से। **सगाई** = सम्बन्ध। **द्वै** = दो। **जनु** = मानो। **हुते** = थे। **पहुनाई** = अतिथि।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने प्रभु राम की राज्य निर्लोभित्व दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या–प्रभु रामचन्द्र वन-प्रस्थान के समय ऐसे शोभित प्रतीत हो रहे थे, जैसे किसी तोते ने पंखों का त्यागकर दिया हो तथा जिस प्रकार कोई के हट जाने से जल की निर्मलता दृष्टिगोचर होती है, उन्होंने अपने माता-पिता एवं प्रियजनों सभी को अपने सहज स्वभाव अर्थात् प्रेम से यथासम्बन्ध सम्मानित कर तथा साथ में अपनी प्रिया सीता एवं योग्य भाई को लेकर वहां से प्रस्थान किया। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे अयोध्या नगरी में दो दिनों (थोड़े समय) के लिये ही अतिथि-रूप में रहे थे। कमलोपम नेत्रों वाले प्रभु राम अपने पैतृक राज्य को त्याग, कर इस प्रकार चल दिए जैसे पथिक मार्ग के समस्त आकर्षणों को त्यागकर आगे बढ़ता ही जाता है।

विशेष–

(1) राम को एक पान्थ के रूप में अभिव्यंजित किया है।

(2) यहां राम को एक पूर्णत: निस्पृह के रूप में चित्रित किया गया है।

(3) यहां शान्त-रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(4) **अलंकार–**उपमा एवं उत्प्रेक्षा।

सिथिल-स्नेह कहैं कौसिला सुमित्राज सों
'मैं न लखी सौति, सखी भगिनि ज्यों सेई है।'
कहैं मोहिं मैया, कहौं 'मैं न मैया भरत की,
बलैया लेहौं, भैया तेरी मैया कैकेई है।
तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानौं कै मतेई है।

नोट

बाम विधि मेरो सुख सिरिस सुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह कुलिस लैटेई है ॥ 3 ॥

शब्दार्थ–कौसिला = कौशल्या। **लखी** = देखा। **सौति** = सपत्नी। **भगिनी** = बहन। **कैकई** = कैकैयी। **काय मन बानी** = शरीर, मन एवं वचन। **बाम** = विपरीत, कुटिल। **विधि** = विधाता। **सिरिस** = शिरीप। **छलछुरी** = छलकपट रूपी छुरी। **कोह** = क्रोध। **कुलिस** = वज्र। **टेई है** = तेज करना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने कैकेयी की स्वभावगत विशेषता का उद्‌घाटन किया है।

व्याख्या–माता कौशल्या तथा सुमित्रा के वार्तालाप को प्रस्तुत करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं–राम-विषयक स्नेह से शिथिल होकर कौशल्या सुमित्रा से कहने लगी कि हे सखि! मैंने कभी भी कैकेयी को अपनी सौत के रूप में नहीं समझा जैसाकि सामान्यत: सौत के साथ व्यवहारिक लोक में देखने में आता हूँ। मैंने तो उन्हें अपनी बहन के रूप में ही देखा है। मुझे जब भी राम मैया कहकर सम्बोधित करते तब मैं यही कहती कि मैं तेरी बलैया लेती हूँ। मैं तो भरत की माता हूँ। मैं तेरी माता नहीं हूँ। तेरी माता तो कैकेयी है। राम अपने सीधे स्वभाव के कारण उन्हें ही अपनी माता समझते थे। राम ने शरीर, मन तथा वचन से कैकेयी को ही अपनी माता समझा। कभी भी उन्हें विमाता नहीं समझा। मुझे जो राम से सहज सुख मिल रहा था, जो शिरीष पुष्प के समान कोमल था, विपरीत विधाता ने उसे काटने के लिए कैकेयी छलरूपी छुरी को क्रोधरूपी वज्र पर तीक्ष्ण कर आघात किया। सारांश यह है कि कैकेयी के स्वभाव में छल-कपट भरा था, यह मुझे बिलकुल पता नहीं था। उसी के कारण मेरे पुत्र राम को वनवास-जैसा कष्ट भोगने के लिए जाना पड़ा।

विशेष–

(1) यहां कौशल्या की आंतरिक दशा का निरूपण हुआ है।

(2) यहां नारी-स्वभाव विषयक मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रेक्षणीय है।

(3) यहां वात्सल्यरस एवं माधुर्य गुण की मनोहर अवतारणा हुई है।

(4) **अलंकार–**उपमा, रूपक एवं छेकानुप्रास।

"कीजै कहा, जीजी जू! सुमित्रा परि पायं कहैं,
'तुलसी सहावै विधि साई सहियतु है।
रावरो सुभाव रामजन्म ही ते जानियतु,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है।
जाई राजघर, व्याहि आई राजघर माहैं,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहूँ मलीन कियो,
ताहू पर वाहु विनुराहु गहियतु है ॥ 4 ॥

शब्दार्थ–परिपांय = चरणों में पड़कर। **सहावै** = सहन करना। **रावरो** = आपका। **जाई** = उत्पन्न हुई। **मांह** = में। **लहियतु** = प्राप्त करना। **देह** = शरीर। **सुधागेह** = अमृत का गृह अर्थात् चन्द्रमा। **गहियतु है** = ग्रहण लगता है।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने सुमित्रा द्वारा कौशल्या को आश्वस्त किये जाने का वर्णन किया है।

व्याख्या–सुमित्रा कौशल्या के चरणों में गिरकर निवेदन करने लगी कि हे जीजी! अब इसके विषय में क्या उपाय किया जा सकता है? जैसा भी कष्ट भाग्य में लिखा है–ईश्वर जैसा कष्ट दे रहा है–सब प्रकार से वह सहना ही पड़ेगा। आपसे श्रीराम का जन्म हुआ है, इसी से आपकी स्वाभाविक सरलता–भोलापन सिद्ध हो रहा है। भरत की माता कैकेयी को ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था। अर्थात् ऐसा व्यवहार किसी भी दशा में अच्छा नहीं रहा। तुम राजभवन में उत्पन्न हुई और तद्‌नुरूप राज्य घराने में ही तुम्हारा विवाह हुआ। राम जैसे पुत्र को राजपुत्र के

नोट

रूप में पाकर भी तुम्हें किसी प्रकार का सुख नहीं मिल सका, यह सब भाग्य की बात है। जिस प्रकार अमृत का भंडार होते हुए भी चन्द्रमा में मृग-लांछन का दोष लगा हुआ है, वह भी भुजाहीन राहु द्वारा ग्रसा जाता है। ऐसी ही दशा तुम्हारी है कहने का भाव यह है कि तुम्हें अब किसी प्रकार का दु:खानुभव नहीं करना चाहिए। यह सब विधाता की गति है जो परम विचित्र है। विपदाएं इसी प्रकार से दल बांधकर व्यक्ति के जीवन को कष्टमय बना देती हैं।

विशेष–

(1) यहां सुमित्रा ने कौशल्या को आश्वासन देते हुए विचार व्यक्त किया है कि सब कुछ भाग्यानुसार प्राप्त होता है।

(2) यहां कैकेयी की कुटिलता के प्रति आक्रोश ध्वनित हो रहा है।

(3) **अलंकार–**दीपक एवं दृष्टान्त।

नाम अजामिल तें खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरू सिला कन होत अजाखुर वारिधि बाढ़े।
'तुलसी' जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अध गढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहं मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥ 5 ॥

शब्दार्थ–खल = दुष्ट। **नदी भव** = संसार-रूपी नदी। **बूड़त काढ़े** = डूबते हुए को बाहर निकाला अर्थात् उद्धार कर दिया। **सुमिरे** = स्मरण करना। **गिरि** = पर्वत। **सिला** = शिला। **कन** = कण। **अजाखुर** = बकरी का खुर। **बारिधि** = समुद्र। **जेहि के** = जिसके। **प्रगटी** = प्रकट हुई। **तटिनी** = नदी। **अध** = पाप। **गाढ़े** = घोर। **स्वै** = वही। **सरिता** = नदी। **करारे** = तट पर। **ह्वै ठाढ़े** = खड़े होकर।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदसजी ने भगवान् राम की स्वाभाविक सरलता का प्रकाशन किया है तथा नाम-स्मरण की महिमा को व्यक्त किया है।

व्याख्या–राम का नाम ऐसा है जिसकी महिमा अपार है। जिस नाम के हमारे अजामिल सरीखे करोड़ों पापियों का इस संसर-रूपी दुस्तर नदी से उद्धार हो गया। जिस नाम के स्मरणमात्र से ही सुमेरू पर्वत (विशाल) शिला के कण (सूक्ष्म) के रूप में हो जाता है और समुद्र बकरी के खुर के समान सहजता से लांघने योग्य हो जाता है। जिसके चरण-कमलों से गंगा नदी निस्सृत हुई जो घोर पापों का हरण करने में सक्षम हैं, ऐसे परम प्रभु राम इस गंगा नदी को पार करने के किनारे खड़े हुए नाव के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। कैसी विलक्षणता है।

विशेष–

(1) प्रभु राम की नाम-महिमा की अभिव्यक्ति हुई है।

(2) यहाँ राम को एक साधारण मानव के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

(3) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति (भक्तिपूरक भावना) एवं अत्युक्ति।

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी धर क्यों समझाइहौं जू।
'तुलसी' अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भांति जिआइहौं जू।
बरू भारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाब चढ़ाइहौं जू ॥ 6 ॥

शब्दार्थ–एहि = इस। **तें** = से। **थोरिक** = थोड़ी ही। **कटि लौं** = कमर तक। परसे = स्पर्श करने से। **पगधूरी** = चरणों की धूल। **तरनी** = नौका। **धरनी** = गृहिणी। **अवलम्ब** = सहारा, साधन। **लरिका** = बाल-बच्चे। **जिआइहौं** = जीवित रखूंगा। **वरू** = चाहे। **हौं** = मैं। **चढ़ाइहौं** = चढ़ाऊँगा।

नोट

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने केवट के द्वारा कहे गए वचनों को विन्यस्त किया है।

व्याख्या–केवट ने प्रभु राम से निवेदन किया है कि हे प्रभो! इस नदी में यहाँ पर जल अधिक गहरा नहीं है। इस घाट से थोड़ी ही दूर कमर तक ही गहरा जल है। मैं स्वयं आपको जल की गहराई दिखला देता हूँ। नाव में चढ़ाने पर क्या परिणाम हो सकता है–इसके बारे में कहता है कि आपके चरणों की धूलि के स्पर्श से कहीं मेरी नाव ही तर गई तो मेरी क्या दशा होगी। मैं अपनी घरवाली को घर जाकर क्या समझाऊंगा। यह नौका ही मेरी जीविका का आधार है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं है। मैं इस नौका के अभाव में अपने बाल-बच्चों का पेट किस प्रकार से भरूंगा। उन्हें कैसे जीवित रख सकूंगा, आप चाहें तो मुझे मार दें किन्तु मैं आपके चरणों को बिना धोये आपको नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

विशेष–

(1) केवट का अभीष्ट यही है कि वह प्रभु के चरणों का प्रक्षालन कर चरणामृत का पान करने को विशेषत: उत्सुक है। ऐसा सुन्दर अवसर वह कदापि नहीं खोना चाहता किन्तु स्पष्ट रूप में इस कारण को प्रकाशित नहीं कर सकता। उसके द्वारा दिया गया तर्क सारवान् प्रतीत होता है।

(2) केवट की दीनता, सहजता आदि स्वाभाविक विशिष्टताएँ दर्शनीय हैं। केवट की वाक्चातुर्यता व्यक्त हो रही है।

(3) यहाँ प्रसाद गुण की मनोहर अभिव्यंजना हुई है।

(4) **अलंकार**–स्वाभावोक्ति।

रावरे दोष न पांयन को, पग धूरि को भूरि प्रमाउ महा है।
पाहन तें वन-वाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है।
पावन पायं पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा हैं?
'तुलसी' सुनि केवट के बर बैन हंसे प्रभु जानकी और हहा है ॥ 7 ॥

शब्दार्थ–रावरे = आपके। **पांयन को** = चरणों का। **भूरि** = अधिक। **प्रभाउ** = प्रभाव। **पाहन** = पाषाण। **बनबाहनं** = जलयान। **पावन** = पवित्र। **पखारि कै** = धोकर। **आयसु** = आदेश। **बर** = सुन्दर। **बैन** = वचन।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने केवट के भाव का मार्मिक शब्दों में निरूपण किया है।

व्याख्या–केवट ने निवेदन किया है कि हे प्रभो! आपके चरणों का कोई दोष नहीं है। आपके चरणों की धूलि का प्रभाव समधिक है। आपके चरणों की धूलि के स्पर्श मात्र से पाषाणरूपिणी अहल्या का उद्धार हो गया। जब उसका ही उद्धार हो गया तो मेरी नाव तो जल में तिरती है और काष्ट-निर्मित कोमल है। जल में रहने के कारण यह और भी कोमल है और जल ही इसे सदैव खाता रहता है। इसका तरना तो कोई कठिन बात नहीं है। अत: मैं तो आपके चरणों को प्रक्षालित कर ही आपको नाव पर बिठला सकूंगा। आपकी क्या आज्ञा है? केवट के ऐसे विदग्धतापूर्ण सुन्दर वचनों को सुनकर प्रभु राम जानकी की ओर देखकर बहुत जोर से हंस पड़े।

विशेष–

(1) यहां केवट का वाग्वैदग्ध्य विशेषत: प्रेक्षणीय है।

(2) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–

छुअत सिला भइ नारी सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई॥
जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदम पखारन कहहूँ॥

(3) यहां माधुर्य गुण की अभिव्यंजना हुई है।

(4) **अलंकार**–विशेषोक्ति एव छंकानुप्रास।

नोट

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछू वेद न पढ़ाइहों।
सब परिवार मेरो याहि लागि, राजाजू!
हौंदीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं?
गौतम की धरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बात न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरो सौं, सांची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥ 8 ॥

शब्दार्थ–पात भरी = पत्तल भरी अर्थात् सीमित। **सहरी** = मछली (सं. शफरी)। **बाटे-बारे** = छोटे-छोटे। **याही लागि** = इसी के सहारे। **हौं** = मैं। **गढ़ाइहौं** = बनाऊंगा। **घरनी** = गृहिणी, घरवाली, पत्नी। **तरनी** = नाव। **तुलसी के ईस** = तुलसीदास के स्वामी अर्थात् राम। **सांची** = सच।

प्रसंग–यहाँ तुसलीदासजी ने केवट के मनोभावों का वर्णन किया है।

व्याख्या–केवट ने नम्र निवेदन किया है कि भगवन् मेरा परिवार तो एक पत्तल-भरी मछलियों के समान है अर्थात् मेरे परिवार की जीविका निर्वाह का एक सीमित साधन है। मेरे परिवार में बाल-बच्चे छोटे-छोटे हैं अर्थात् मेरा कच्चा परिवार है। मेरे सिवा कोई दूसरा सदस्य जीविका के निर्वाह में समर्थ नहीं है। मैं जाति से केवट हूँ। अत: मैं अपने बच्चों को वेद तो पढ़ा नहीं सकता हूँ। हे राजन, मेरा तो सारे परिवार का पेट इसी मात्र नाव के द्वारा ही पलता है। मैं दीन एवं धनहीन हूँ। यदि यह मेरी नाव तर गई तो मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं दूसरी नाव बनवा सकूं। जिस प्रकार मुनि गौतम की पत्नी अहल्या तर गई, यदि नाव भी उसी प्रकार तर गई तो मैं कहीं का भी न रहूँगा। मेरी जीविका का साधन ही समाप्त हो जायेगा। मैं निषाद जाति का व्यक्ति हूँ और आप प्रभु हैं–मैं आप से बात नहीं बढ़ाना चाहता हूँ। हे स्वामिन्! आपकी शपथ खाकर मैं कहता हूँ कि मैं आपके चरणों को बिना धोये आपको नौका पर नहीं चढ़ाऊँगा।

विशेष–

(1) यहां केवट ने अपने परिवार तथा जीविका-निर्वाह के एक मात्र नौका के विषय में विचार व्यक्त किया है जिससे उसकी दीनता, सहजता प्रदर्शित शोभा हो रही है।

(2) केवट ने यह भी व्यक्त किया है कि उसे राम से अधिक बात बढ़ाना शोभा नहीं देता है।

(3) भावसाम्य के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–
"पद पद्म धोय चढ़ाय नाव न नाथ उतराई चहौं॥
मोहि राम राउरआनि दशरथ शपथ सब सांची कहौं॥

(4) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति एवं अनुप्रास।

जिनको पुनीत बारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनी जसु बेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह भरि,
करत बिराग जप-जोग मन लाइकै॥
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनी-सो लिवाइ कै॥
तेई पायं पाइ के चढ़ाई नाव धोए बिनु,
ख्वैहों न पठावनी कै ह्वै हौं न हंसाइ कै ॥ 9 ॥

नोट

शब्दार्थ–पुनीत = पवित्र। **वारि** = जल। **पुरारि** = महादेव। **त्रिपथगामिनी** = गंगा। **जसु** = यश। **मुनिवृन्द** = मुनियों का समुदाय। **बिराग** = वैराग्य। जोग-योग। **परसि** = स्पर्श कर। **गौनो** = गमन किया। **ख्वैहों** = खोऊँगा। **पठावनी** = उतराई।

प्रसंग–यहाँ तुलसीदासजी ने केवट के भावों को व्यक्त किया है।

व्याख्या–जिनके चरणों से गंगा नदी की पवित्र जलधारा का निकास हुआ है और जिसके पवित्र जल को भगवान् महादेव अपने सिर पर धारण करते हैं और जिस गंगा नदी के यश का गान वेदों ने किया है, जिनके चरणों का ध्यान एकाग्रचित्त से योगीराज, मुनिजल, तथा देवजन सभी वैराग्य ग्रहण कर जप एवं योग साधना करते हैं, जिनके चरणों की धूलि के स्पर्श से अहल्या का उद्धार हो गया और मुनि गौतम उन्हें अपने साथ लिवाकर चले गए, ऐसे प्रभु के चरणों को प्राप्त कर, उन्हें धोये बिना मैं न तो अपनी उतराई खोना चाहूँगा और न मैं उपहास का पात्र ही बनना चाहूँगा।

विशेष–

(1) यहां केवट की हृदयगत भक्तिपरक भावना का प्रकाशन हुआ है। इसके साथ ही वाक्-चातुर्यता की झलक भी उपलब्ध होती है।

(2) यहां भगवान राम के चरणों की महिमा का वर्णन हुआ है।

(3) यहां 'प्रसाद' नामक गुण की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(4) **अलंकार–**अनुप्रास एवं उपमा।

प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं,
बंदिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पांय पीयत पुनीत बारि फेरि-फेरि।
'तुलसी' सराहैं, ताको भाग सानुराग सुर,
बरषै सुमन जय जय कहै टेरि-टेरि।
बिबुध स्नेह सानी बानी असयानी सुनि,
हंसे राघौ जानकी लखन तन हेरि-हेरि ॥ 10 ॥

शब्दार्थ–प्रभुरुख = प्रभु की अनुमति। **घरनिहिं** = घर वाली अर्थात् पत्नी को। **वदिकै** = वंदनाकर। **चहूँ टिसि** = चारों दिशाओं में अर्थात् चारों ओर से। **कठौता** = लकड़ी का पात्र। **आनि** = लाकर। **पांव** = चरण। **फेरि-फेरि** = बार-बार। **सराहें** = सराहना करना। **सुमन** = फूल। **बिबुध** = देवजन। **बानी** = वाणी, वचन। **असयानी** = सरल। **राघौ** = राघव अर्थात् राम। **लखन** = लक्ष्मण। **तन** = ओर। **हेरि-हेरि** = देखकर।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने केवट द्वारा भगवच्चरण-प्रक्षालन किए जाने तथा सपरिवार चरणोंदक पान किए जाने की सुन्दर झलक उपस्थित की है।

व्याख्या–परम प्रभु राम से अनुमति प्राप्त कर केवट अपनी पत्नी तथा अपने बाल-बच्चों को बुलाकर उनके चरणों की वंदना कर चारों ओर से घेर-घेर कर बैठ गये। एक छोटा-सा पात्र लाकर उसमें गंगा जल भर-भरकर पैरों को सभी धोने लगे और बार-बार चरणोदक पान करने लगे। इस प्रकार भगवच्चरणोदक का पान करते हुए इन सबको देखकर उनमें व्याप्त भक्ति-भावना तथा विशेष आसक्ति को देखकर देवता लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे तथा उच्च स्वर से जय-जयकार करते हुए पुष्पों की वर्षा करने लगे। प्रभु राम ऐसे अवसर पर देवताओं द्वारा प्रदर्शित स्नेह तथा केवट और उसके परिवार के सदस्यों की छलकपटहीन एवं सरल वाणी को सुनकर जानकी एवं लक्ष्मण की ओर बार-बार देखकर हंसने लगे।

नोट

विशेष–

(1) यहां केवट तथा उसके परिवार की स्वाभाविक सरलता-निश्छलता का विशेषत: अंकन हुआ है।

(2) यहां देवों द्वारा केवट के भाग्य की सराहना की गई है। उन्होंने अपना स्नेह व्यक्त करने के लिए सुमन-वृष्टि भी की है।

(3) केवट तथा उसके परिवारी जनों की छलहीन वाणी को सुनकर प्रभु राम मुग्ध हुए बिना नहीं रहे, फलत: वे बार-बार जानकी एवं लक्ष्मण की ओर देखकर हंस रहे हैं।

(4) भावात्मक तुलना के लिए रामचरिमानस के निम्न अंश देखें–

कृपासिंधु बाले मुसुकाई। सोइ करुजेहि तब नाव न जाई।।
बेगि आनि जलु पाँय पखारू। होत बिलंबु उतारहुँ पारू।।
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेई आवा।।
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा।।
बरषि सुमन सुर सकल सिंहाहीं। एहि सम पुण्य पुंज कोउ नाहीं।।

(5) **अलंकार**–वीप्सा एवं स्वाभावोक्ति।

पुर तें निकसीं रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहों कित ह्वै?
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखियां अति चारु चलीं जलच्वै ॥ 11 ॥

शब्दार्थ–पुर = नगर। **निकसीं** = निकली। **मग** = मार्ग। **डग** = कदम। **द्वै** = दो। **भाल** = मस्तक। **कनीं** = बूदें। **केतिक** = कितना। **पर्नकुटी** = पत्ती से बनी हुई कुटी। **कित** = कहां। **तिय** = स्त्री। **लखि** = देखकर।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने मार्ग-विषयक क्लांति से युक्त सीता की व्यग्रता का निरूपण किया है।

व्याख्या–श्रीराम की पत्नी सीता ने धैर्यपूर्वक नगर से वन को प्रस्थान किया। वे नगर से वन-मार्ग में दो कदम ही चल पाई होंगी कि मार्गजन्य स्वेद के कारण उनके मस्तक पर जल की बूदें झलकने लगीं और उनके मधुर ओष्ठ-सूख गए (उन्हें पैदल चलने का तनिक भी अभ्यास नहीं था। अत: स्वेद बिन्दुओं का मस्तक पर झलकना स्वाभाविक ही था) तदनन्तर उन्होंने राम से पूछा कि हे प्रिय! अभी कितनी दूर पैदल चलना शेष है? आप पत्तों की कुटी किस स्थान पर बनायेंगे? अपनी प्रिया सीता की ऐसी व्यग्रता को देखकर श्रीरामचन्द्र के मनोहर नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो उठे।

विशेष–

(1) यहां सीता के मस्तक पर बिन्दुओं का झलकना उनकी अन्यमनस्कता (मार्गजन्य कष्ट के कारण) का व्यजंक है।

(2) यहां सीता के धैर्य एवं व्यग्रता का मनोहर चित्रांकन हुआ है। नारी मनोवैज्ञानिक दृष्टि विशेषत: प्रेक्षणीय है।

(3) भावात्मक तुलना के लिए गीतावली का निम्न अंश देखें–

कहौ सो विपिन है धौं केतिक दूरि।
जहाँ गवन कियो, कुंवर कौसलपति, बूझति सिय पिय पतिहिं बिसूरि।।
तुलसीदास प्रभु प्रिया वचन सुनि नीरजनयन नीर आए पूरी।
कानन कहाँ अबहिं सुनु सुन्दरि, रघुपति चितएहित भूरि।।

नोट

(4) यहां शृंगार तथा करुण रस की झलक विशेष रूप से प्रेक्षणीय है।

(5) **अलंकार**–स्वाभावोक्ति।

जल को गए लक्खनु हैं लरिका, परिखौपिय, छांह धरीक ह्वै ठाढ़ैं।
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पांय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़ैं।
'तुलसी' रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै, बैठे विलम्ब लौ कंटक काढ़ै।
जानकी नाह को नेहु लख्यौ, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़ै ॥ 12 ॥

शब्दार्थ–जल कौ = जल लेने के लिए। **लक्खन** = लक्ष्मण। **लरिका** = लड़का, बालक। **पारिखौ** = प्रतीक्षा कर ली जावे। **छाँह** = छाया। **धरीक** = एक घड़ी (थोड़ा समय)। **पसेउ** = पसीना (सं. प्रस्वेद)। **बयारि करौं** = हवा कर दूं (पंखा झलना)। **अरु** = और। **पांय** = चरण। **पखारिहौं** = प्रक्षालन करना, धोना। **भूभुरि डाढ़ै** = गर्म रेत में जलना, झुलसना। **जानकी नाह** = श्रीराम। **नेह** = प्रेम, स्नेह। **लख्यौ** = देखा। **तनु** = शरीर। **बिलौचन** = नेत्र।

प्रसंग–सीता ने अपने प्रिय राम को बतलाया कि लक्ष्मण जल लेने के लिए गए हैं। वे बालक ही हैं अत: यहां वृक्ष की छाया में एक घड़ी खड़े होकर उनके आने की प्रतीक्षा कर लें। आपके पसीने को पोंछकर मैं आपकी हवा कर दें। आपके चरण गर्म रेत-धूलि में चलने के कारण झुलस गये हैं–मैं आपके चरणों को धो दूं। सीता के इन वचनों को सुनकर तथा उन्हें मार्गजन्य कष्ट से श्रांत समझकर प्रभु राम वहाँ काफी देर तक चरणों में गड़े हुए कांटों को निकालते रहे। अपने प्रति स्वामी राम के विशेष स्नहे को देखकर सीता का शरीर पुलकित हो उठा और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह निकले।

विशेष–

(1) यहां दम्पति-विषयक स्नेह की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(2) राम ने अधिक समय तक विश्राम इसीलिए किया कि जिससे सीता की मार्गजन्य कष्ट से थोड़ी सी निवृत्ति हो सके।

(3) यहां शृंगार-रस की मनोहर अभिव्यक्ति हुई है।

(4) भावात्मक तुलना के लिए गीतावली का निम्न अंश देखें–

'फिरि फिरि राम सीय तनु हेरत।
तृषित जानि जल लेन लखन गए भूज उठाइ ऊंचे चढ़ि टेरत।

(5) **अलंकार**–अनुप्रास।

ठाढ़े है नौ द्रुम डार गहे, धनु कांधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भृकुटी बड़री अंखियां, अनमोल कपोलन की छवि है।
'तुलसी' अस मूरति आनि हिए जड़ डारि धौं प्राण निछावरि कै।
रूम-सीकर सांवरि देह लसैं मनों रासि-महातम-तारक में ॥ 13 ॥

शब्दार्थ–नौ = नवीन। **द्रुम** = वृक्ष। **डार** = डाल, शाखा। **गहे** = ग्रहण करना। **सायक** = बाण। **भृकुटी** = भौहैं। **अनमोल** = अमूल्य। **छवि** = शोभा। **अस** = ऐसी। **आनि** = लाकर। **हिए** = हृदय। **स्त्रमसीकर** = श्रमजन्य बिन्दु। **देह** = शरीर। **लसैं** = सुशोभित होना। **मनो** = मानों। **महातम** = महान् अंधकार। **तारक में** = तारों से पूर्ण।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने वनमार्गजन्य श्रम से क्लान्त श्रीराम की छवि का वर्णन किया है।

व्याख्या–तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम एक वृक्ष की शाखा को ग्रहण किये हुए खड़े हैं। वे कन्धे पर धनुष तथा हाथ में वाण को धारण किए हुए हैं। उनकी भौहें बंकिम हैं तथा नेत्र विशाल हैं। उनके कपोलों की शोभा अनुपम हैं। मार्गजन्य श्रम के फलस्वरूप प्रभु राम के श्यामल शरीर पर झलकते हुए स्वेद-बिन्दु इस प्रकार से

नोट

शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं मानो महा-अन्धकारमयी रात्रि तारों से संपृक्त हो रही हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि है मूर्ख जीव! श्रीराम की ऐसी अनुपम सौंदर्यमयी मूर्ति को अपने हृदय में विराजमान कर। इसके लिए यदि प्राणों को भी न्योछावर करना पड़े तो भी कोई चिन्ता मत कर।

विशेष–

(1) यहां श्रीराम की अनुपम छवि का वर्णन किया गया है।

(2) श्रीराम के श्यामल शरीर को 'रासिमहातम' तथा प्रस्वेद की झलकती बूंदों को 'तारक में' के रूप में चिंतित किया है।

(3) यहां तुलसीदास ने जीव को उद्‌बोधित किया है कि प्रभु राम की मूर्ति को अपने हृदय में विराजमान करे–इसके लिए प्राणों को न्यौछावर भी करना पड़े तो हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।

(4) **अलंकार–**वस्तुत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास।

जलज-नयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन-उमंग अंग उदित उदार हैं।
सांवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनि सी,
मुनिपट धरे, उर फूलनि के हार हैं।
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
'तुलसी' बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥ 14 ॥

शब्दार्थ–जलज = कमल। **जोबन** = यौवन। **उदित** = प्रकाशित; प्रकट। **भामिनी** = स्त्री; मन को अच्छी लगने वाली; प्यारी। **सरासन** = धनुष। **शिलमुख** = बाण। **निषांण** = तरकस; तूणीर। **कटि** = कमर। **भूप** = राजा। **तिलोक** = त्रिलोक; तीनों लोक। **चित्रसार** = चित्रशाला।

प्रसंग–बन मार्ग में जाते हुए श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी को देखकर ग्रामीण नर-नारियां तीनों के सौन्दर्य को देखकर विमुग्ध हो जाते हैं और परस्पर वार्तालाप करते हैं।

व्याख्या–इनके नेत्रों की सुन्दरता कमल के समान है एवं मुख भी कमल के समान सुन्दर जान पड़ता है। सिर पर जटाएँ धारण किये हुए हैं और प्रशस्त अंग-प्रत्यंगों में यौवन की उमंग झलक रही हैं। श्यामवर्ण राजकुमार (श्रीराम) और गौरवर्ण राजकुमार के मध्य बिजली के समान आभा वाली एक युवती (सीताजी) सुशोभित हैं। ये तीनों मुनियों जैसे वस्त्र धारण किये हुए हैं। हृदय पर पुष्प माला शोभायमान है। हाथों में धनुष-वाण लिए हुए हैं, कमर में तरकस बांधे हुए हैं। इस सुन्दर वेश में ये लोग किसी राजा के अबति सुन्दर के इन तीनों आभूषणों को देखकर नर-नारी ऐसे स्तब्ध रह गए कि मानो चित्रशाला के चित्र हों।

विशेष–

(1) यहां ग्रामीण नर-नारियों द्वारा श्रीराम, सीता और लक्ष्मण की अतिशय रूप-माधुरी का चित्रण कवि ने किया है।

"राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी।
रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहि संग लागे।
एक नयन मग छवि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी।।"

(2) **अलंकार–**उदाहरण, अनुप्रास, और धर्मलुप्तोपमा।

नोट

आगे सोहै सांवरो कुंवर, गोरे पाछे पाछे,
आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग है।
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि,
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं।
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ-नंदिनी सी,
'तुलसी' बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनंद उमंग मन, जोबन उमंग तन,
रूपी की उमंग उमगत अंग अंग हैं ॥ 15 ॥

शब्दार्थ–सोहे = शोभित होना। **अनंग** = कामदेव। **विसिषान** = धनुष। **वसन** = वस्त्र, कपड़े। **निषंग** = तरकस, तूणीर। **निसिनाथ** = चन्द्रमा। **पाथ** = जल। **पाथनाथ** = समुद्र; सागर। **नन्दनी** = पुत्री। **पाथनाथ-नन्दिनी** = समुद्र की पुत्री अर्थात् लक्ष्मी। **जोबन** = यौवन।

प्रसंग–यहाँ कवि ने वन-मार्ग में जाते हुए श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी के अतिशय सौन्दर्य का अंकन किया है। कवि का कथन है।

व्याख्या–वन के मार्ग में आग-आगे श्यामवर्ण राजकुमार रामचन्द्रजी और पीछे-पीछे गौर-वर्ण राजकुमार लक्ष्मणजी सुन्दर मुनि-वेश धारण किए हुए शोभायमान हैं, जिन्हें देखकर कामदेव भी लज्जित हो रहा है। वे धनुष-बाण धारण किए हुए हैं। कमर में मुनियों जैसे बल्कादि वस्त्र कसकर धारण किए हुए हैं। उनकी कमर में कसा हुआ सुन्दर तरकस भी सुशोभित है। उनके साथ में चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली सीताजी लक्ष्मीजी की भाँति सुशोभित हैं। तुलसीदासजी का कहना हैं कि इन तीनों श्रीराम, लक्ष्मण सीताजी का अनुपम सौन्दर्य देखते ही मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मन में आनन्द की उमंग एवं शरीर में यौवन जन्य उमंग है और उनके अंग-प्रत्यंग से सुन्दर रूप उमड़ रहा है।

विशेष–

(1) श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी के अलौकिक रूप-माधुर्य एवं उनकी सुन्दर वेश रचना की झांकी प्रस्तुत की है।

(2) **अलंकार–**उपमेय लुप्तोपमा एवं वीप्सा।

नोट्स तुलसी और कबीर के राम में अंतर स्पष्ट कीजिए।

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
असनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के।
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै,
विधि बिरचे बरूथ विद्युत-छटनि के।
गोरे को बरन देखे सोना न सलोनो लागे,
सांवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के ॥ 16 ॥

शब्दार्थ–सरसीरुह = कमल। **नैन** = नयन। **मंजुल** = सुन्दर। **प्रसून** = पुष्प। **असनि** = कन्धों में। **सुचि** = पवित्र। **तून** = तूणीर, तरकस। **लूटक पटनि के** = वस्त्रों की शोभा को लूटने वाले या हरने वाले। **उबटि कै** = उबटन द्वारा मैल निकाल कर। **बरूथ** = समूह। **विद्युत छटनि** = बिजली को घटाओं। **बरन** = वर्ण, रंग। **सोनो** = स्वर्ण।

नोट

सलोनो = सुन्दर, रोचक। **घटनि के** = श्याम सजल बादलों की घटाओं का।

प्रसंग–इन पंक्तियों में कवि ने श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी की सुन्दरता का वर्णन किया है। कवि का कथन है–

व्याख्या–श्रीराम का मुख सुन्दर है, उनकी सुन्दर आंखें कमल के समान हैं और मस्तक पर जटाओं मुकुट हैं जिनमें सुन्दर फूल गुथे हुए हैं। कंघों पर धनुष तथा सुन्दर हाथों में बाण सुशोभित हो रहे हैं और बल्कल आदि के वस्त्रों ने तो मानो पीताम्बर आदि वस्त्रों की शोभा को लूट लिया है। भाव यह है कि श्रीराम ने मुनियों जैसा वस्त्र धारण किया हुआ है, जो राजोचित वेशभूषा से कहीं अधिक सुन्दर है। उनके साथ में कोमलांगी स्त्री सीताजी हैं जिनके अंगों का मैल निकालकर ब्रह्मा ने बिजली की घटाओं का निर्माण किया है। अभिप्राय यह है कि सीताजी अनिंद्य सुन्दरी हैं। लक्ष्मणजी के गौरवर्ण के सामने तो स्वर्ण भी कान्तिहीन दीख पड़ता है और श्यामवर्ण राजकुमार श्रीराम को देखने से श्याम-सजल बादलों की घटाओं का अहंकार मिट जाता है।

विशेष–

(1) श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजी के सौन्दर्य की झाँकी कवि ने सुन्दर शब्दों में यहां प्रस्तुत की है।

(2) **अलंकार**–वाचक धर्मलुप्तोपमा, रूपक और प्रतीप।

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, धन-दामिनी-बरन हैं।
'तुलसी' सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कंवल हू ते कोमल चरन हैं।
औरे सो बसंत, औरे रति, औरे रतिपति,
मूरति बिलोके तन-मन के हरन हैं।
तापस वेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं ॥ 17 ॥

शब्दार्थ–पानि = हाथ। **रूप के निधान** = रूप के खजाने; अतीव सुन्दर। **रतिपति** = कामदेव। **तापस** = साधू।

प्रसंग–यहाँ कवि ने श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजी के अतीव सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि का कथन है–

व्याख्या–दोनों राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण अपने शरीर पर बल्कल वस्त्र धारण किए हुए हैं, उनके हाथ में धनुष और बाण हैं, कमर में तरकस कसे हुए हैं। वे दोनों रूप की राशि अर्थात् अतीव सुन्दर है और उनका वर्ण क्रमशः बादलों जैसा श्याम एवं विद्युत जैसा श्वेत है। तुलसीदासजी कहते हैं कि साथ में सुन्दरी स्त्री है जिसके अंग-प्रत्यंग से स्वाभाविक सौन्दर्य फूट पड़ रहा है। उसके चरण नवीन कमल से भी कही अधिक कोमल है। श्रीरामचन्द्रजी दूसरे कामदेव के रूप में, श्रीलक्ष्मणजी दूसरे वसंत के रूप में और सीताजी दूसरी रति के रूप में सुशोभित हैं। उनके इस अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन मात्र से मन और शरीर दोनों ही विमुग्ध हो उठते हैं। उन्हें अवलोक कर ऐसा जान पड़ता है मानों वसंत, रति और कामदेव तापस वेश धारण किए हों और पथिक रूप से मार्ग में शोभायमान होकर लोगों के नेत्रों को सुफल करने हेतु चले हों।

विशेष–

(1) यहाँ श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी के अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है।

(2) भावसाम्य के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–

"तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा।
दामिनी बरन लखन सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जी के।।
मुनिपद कटिन्ह कसै तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा।
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फल तोहिं सुखारी।।

नोट

(3) **अलंकार**–उपमा, अनुप्रास और प्रतीप।

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, रीसखी। मोहि सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं? सकुचात मही पद-पंकज छवै।
'तुलसी' सुनि ग्रामवधू बिथकीं, पुलकीं तन और चले लोचन च्वै।
सब मांति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥ 18 ॥

शब्दार्थ–बनिता = स्त्री। **बनी** = सुशोभित है। **मोहि-सी ह्वै** = मेरी तरह होकर, मेरी ही भांति ध्यान से। **मग** = मार्ग। **जोग** = योग्य। **बिथकों** = छक गयी। **मोहन** = मोहित करने वाले। **अनूप** = अनुपम, अद्वितीय, जिसके जोड़ का कोई दूसरा न हो।

प्रसंग–श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी जब अयोध्या को छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करते हैं तो मार्ग में स्थित ग्रामों की स्त्रियाँ उनके रूप को देखकर चकित रह गयी। वे उन्हें अवलोक कर परस्पर दु:ख प्रकट करती हुई वार्तालाप करने लगीं। तुलसीदासजी ने यहाँ ग्रामीण नारियों की मिठास और सहानुभूतियुक्त बातचीत को सुन्दर शब्दों में प्रकट किया है।

व्याख्या–एक ग्रामीण स्त्री अन्य स्त्रियों से कहती है–हे सखि! मेरे समान तल्लीन होकर देखो, श्यामवर्ण और गौरवर्ण राजकुमारों के मध्य में एक स्त्री विराजमान है जो अतीव सुन्दर है। वह अत्यन्त कोमल है, मार्ग में चलने योग्य नहीं है, कैसे मार्ग में चलेगी? इसके चरण-रूपी कमलों का स्पर्श करने से तो पृथ्वी भी संकुचित हो रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसके वचन सुनकर सब ग्रामीण नारियाँ चकित हो गयीं, उनके शरीर रोमांचित और पुलकित हो गए और नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। सब प्रेम के वशीभूत होकर कहने लगीं कि राजा के दोनों बालक सभी भाँति सुन्दर हैं, इनका सुन्दर रूप मन को विमोहित करने वाला है, इनकी उपमा का कोई उपमान नहीं है।

विशेष–

(1) इन पंक्तियों में श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजी की सुन्दरता का वर्णन है।

(2) संवाद का सुन्दर रूप यहाँ प्रस्तुत है।

(3) शैली प्रवाहपूर्ण है।

(4) **अलंकार**–रूपक और धर्म-वाचक-उपमान लुप्तोपमा।

सांवरे गोर सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहें जटा, मुनि वेष कियो है।
संग लिये बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रचक रूप दियो है।
पायन तौ पनही न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियौ है ॥ 19 ॥

शब्दार्थ–मैन = कामदेव। **बिधुबैनी** = चन्द्रमुखी। **रंचक** = थोड़ा-सा। **पनहीं** = जूता, पदत्राण। **पयादेहि** = पैदल ही। **क्यों** = किस प्रकार। **हियो** = हृदय।

प्रसंग–जब श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजी वन को जाते समय किसी ग्राम के समीप से गुजरते हैं तो उस ग्राम को नारियां उनके सम्बन्ध में परस्पर वार्तालाप करती हैं।

व्याख्या–श्यामवर्ण और गौरवर्ण दोनों राजकुमार स्वभाव से सुन्दर हैं और उन्होंने अपनी मनोहरता में तो कामदेव को भी जीत लिया है। हाथों में धनुष-बाण लिए हुए हैं और कमर में तरकस कसा हुआ है। उनके सिर पर जटायें सुशोभित हैं और मुनियों जैसा वेश धारण किए हुआ है। साथ चंद्रमा के सदृश मुखवाली वधू है जिसने रति को भी अपने रूप में से थोड़ा-सा रूप दे दिया है। उनके पैरों में जूतियाँ भी नहीं हैं, भला मार्ग में वे कैसे पैदल चल सकेंगे। उन्हें देखकर तो मेरा हृदय सकुचाता है।

नोट

विशेष–

(1) 'सलोने स्वाभाव से' स्वाभाविक सौन्दर्य की ओर संकेत है।

(2) स्त्रियों के वार्तालाप का सुन्दर वर्णन है।

(3) **अलंकार**–अनुप्रास और प्रतीप।

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हू तें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को किन कान कियो है।
ऐसी मोहर मूरति ये, बिछूरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?
आँखिन में, सखि! राखिबै जोग, इन्हें किमि के बनवास दियो है ॥ 20 ॥

शब्दार्थ–अजानी = अज्ञानी। **पबि** = वज्र। **पाहन** = पाषाण; पत्थर। **काज-अकाज न जान्यो** = भले-बुरे का विचार न किया। **कह्यों कान कियो है** = कहा मान लिया। **किमि के** = कैसे; किस कारण अथवा किस हृदय से।

प्रसंग–श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी वन को जाते समय किसी ग्राम के समीप से गुजरते हैं तो उस ग्राम की नारियाँ उनके सम्बंध में परस्पर वार्तालाप करती हैं। जब उन ग्रामीण वनिताओं को किसी के द्वारा राम-वनबास का कारण बता दिया जाता है तो उनमें से एक सखी अन्य सखी से कहती है।

व्याख्या–मैंने यह भली प्रकार से जान लिया है कि रानी तो महामूर्ख है, उसका हृदय तो वज्र और पत्थर से भी कहीं अधिक कठोर है। राजा ने भी कर्त्तव्याकर्त्तव्य की ओर ध्यान नहीं दिया अपितु बिना विचारे ही अपनी स्त्री की बात को स्वीकार कर लिया। इनके समान मनोहारी मूर्तियों के बिछुड़ने पर भी इनके प्रिय लोग कैसे जीवित रहे होंगे? हे सखि! ये तो सदा आंखों में रखने योग्य हैं। इन्हें वनवास किस कारण से दिया गया है।

विशेष–

(1) ग्रामीण नारियों के भावों का सुन्दर वर्णन हुआ है।

(2) भावसाम्य के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–

"ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥
× × ×
राम लखन सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं चित मन मतिलाई॥
× × ×
रूख कलपतर सागर खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा॥"

(3) मुहावरों का प्रयोग अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने में समर्थ हुआ है।

(4) **अलंकार**–अनुप्रास।

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौहें।
तून सरासन बान धरे, 'तुलसी' बन-मारग में सुठि सोहें।
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहें।
पूछति ग्रामबधू सिय सों 'कहौ सांवरे से, सखि रावरे को है' ॥ 21 ॥

शब्दार्थ–उर = वक्षस्थल। **बाहु** = भुजाएं। **विलोचन** = नयन, नेत्र। **सुठि** = भली प्रकार से। **सुभाय** = सुभाव। **सिय** = सीता। **सों** = से।

प्रसंग–यहां गोस्वामी तुलसीदासजी ने ग्रामीण नारियों की रामविषयक परिचय प्राप्त करने की विशेष लालसा को व्यक्त किया है। कवि का कथन है।

व्याख्या–ग्रामीण नारियाँ सीताजी से पूछ रही हैं कि हे सखि! जिनके सिर पर जटाएँ हैं, जिनका वक्षस्थल एवं भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र लालिमा से परिपूर्ण हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुष-बाण धारण किए हुए हैं और जो वन के मार्ग में चलते हुए अति शोभावान् प्रतीत हो रहे हैं तथा जो आदरपूर्वक बार-बार तुम्हारी ओर देखकर जो

नोट

हमारे मन को मोहित कर रहे हैं–ये श्यामवर्ण राजकुमार तुम्हारे कौन हैं? हमें बतलाओ तो सही। कहने का आशय यह है कि वह सीता-राम के सम्बंध में परिचय प्राप्त करने के लिए विशेष उत्कंठित हैं।

विशेष–

(1) यहाँ ग्रामीण बधुओं के सहज स्वभाव एवं उत्सुकता की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

(2) भावसाम्य के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–

बहुरि बदन बिघ अचल ढांकी। पियतन चितइ भौंह करि बांकी।
खजन मंजु तिरीछे नैननि। निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि॥
भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रकन्ह रतनरासि जनु लूटी॥"

(3) **अलंकार–**वीप्सा और स्वाभावोक्ति।

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछै करि नैन, दै सैन तिन्हें समझाइ कछू मसकाई चली।
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुन कंज-कली ॥ 22 ॥

शब्दार्थ–बैन = वचन। **सयानी** = चतुर; सज्ञान। **नैन** = नयन; नेत्र। **सैन** = संकेत। **औसर** = अवसर; समय। **लाहु** = लाभ। **अली** = सखा। **उदै** = उदय। **बिगसीं** = विकसीं; खिलीं।

प्रसंग–श्रीराम, सीता और लक्ष्मण वनवास की आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् वन-मार्ग से होकर जा रहे हैं। तीनों ही सुन्दरता में अद्वितीय हैं। मार्ग में आने-जाने वाले नर-नारी और ग्रामीण उनके अनिंद्य सौंदर्य को देख विमोहित हो जाते हैं। नारी-समाज सीताजी से अपनी जिज्ञासा की शांति हेतु श्याम-वर्ण राजकुमार से उनके सम्बंध में जानना चाहती हैं। यहां सीताजी अपनी आंगिक भाव-भंगिमाओं द्वारा उन्हें बतला देती हैं कि ये मेरे पति हैं।

व्याख्या–ग्रामीण बधुओं के अमृतयुक्त वचनों को सुनकर सीताजी यह भली-भांति जान गई कि ये ग्रामीण-नारियाँ सयानी और चतुर हैं। अत: श्रीरामचन्द्रजी की ओर तिरछी दृष्टि कर, चितवनयुक्त कटाक्ष कर और मुसककर सीताजी ने उन्हें अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस समय सभी ग्रामीण नारियाँ नेत्रों का पुण्य लाभ प्राप्त करने लगीं। उस समय वे इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं मानो प्रेम-रूपी सरोवर में राम-रूपी सूर्य के उदय होने से सुन्दर कमल के समान नारियों की आँखें विकसित हो गई हों (यहां प्रेम सरोवर, राम सूर्य और कंजकली ग्रमीण नारियों के नेत्र हैं।)

विशेष–

(1) इन पंक्तियों में सीताजी की आंगिक चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है।

(2) भाषा कोमलकान्त पदावली से युक्त सरस और प्रवाहपूर्ण है।

(3) **अलंकार–**अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा।

धरि धीर कहें 'चलु' देखिय जाइ, जहां सजनी रजनी रहिहैं।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं।
सुख पाइहैं कान सुने बतियां, कल आपुस में कछू पै कहिहैं।
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकें, पुलकीं लखि राम हिये महिहैं ॥ 23 ॥

शब्दार्थ–सजनी = सखी। **रजनी** = रात्रि। **रहिहैं** = रहेंगे। **पोच** = कमजोर; बुरा। **लोचन** = नेत्र। **बतियां** = बातें। **लखि** = देखकर।

प्रसंग–यहां कवि तुलसीदासजी ने श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण एवं सीताजी के प्रति ग्राम-बंधुओं की विशेष अनुरक्ति को व्यंजित किया है।

नोट

व्याख्या–ग्रामीण नारियां धैर्य धारण करके एवं प्रेम के अभिभूत होकर परस्पर कह रही हैं कि हे सखि! चलो, हम भी वहां चलकर देखें जहाँ ये तीनों रात्रि में विश्राम करेंगे। हम भी अपने नेत्रों से इनके शुभ-दर्शन कर लेंगी। संसार के प्राणी इस सम्बन्ध में यदि कुछ कहेंगे भी, तो हमें इसकी कोई भी चिन्ता नहीं है। कहने का भाव यह है कि भारतीय संस्कृति के अनुकूल पर-पुरुष की ओर दृष्टिपात करना नारी-समाज के लिए उचित एवं अनुकूल नहीं है–इसी कारण लोग हमारे इन कृत्यों की चर्चा करेंगे, हमें बुरा कहेंगे। किंतु इसकी हमें चिन्ता नहीं है। उनके दर्शनों का लाभ तो हमारे नेत्रों को मिल ही जावेगा। इन तीनों की मधुर-मधुर बातों को सुनकर हमारे कान परम आनन्द की अनुभूति करेंगे। वे तीनों परस्पर वार्तालाप तो करेंगे ही भले ही, हम से वार्तालाप न करें। तुलसीदासजी कहते हैं कि ग्रामीण नारियाँ इस अवसर पर प्रेमजन्य दशा में विभोर हो गईं, उनकी आंखें मुंद गयीं और वे श्रीराम की अतुलित छवि को निहार कर रोमांचित-पुलकित हो उठीं।

विशेष–

(1) यहां ग्रामीण नारियों की सात्विक प्रेमानुरक्ति का चित्रण हुआ है।

(2) भावसाम्य के लिए रामचरितमानस का निम्नांश देखें–

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी।
राम लषन सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं मति लाई।
थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुं मृगीमृग देखि दियासे॥

× × ×

अबला बालक वृद्धजन कर मीजहिं पछिताहिं॥
होंहि प्रेमबस लोग इमि, रामु जहां जंह जाहिं॥

(3) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति।

पद कोमल, स्यामल और कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन सुहाए।
जिन देखे, सखी! सतभायहु तें 'तुलसी' तिन तो मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर बधू विधु-बैनी समेत संभाय सिधाए ॥ 24 ॥

शब्दार्थ–स्यामल = श्यामवर्ण। **कलेवर** = शरीर। **राजत** = शोभायमान। **मनोज** = कामदेव। **सरसीरुह** = कमल। **सतभायहु** = सद्भाव से। **विधु-बैनी** = चंद्रमुखी; चन्द्रबदनी।

प्रसंग–यहाँ कवि ने ग्रामीणनारियों के पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी की अद्वितीय सुन्दरता का आख्यान किया है। कवि का कथन है:

व्याख्या–ग्राम बधुएं परस्पर कहती हैं हे सखि! आज वन के इस मार्ग में चंद्रमा के समान मुख वाली वधु सहित दोनों किशोरकुमार गए हैं। उन दोनों राजकुमारों के चरण कोमल हैं। उनका श्यामल एवं गौरवर्ण वाला शरीर करोड़ों कामदेवी को लज्जित करने वाला। है। वह अपने हाथों में धनुष-बाण धारण किए हुए हैं, सिर पर जटाएं सुशोभित हैं। उनके लाल कमल जैसे सुहावने नेत्र हैं। हे सखि! जिन्होंने सद्भाव से उनका दर्शन किया वे तो अपने मन को न लौटा सकीं। आशय यह है कि वे यहाँ तक उनके प्रति आकृष्ट हो गयीं कि उनका मन उन राजकुमारों के साथ ही लग गया; वे अपने मन को उनकी और से न हटा सकीं।

विशेष–

(1) यहाँ कवि ने ग्रामीण नारियों की भाव-विह्वलता को विहित किया है।

(2) **अलंकार–**अनुप्रास, रूपक और प्रतीप।

नोट

मुखपंकज, कंजविलोचन मंजु, मनोज-सरासन सी बनी भौंहै।
कमनीय कलेवर कोमल स्यामल-गौर किसोर, जटा सिर सोहैं।
'तुलसी' कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछोहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी! तोहि सों, मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं ॥ 25 ॥

शब्दार्थ–पंकज = कमल। **मनोज** = कामदेव। **सरासन** = धनुष। **कमनीय** = सुन्दर। **कलेवर** = शरीर। **दीठि** = दृष्टि। **द्वै** = दो। **मृदु** = कोमल।

प्रसंग–यहाँ कवि ने श्रीराम और लक्ष्मण के अमित सौंदर्य के प्रभाव को व्यंजित किया है।

व्याख्या–एक ग्रामीण नारी अपनी सखी को सम्बोन्धित कर कहती है–हे सखि! श्रीराम और लक्ष्मण का मुख कमल के समान है, सुन्दर आँखें कमल जैसी हैं। उनकी भौंहे कामदेव के धनुष के समान शोभित हैं। उनका शरीर अत्यन्त कोमल एवं सुन्दर है। श्रीराम श्यामवर्ण और लक्ष्मणजी गौरवर्ण वाले है। दोनों ही सिर पर जटाएँ धारण किए हुए हैं। उनकी किशोर अवस्था है। वे कमर में तरकस बांधे हैं और हाथ में धनुष-बाण धारण किए हुए हैं। जिस समय उनकी तिरछी दृष्टि अचानक ही मुझ पर पड़ी, उस समय मेरी मन: स्थिति बड़ी ही विचित्र हो गई। उसके सम्बन्ध में मैं तुझे क्या बतलाऊँ। उसी समय से वे दोनों कोमल मूर्तियाँ मेरे मन में बस गई हैं। अब तू मेरी स्थिति के सम्बन्ध में स्वयं ही अनुमान लगा ले।

विशेष–

(1) यहाँ ग्रामीण नारियों की आन्तरिक भावनाओं का सूक्ष्मता के साथ चित्रण हुआ है।

(2) **अलंकार**–अनुप्रास और उपमा।

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरें।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै 'तुलसी' छवि सो मन मोरें।
लोचन लोल, चलैं भ्रकुटी, कलकाम-कमानहु सो तृन तोरें।
राजत रामु कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे ॥ 26 ॥

शब्दार्थ–प्रियाहि = प्रियतमा (सीता) की और। **चितु दै** = चित देकर। **पसेउ** = पसीना; स्वेद। **लसै** = शोभित होना। **हुलसै** = प्रसन्न होना; उल्लसित होना। **लोल** = चंचल। **कुरंग** = मृग; हिरण। **धनुसो सर जोरे** = धनुष पर बाण चढ़ाए हुए।

प्रसंग–यहाँ कवि ने श्रीराम द्वारा मृगया खेले जाने का वर्णन किया है।

व्याख्या–श्रीराम पीछे की और प्रेमपूर्वक तिरछी चितवन से दत्तचित्त होकर प्रिया सीता की ओर निहार कर उनका चित्त चुराकर आखेट करने हेतु चल दिए। श्रीराम का श्यामवर्ण शरीर पसीने से युक्त है। उनके नेत्र चंचल हैं जिसके कारण चंचल भृकुटियों की शोभा, कामदेव के मनोहर धनुष की शोभा से तिनका तोड़ रही है। भाव यह है कि श्रीराम की भृकुटियों की शोभा पर उस मनोहर धनुष की शोभा न्योछावर है। कमर में तरकस कसे हुए एवं हाथ में धनुष बाण धारण किए हुए श्रीराम हरिण के साथ दौड़ते चले जा रहे हैं। ऐसे समय वह अतीव सुन्दर दीख पड़ते हैं। कवि का कथन है कि श्रीराम की उस समय की शोभा मेरे मन को आनंदित करती है।

विशेष–

(1) श्रीराम के आखेटक स्वरूप का चित्रण हुआ है।

(2) **अलंकार**–स्वाभावोक्ति एवं प्रतीप।

सर चारिक चारु बनाइ कसें कटि, पानि सरासन सायकु लै।
वन खेलत राम फिरैं मृगया, 'तुलसी' छबि सो बरनैं किमि कै?

नोट

अवलोकित अलौकिक रूप मृग मृग चौंकि चकै चितवै चित दै।
न डगै न भगैं जिय जानि सिल मुख पंच धरे रति नायुक है ॥ 27 ॥

शब्दार्थ–चारिक = चार। **चारू** = सुन्दर। **पानि** = पाणि; हाथ। **सायकु** = बाण। **मृगया** = शिकार। **किमि कै** = किस प्रकार। **चकै** = चकित होते हैं। **चितवै** = देखते हैं। **सिलिमुख** = बाण। **पंच** = पांच। **रतिनायकु** = कामदेव।

प्रसंग–यहां कवि ने श्रीराम के आखेटक स्वरूप का वर्णन किया है। कवि का कथन है।

व्याख्या–श्रीरामजी वन में शिकार खेलते फिरते हैं। दो-चार सुन्दर बाणों को कमर में सुघड़तापूर्वक खोंसकर हाथ में धनुष-बाण लिए हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं श्रीराम के उस सौन्दर्य का क्या वर्णन करूं या किस प्रकार से करूँ? उनके अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मृग और मृगी चौंक-कर चकित हो जाते हैं। वे चित्त लगाकर अपनी मृत्यु की चिन्ता किए बिना राम की और एकटक देखने लगते हैं। अपने स्थान से वे हिलते-डुलते ही नहीं, यह समझकर कि ये साक्षात् कामदेव ही पांच बाण धारण किए हुए घूम रहे हैं, उनसे क्या डर? दूसरे शब्दों में, उनके हृदयों में श्रीराम के प्रति किसी प्रकार के भागने का, हिलने का कोई भय नहीं है।

विशेष–

(1) यहां श्रीराम के आखटेक स्वरूप का वर्णन हुआ है।

(2) **अलंकार–**अनुप्रास और भ्रम।

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी, सो कथा सुनि, भे मुनिबृंद सुखारे।
ह्वैहै सिला सब चंद्रमुखीं परसें पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली, रघुनायकजू, करुना करि कानन को पगु धारे ॥ 28 ॥

शब्दार्थ–उदासी = दु:ख-सुख में एक से। **भे** = हुंए। **है** = हो जाएगी। **सिला** = पत्थर। **परसे** = स्पर्श करने से। **पद-मंजुल-कंज** = सुन्दर कमल के समान चरण। **कीन्हीं भली** = अच्छा किया।

प्रसंग–यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने ऋषि-मुनियों पर अत्यन्त शिष्ट व्यंग्य किया है कि ये लोग श्रीराम के वनागमन से इसलिए हर्षित है कि वन की समस्त वस्तुएँ उनके चरण-स्पर्श से नारी-रूप में परिणत हो जाएँगी। कवि का कथन है:

व्याख्या–विंध्याचल प्रदेश में निवास करने वाले उदासी सम्प्रदायी, मुनि और व्रत धारण करने वाले ऋषि आदि सभी लोग इस वन-प्रान्तर में नारी के बिना अत्यन्त दु:खी हो रहे हैं। जब से इन ऋषि-मुनियों ने गौतम की पत्नी अहल्या के पत्थर से नारी होकर मोक्ष प्राप्त करने की कथा सुनी है तब से इन्हें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है और वे श्रीराम को अपने बीच पाकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कहते हैं कि हे रघुनायक! आपने यह बहुत ही अच्छा किया जो हम पर दया करके इस वन को अपने चरणों से स्पर्श से किया अर्थात् इस वन में चले आए और अब हमें विश्वास है कि इस वन के सब पत्थर आपके सुन्दर व कोमल चरणों के स्पर्श से चंद्रमुखी नवयुवतियों के रूप में परिवर्तित हो जाएंगे तथा हमारी चिर साधना इस प्रकार फलीभूत होगी।

विशेष–

(1) यहाँ श्रीराम के चरणों की धूलि का प्रभाव व्यंजित है।

(2) हास्यरस की सुन्दर योजना हुई है।

(2) **अलंकार–**अनुप्रास एवं व्यंग्योक्ति।

नोट

अरण्यकाण्ड

पंचबटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहैं प्रिया, प्रिय बन्धु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छवि छाए।
देखि मृगा, मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
हेमकुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए ॥ 1 ॥

शब्दार्थ–पंचवटी = पांच वृक्षों का समूह (स्थान)। **बर** = सून्दर। **प्रियबन्धु** = प्यारा भाई (लक्ष्मण)। **लसै** = शोभित होना। **मृगनैनी** = मृग के समान नेत्र वाली (मृगनयनी सीता)। **हेमकुरंग** = सुवर्ण मृग (मारीच)। **संग** = साथ। **रघुनायक** = श्रीराम। **धाए** = दौड़ पड़े।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने प्रभु श्रीराम के द्वारा मृग का पीछा किये जाने का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या–अपने सहज स्वभाव में भगवान श्रीराम पंचवटी में निर्मित मनोहर पर्णकुटी के नीचे आसीन थे। उनके साथ ही उनकी प्रिय पत्नी सीता और प्रिय भ्राता लक्ष्मण भी वहीं विराजमान थे। उनके समस्त अंग मोहक छवि से आपूरित थे। सामने से निकलते हुए मृग को देखकर मृगनयनी सीता ने उसे मारकर लाने के लिए प्रिय वचन कहा। सीता के द्वारा अभिहित यह प्रिय वचन उनके प्रियतम श्रीराम को रुचिकर प्रतीत हुआ। अत: श्रीराम धनुषबाण हाथ में धारण किए हुए उस सुवर्ण मृग (मारीच) के पीछे दौड़े।

विशेष–

(1) यहाँ श्रीराम तथा सीता के दाम्पत्य प्रेम की झलक दर्शनीय है।

(2) रावण के बहुत हठ करने पर मारीच को सुवर्ण मृग (मायामृग) बनना पड़ा। राम ने उसका वध किया। तभी रावण ने एकांत पाकर सीता का हरण किया तभी और वह अपनी योजना में सफल हो सका। इस अवतरण में प्रयुक्त 'हेम कुरंग' शब्द इसी प्रसंग का द्योतक है।

(3) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस निम्न अंश देखें–

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग-अंग सुमनोहर देखा।
सुनहु देव रघुवीर कृपाला। यहि मृगकर अति सुन्दर छाला।
× × ×
तब रघुपति जाना सब कारन। उठे हरषि सुर काज संवारन।
मृग बिलोकि कटि परिकर बांधा। करतल चाप रुचिर सर सांधा।

(4) यहां माधुर्य गुण की झलक प्रेक्षणीय है।

(5) **अलंकार–**अनुप्रास एवं भ्रांति।

किष्किंधाकाण्ड

जब अंगदादिन की मति गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आई,
चितवन चहूं और औरनि को कलु गो।
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिलु आयो,
कोलु कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।

नोट

चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि, अचलु गो ॥ 2 ॥

शब्दार्थ–अंगदादिन की = अंगद आदि (वीर वानरों) की। **गति** = सामर्थ्य। **मंद** = धीमी, हीन। **पवन के पूत** = पवनपूत्र (हनुमान)। **कूदिबे को** = कूदने के लिए। **पलु गो** = पल बीतना। **सैल** = पर्वत, शैल। **सकेलि** = खेल ही में। **औरन को कलु गो** = दूसरों (शत्रुओं) की सुख-शांति नष्ट हो गई। **निकसि** = निकल कर। सलिल = जल। **कोल** = वाराह (अवतार)। **अदि** = शेषनाग। **कमठ** = कच्छप (अवतार)। **बलु** = बल। **गो** = गया, समाप्त हो गया।

प्रसंग–तुलसीदासजी ने पवनपुत्र के शौर्य की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

व्याख्या–जिस समय अंगद आदि वीर वानरों की सामर्थ्य एवं बुद्धि मंद हो गई अर्थात् समुद्र के पार जाने का साहस उनमें नहीं रहा, उनके निरुपाय होने पर पवन के पुत्र हनुमान को समुद्र लांघने के लिए छलांग लगाने में एक क्षण भी व्यतीत नहीं हुआ अर्थात्–ऐसे साहसिक दुष्कर कार्य को करने के लिए तुरन्त उद्यत हो गये। साहसी हनुमान उस पर्वत पर खेल ही खेल में अचानक ही आ पहुंचे और चारों दिशाओं में निहाराने लगे। उनके इस प्रकार के साहस, बल-सामर्थ्य एवं विशेष मुद्रा को देखकर ही दूसरों (शत्रुओं) का सुख-चैन सब-कुछ समाप्त हो गया। उनके इस प्रकार के दुष्कर कार्य को करने के लिए तत्पर होने पर–पर्वत पर आरूढ़ होने से ही रसातल का जल बाहर निकल आया। भगवान वाराह तिलमिला गए और शेषनाग, कच्छप बलहीन हो गए। उनके चारों चरणों के महान् आघात के फलस्वरूप वह शैल धरती में चिपटकर सो गया और जब वे कूदे तो उनकी उछल-कूद से वह पर्वत भी चार अंगुल ऊपर की और उछल गया।

विशेष–

(1) यहां वीर हनुमान के अदम्य साहस, बल एवं सामर्थ्य का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

(2) यहाँ औज-गुण एवं वीर-रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

(3) **अलंकार–**अनुप्रास।

सुन्दरकाण्ड

बासव बरुन बिधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बात,
पालत, लालत रति-मार को बिहारु सो।
देखे बर बापिका तड़ाग बाग की बनाउ,
रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप-असोक-तर
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलक-सोक-सारु सो ॥ 1 ॥

शब्दार्थ–बासव = इन्द्र। **वरुन** = वरुणदेव। **विधि** = ब्रह्मा। **कानन** = वन, उद्यान। **सिंगार** = शृंगार। **पात** = पत्ते। **बात** = वायु। **रति** = कामदेव की पत्नी। **मार** = कामदेव। **वर** = मनोहर। **वापिका** = बावड़ी। **बनाव** = बनावट। विरागी = आसक्तिहीन। **भो** = हो गया। **बिटप** = वृक्ष। **तिलोक सोक सार सो** = तीनों लोकों के शोक के सार के समान।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने अशोक-वन की अनुपमता का वर्णन किया है।

नोट

व्याख्या–लंकाधिपति रावण का अशोक वन देवराज इन्द्र, वरुणदेव तथा ब्रह्मा के कानन से भी अधिक उत्कृष्ट था। वह वन बसंत के श्रृंगार के रूप में दिखाई दे रहा था। वह बसंत की शोभा को बढ़ा रहा था। बसंत से पहिले अर्थात् पतझड़ के मौसम में वायु भी वृक्षों से पत्ते गिराने में डरता था। कहने का आशय यह है कि वहाँ वृक्षों के पत्ते नहीं गिरते थे। वायु उस अशोक वन का लालन-पालन कामदेव तथा रति की क्रीड़ा-भूमि की भाँति करता था। हनुमान सरीखे बिरागी भी मनोहर बावड़ियों–तालाबों तथा उस उद्यान की बनावट को देखकर असक्त हो उठे किन्तु अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान सीताजी की दशा को देखकर उन्हें वन तीनों लोकों के शोक के सार के रूप में दिखाई दिया अर्थात् उस अशोक वन को उन्होंने शोकावृत्त रूप में ही देखा।

विशेष–

(1) यहां अशोक वन की अनुपम छवि का वर्णन किया गया है।

(2) रावण से सभी देवजन संत्रस्त रहते थे। वायु भी उस वन में किसी प्रकार का उत्पात करने का साहस नहीं कर सकता था।

(3) सीताजी की दयनीय दशा को देखते ही हनुमान के लिए उस अशोक वन में किसी प्रकार का आकर्षण दिखलाई नहीं दिया।

(4) 'राग बस भी बिरागी पवन कुमार सो'–यह अंश विशेषत: ध्यान देने योग्य है। इससे हनुमान की विरक्ति ध्वनित हो रही है।

(5) **अलंकार–**उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास।

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीकें सब काल सींचै सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो, प्रान तें पियारो बागु,
अति अनुरागु जियँ जातुधानु धीर को।
'तुलसी' सो जानि सुनि, सीय को दरसु पाइ,
पैठो वाटिका बजाइ बल रघुवीर को।
विद्यमान देखते दसानन को काननु सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को ॥ 2 ॥

शब्दार्थ–मेघमाल = मेघों की माला (मेघों का समूह)। **बनपाल** = वन के रक्षक। **भट** = योद्धा। **सुधासार** = अमृतसार। **जातुधान** = राक्षस। **दरस** = दर्शन। **पैठ** = पहुँचा। **बजाइ** = बजाकर अर्थात् व्यक्त रूप में। **समीर को** = पवन का पुत्र हनुमान।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने अशोक-वन की व्यवस्था, हनुमान द्वारा अशोक वन के उजाड़ने के विषय में वर्णन किया है।

व्याख्या–रावण के अशोक वन में मेघ-समूह माली का कार्य करते थे अर्थात् मेघों द्वारा अमृतोपम जल से उसकी सिंचाई होती थी। उसकी रक्षार्थ अनेक विकराल योद्धा व्याप्त किए गए थे। रावण के लिए यह उद्यान अपने पुत्र मेघनाद से भी अधिक प्यारा, प्राणों से भी अत्याधिक प्यारा था। उस राक्षस वीर एवं धैर्यशाली रावण के मन में इस अशोक वन के प्रति विशेष अनुराग था। तद्विषयक अनुराग को सुनकर और सीता का शुभ-दर्शन प्राप्त कर वीर हनुमान श्री रघुवीर के बल के भरोसे बेधड़क उस अशोक-वन में अन्दर जा पहुँचे। रावण के होते हुए समीर-पुत्र ने उस बाग को उजाड़ दिया।

नोट

विशेष–

(1) यहाँ अशोक वन विषयक रक्षा-व्यवस्था के विषय में प्रकाश डाला गया है।

(2) अशोक वन के प्रति रावण की विशेष अनुरक्ति को यहां दर्शाया गया है।

(3) वीर हनुमान को श्रीराम के बल का पूर्णत: भरोसा था। यही कारण है कि वे नि:शंक होकर व्यक्त रूप में अशोक वन के भीतर प्रविष्ट हो गये।

(4) सीताजी की दयनीय दशा को देखकर हनुमान का क्रुद्ध होकर अशोक-वाटिका को नष्ट-भ्रष्ट कर देना स्वाभाविक ही था।

(5) **अलंकार–**रूपक।

बसन बटोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बाँघत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै-कै,
लात के अघात सहै, जी में कहै, 'कूर हैं'।
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत,
पाछे लोग बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगी,
बिंध की दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं ॥ 3 ॥

शब्दार्थ–बसन = वस्त्र। **बटोरि** = एकत्रित कर। **बोरि** = डुबोकर। **तमीचर** = राक्षस। **खोरि** = गली। **धाइ** = दौड़कर। **लंगूर** = पूँछ। **गात** = शरीर। **अघात** = प्रहार (आघात)। **जी** = मन। **कूर** = निर्दय (क्रूर)। **तारी दै-दै** = तालियाँ बजाना। **निसान** = नगाड़े। **तूर** = तुरही (वाद्य विशेष)। **बालधी** = पूंछ। **ठोर** = स्थान। **विधवारि** = विंध्यवन की आग्नि (दावाग्नि)। **कैंधों** = अथवा। कोट सत = सौ करोड़। **सूर** = सूर्य।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने हनुमान के द्वारा व्यक्त कौतुक एवं लंका में फैली हुई अग्नि के विषय में वर्णन किया है।

व्याख्या–लंकाधिपाति रावण की आज्ञा के अनुसार राक्षसजन कपड़ों को एकत्रित कर तेल में डुबो-डुबो कर–गली-गली से दौड़े हुए आ रहे हैं और हनुमान की पूंछ में बाँध रहे हैं। इस समय वानर हनुमान कुतूहलपूर्ण कार्य कर रहे हैं। वे शरीर को ढीला कर लेते हैं। उनके कार्य से वे राक्षस भयभीत से प्रतीत हो रहे हैं। राक्षसजन उन्हें लातों से मार रहे हैं–लातों के प्रहार को वे सहन कर रहे हैं और मन में कह रहे हैं कि ये बहुत ही दुष्ट हैं, निर्दयी हैं। उनके पीछे बच्चे किलकारियाँ मारते हुए तालियां बजा रहे हैं, गलियाँ दे रहे हैं और राक्षस लोग ढोल, नगाड़े तथा तुरही बाद्य आदि बजा रहे हैं। वीर-पवन-पुत्र की पूँछ बढ़ने लगी जिससे स्थान-स्थान पर अग्नि फैल गई। उस फैली हुई अग्नि को देखकर ऐसा दिखलाई दे रहा था मानो विंध्य की दावाग्नि फैल गई हो या नौ करोड़ सूर्य युगपत् भासित हो गये हों।

विशेष–

(1) यहाँ राक्षसों की क्रूरता को व्यक्त किया गया है।

(2) यहाँ हनुमान की कुतूहल-प्रियता की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

(3) बालकों के स्वाभाविक व्यापारों, किलकारियाँ मारना, तालियाँ बजाना, अपशब्द-प्रयोग आदि की और संकेत किया गया है।

(4) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का निम्न अंश देखें–

नोट

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला।
कौतुक कहैं आए पुरवासी। मारहिं चरन करहिं बहु हांसी।
बाजहिं ढ़ोल देहि सब तारी। नगर फेरि पुनि पुंछ पजारी।

(5) यहां अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(6) **अलंकार**–स्वभावोक्ति, अनुप्रास एवं वीप्सा।

लाइ लाइ आगि, भागे बाल-जाल जहाँ-तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो।
कौतुक कपीसु कूदि कनक-कँगूरा चढ़ि
रावन-भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।
'तुलसी' बिराज्यो व्योम बालधी पसारि भारी,
देखें हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज के निधान मानो कोटिक कृभानु भानु,
नख विकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो ॥ 4 ॥

शब्दार्थ–बाल-जाल = बालकों का समूह। **निबुकि** = खिसककर। **कनक-कंगूर** = सोने के कँगूरे। **व्योम** = आकाश। **पसारि** = फैलाकर। **हहरात** = भय से काँपना। **कराल** = भयंकर। **निधान** = भण्डार। **कृसानु** = अग्नि (स. कृशानु)। **रिस लाल** = क्रोध से रक्ताभ।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने वीर हनुमान द्वारा किए गए लंका–दहन का वर्णन किया है।

व्याख्या–स्थान-स्थान पर आग लग जाने के फलस्वरूप बालकों का समूह जहाँ-तहाँ भागने लगा। वीर हनुमान ने लघु रूप धारण कर लिया। तद्‌नन्तर व मेरु पर्वत के समान विशालाकार हो गए। कौतुकी वानर (हनुमान) कूदकर सुवर्ण के कंगूरों पर चढ़ गए। रावण के भवन पर जा पहुँचे और वहाँ खड़े हो गए। उन्होंने अपने लम्बी पूँछ आकाश में फैला दी–उस समय वे शोभायमान दिखलाई दे रहे थे। राक्षस वीर-हनुमान के ऐसे रूप को काल से भी कहीं अधिक भयंकर देखकर भय के मारे थर-थर काँपने लगे–हाहाकार करने लगे। तेज के आगार-स्वरूप हनुमान उस समय ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों करोड़ों अग्निरूप सूर्य युगपत् प्रदीप्त हो उठे हों। उस समय उनके नाखून भयंकर दिखलाई दे रहे थे तथा उनका मुख क्रोध से रक्तिम हो रहा था–अर्थात् क्रोध से मारे तमतमा रहा था।

विशेष–

(1) यहां हनुमानजी द्वारा किए गये लंका-दहन की झलक प्रस्तुत की गई है।

(2) यहां वीर हनुमान की क्रोधपरक मुद्रा का चित्रांकन किया गया है।

(3) यहां हनुमानजी के निस्सीम पराक्रम एवं साहसिक कार्य से संत्रस्त राक्षसों की दशा का चित्रण किया गया है।

(4) यहां पद रचना विशेष रूप से प्रेक्षणीय है।

(5) भावात्मक तुलना के लिए रामचरितमानस का प्रस्तुत अंश देखें–

"पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता॥
निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर रानी॥

(6) **अलंकार**–अनुप्रास एवं वीप्सा।

बालघी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों व्योमबीथिका भरे हैं भूरि घूमकेतु,

नोट

बीररस बीर तरवारि सीं उधारी है।
'तुलसी' सुरेश-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहै,
"कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी हैं" ॥ 5 ॥

शब्दार्थ–ज्वाल जाल = अग्नि की लपटें। **लीलिबे को** = निगलने के लिए। **रसना** = जीभ। **कैंधों** = अथवा। **व्योम-वीथिका** = आकाश-मार्ग। **भूरि** = अधिक। **घूमकेतु** = पुच्छल तारे (सं. घूम्रकेतु)। **सुरेश-चाप** = इन्द्र-धनुष। **दामिनी-कलाप** = विद्युत समूह। **कृसानु-सरि** = अग्नि की सरिता। **जातुधान** = राक्षस। **जातुधानी** = राक्षसियाँ। **प्रजारी** = जलाना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने हनुमानजी की पूँछ की भीषणता एवं भयसंत्रस्त राक्षस-राक्षसियों की दशा का चित्रण किया है।

व्याख्या–वीर हनुमान की भयंकर विशाल एवं अग्निरूप पूंछ ऐसी दिखाई दे रही थी मानो काल ने लंका को निगलने के लिए अपनी जीभ को फैला दिया हो अथवा आकाश-मार्ग में अनेक धूम्रकेतु भर गये हों, अथवा वीर ने वीररस रूपी तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया हो अथवा इंद्र-धनुष के रूप में हो अथवा विद्युत-समूह के रूप में हो अथवा मेरु पर्वत से अग्नि की विशाल नदी प्रवाहित हो रही हो। उस समय के भीषण दृश्य–विनाश-लीला को देखकर राक्षस-राक्षसियाँ–सभी व्याकुल हो गए और कहने लगे कि इसने अशोक-वन को तो पहले ही उजाड़ दिया है और यह नगर को ही जलाये दे रहा है।

विशेष–

(1) यहां चित्रात्मकता विशेषत: प्रेक्षणीय है।

(2) कवि द्वारा प्रयुक्त उत्पेक्षायें सजीव हो उठीं हैं।

(3) यहां भयानक रस तथा ओज-गुण की अभिव्यक्ति हुई है।

(4) **अलंकार–**उत्प्रेक्षा तथा उपमा।

जहां तहां बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
'जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
छोटे ढोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे।
हाथी छोरो, धोरा छोरो महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सौर्व सो जागाओ जागि रे।
'तुलसी' बिलोके अकुलानी जातुधानी कहैं,
'बार बार कह्यो पिय कपि मों न लागि रे' ॥ 6 ॥

शब्दार्थ–बुबुक = अग्नि की लपटें। **बुबकारी देत** = अटपटे शब्द बोलना, अनर्गल प्रलाप करना (भयभीत होकर)। **निकेत** = घर, भवन। **धाओ** = दौड़ो। **भ्रात** = भाई। **भगिनि** = बहन। **ढोटे** = छोटे बालक। **छोहरा** = लड़के। **छोरो** = छोड़ो, बंधन से मुक्त कर दो। **महिष** = भैंस। **वृषभ** = बैल। **छेरी** = बकरी।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदास ने लंका नगरी में दहन के परिणामस्वरूप हुई आतंकजन्य अवस्था का वर्णन किया है।

व्याख्या–जब वीर हनुमान ने लंका में स्थान-स्थान पर अपनी विशाल पूंछ की आग से आग दी तब सभी ने आग

नोट

की उन भीषण लपटों को देखा और वे भयभीत होकर अव्यक्त शब्द बोलने लगे–अर, घरबार जले जा रहे हैं, दौड़ों-दौडों–सब और से आग फैल गई है। माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री और भाभी आदि सब इस समय कहां हैं? छोटे-छोटे बालक, बच्चे और लड़के इत्यादि कहां हैं। अरे! भोले स्वभाव वालो! अरे अभागो! यहाँ से सब भाग चलो। हाथियों, घोड़ों, भैसों, बैलों-बकरियों को बंधन से मुक्त कर दो (ताकि वे भाग कर कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुंच जावें) कोई सो रहा हो तो उसे भी तुरन्त जगा दो और खुद भी जागो–सावधान रहो। लंका को ऐसी दशा में देखकर सभी राक्षसियां विकल हो गई और कहने लगीं कि हे स्वामी! हमने तो पहले ही बार-बार कहा था कि इस वानर को छेड़ना किसी भी दशा में ठीक नहीं है किन्तु हमारी बात पर तो किसी ने भी बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। अब इसका परिणाम सभी को भोगना पड़ेगा।

विशेष–

(1) यहां लंका में अग्निकांण्ड की भीषणता एवं खलबली का यथा-तथ्य चित्रण हुआ है। उस विषम क्षण में सभी को अपनी-अपनी जान के लाले पड़ जाते हैं। अपने सामान की तो किसी को चिन्ता ही नहीं होती।

(2) लंका दहन से संत्रस्त राक्षसियों की दशा का चित्रण सजीव हो उठा है।

(3) यहां ओजगुण की झलक द्रष्टव्य है।

(4) **अलंकार**–कारक दीपक।

दैखि ज्वाल लाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरा धरो' धाए बोर बलवान हैं।
लिए सूल, सेल, पास, परिध, प्रचंड दड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुवान हैं।
'तुलसी' समिध सौंज लंक जज्ञकंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जब तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हबि,
स्वाही महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं ॥ 7 ॥

शब्दार्थ–ज्वालजाल = अग्नि की लपटें। **दसकंध** = रावण। **सुनि** = सुनकर। **धरो** = पकड़ो। **धाए** = दौड़े। **सूल** = शूल। **सैल** = बर्छी। **पास** = फांसे (पाश)। **भोजन सनीर** = जल से भरे पात्र। **समिध** = समिधा, ईधन। **सौंज** = सामग्री। **जज्ञकुण्ड** = यज्ञकुण्ड। **लखि** = देखकर। **पुँगीफल** = सुपारी। **धान** = चावल। **सुवा** = लकड़ी का बना एक प्रकार का चम्मच जिससे घी की आहुति दी जाती है (सं. सुवा)। **लंगूल** = पूंछ (सं. लांगूल)। **बलमूल** = बलशाली। **प्रतिकूल** = बैरी। **हांकि** = गर्जना करते हुए। **हुनै** = हवन करना।

प्रसंग–तुलसीदासजी ने लंका-दहन का एक यज्ञ के रूप में वर्णन किया है।

व्याख्या–जब रावण ने लंका नगरी को अग्नि की भयंकर लपटों से घिरा हुआ देखा वहां पर हो रहे भीषण चीत्कार को सुना तब उसने उस वानर को पकड़ने का आदेश दिया। उसके आदेशानुसार बड़े-बड़े वीर बलशाली योद्धा लोग उसे पकड़ने के लिए दौड़ पड़े। उनके हाथों में शूल, बर्छियां, पासे, परिध, मोटे-मोटे दण्ड आदि तथा जल से भरे हुए पात्र तथा धनुषबाण थे। उस समय लंका यज्ञकुण्ड के समान थी। यहां पर राक्षसजन सामग्री समिधा, सुपारियों, तिलों, जो तथा चावल के रूप में थे। वीर हनुमान की पूँछ सुवा का कार्य कर रही थी और राक्षस भटों का समूह हवि के रूप में प्रयुक्त हो रहा था। वहां का क्रन्दन तथा हनुमान की गर्जना 'स्वाहा' के घोष के रूप में थी। वीर हनुमान वहां भीषण गर्जना करते हुए हवन कर रहे थे।

विशेष–

(1) यहां लंका को एक यज्ञकुण्ड के रूप में बतलाया गया है। यज्ञ में समिधा, हवन सामग्री का प्रयोग होता है।

नोट

हवन सामग्री में जौ, तिल, सुपारी तथा चावल आदि होते हैं।

(2) यहां रूपक चित्र विशेषत: रमणीय है।

(3) **अलंकार**–अनुप्रास एवं सांगरूपक।

गाज्यो कपि गाज ज्यों, विराज्यो ज्वालजाल जतु,
भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'घाऔ घाओ घरो, सुनि धाई जातुधान-धारि,
वारिधारा उलतै उलद ज्यों न सावनो।
लपट-झपट झहराने, हहराने बात,
झहराने भट, पर्‌यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
'नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो, ॥ 8 ॥

शब्दार्थ–गाज्यो = गरजा। **गाज** = विद्युत। **जुत** = युक्त। **भाजे** = दौड़े। **जातुधान धारि** = राक्षसों की सैना। **उलदै** = उड़लना। **सावनो** = सावन (श्रावण) मास में भी। **बात** = वायु। **परावनो** = भाग दौड़। **ढकनि** = धक्के। **ढकेली** = देकर। **पेलि** = जबर्दस्ती। **सचिव** = मंत्री। **नाथ** = स्वामी। **अनल** = अग्नि। **भयावनो** = भंयकर।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने लंका में व्याप्त अग्नि के भीषण स्वरूप का वर्णन किया है।

व्याख्या–लंका-दहन के समय वीर हनुमान अग्नि की लपटों से युक्त होकर शोभित हो रहे थे। ज्योंही उन्होंने विद्युत के समान भीषण गर्जना की (योंही संत्रस्त होकर राक्षस योद्धा जहां-तहां भागने लगे। उस गर्जना को सुनकर रावण व्याकुल हो उठा। रावण ने उस वानर को पकड़ने का आदेश दिया जिसे सुनकर राक्षसों की सैना दौड़ पड़ी। उन्होंने उस फैली हुई भयंकर अग्नि पर इतना पानी उड़ेल दिया जितना कि श्रावण के मास में मेघ भी नहीं बरसा सकते। इतने पर भी अग्नि शांत न हो सकी। अग्नि की लपेटों तथा ताप से राक्षस वीर झुलसने लगे और वायु भी संतप्त होकर जोर-जोर से बहने लगी। परिणाम यह हुआ कि सभी लोगों में वहां उस समय भगदड़–खलबली मच गई। मंत्री लोग रावण को धक्कों से जबरदस्ती धकेल कर उस स्थान से कहीं अन्यत्र ले गए। वे उस समय कह रहे थे कि हे स्वामी! इस समय यह अग्नि बहुत ही भयंकर है। यहां हम कितना भी बल दिखलायें–सब बेकार है।

विशेष–

(1) यहां रावण की व्याकुलता का चित्रण किया गया है।

(2) यहां वीर हनुमान की गर्जना के प्रभाव को दर्शाया गया है।

(3) **अलंकार**–अनुप्रास।

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिहनाद,
उठ्यो मेघनाद, सबिषाद कहै रावनी।
बेगि जीत्यो मारुय, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता, बड़ाई जीतो बावनो।
'तुलसी', सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसी दूर सो साहेब अबै आबनो।
काहे की कुशल रोष राम बामदेवहूं के,
विषम बली सों बादि बैर मो बढ़ावनो॥ 9 ॥

नोट

शब्दार्थ–बिकराल = भयंकर। **सिंहनाद** = गर्जना। **सविषाद** = दु:समेत। **मारुत** = पावन। **मार्तण्ड** = सुर्य। **बाबनो** = बामन (अवतार)। **सयाने** = बुद्धिमान चतुर। **साहेब** = स्वामी। **अबै** = अभी। **रोषै** = कुपित होने पर, रुष्ट होने पर। **बामदेव** = शिव। **विषम** = अत्यधिक। **बादि** = व्यर्थ। **बढ़ावनो** = बढ़ाना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने हनुमानजी के पराक्रम-विषयक प्रभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या–वीर हनुमान के भयंकर वेश को देखकर तथा उनकी गर्जना को सुनकर रावण का पुत्र मेघनाद उठ पड़ा। तभी रावण ने परम दु:खित होकर कहा कि इस वानर ने तो वेग में पवन को भी विजित कर लिया है और प्रताप में करोड़ों (अनेक) सूर्यों को भी, भयंकरता में काल को भी तथा विशालता में वामनावतार विष्णु को भी पराजित कर दिया है। भाव यह है कि गति, प्रताप, भयंकरता एवं विशालता के क्षेत्र में इस हनुमान ने सभी को पराजित कर दिया है। चतुर राक्षसजन मन में यह सोचकर पछताने लगे कि जिस स्वामी का दूत इतना साहसी, गतिशील, भयंकर एवं प्रतापी है तो उसका स्वामी न जाने कितना समर्थ होगा–अभी तो यही आया है और इसने आतंक मचा रखा है। अभी तो स्वामी को यहाँ आना है। स्वामी के यहाँ आने पर क्या दशा होगी–यह तो परम दु:खद परिस्थिति है। श्रीरामजी के रुष्ट होने पर शिव को भी कुशलता नहीं है। ऐसे परम बली से शत्रुता बढ़ाना व्यर्थ ही है।

विशेष–

(1) यहां हनुमानजी के प्रताप को अभिव्यक्त किया गया है।

(2) यहाँ रावण को आतंकित दिखलाया गया है। रावण के कथन से उसकी व्याकुलता का आभास उपलब्ध हो रहा है।

(3) 'जाको ऐसो दूत सो साहेब अबै आवनो'–यह अंश विशेष रूप से चित्य है। सभी चतुर राक्षस मन में चिन्तित हैं किन्तु रावण के सामने स्पष्ट विचार व्यक्त करने का साहस उनमें दिखलाई नहीं दे रहा है।

(4) यहां भयानक रस की अवतारणा हुई है।

(5) **अलंकार–**अनुप्रास एवं प्रतीप।

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहें,
जाति है परानी, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारै, मनि-भूषन संभारत न,
आनन सुखाने कहें 'क्यो हूं फोऊ पालि है?'
'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
काहू कान कियो न मैं कह्यो केता कालि है।'
बापुरौ विभीषण पुकारि बार बार कह्यो,
'बानर बड़ी बलाइ धने घर धालिहै' ॥ 10 ॥

शब्दार्थ–परानी = भागना (पलायन करना)। **गजचालि** = हाथी जैसी चाल। **बसन** = वस्त्र। **बिसारै** = भूलना, सुधि न रहना। **संभारत न** = सँभाले नहीं जा रहे हैं। **आनन** = मुखमंडल। **पालि हैं** = पालन (रक्षा) करेगा। मंदोवै = मंदोदरी (रावण की रानी)। **मीजि हाथ** = हाथ मलना। **धुनि-माथ** = माथा पीटना। **कान कियो न** = कान नहीं किया अर्थात् ध्यान नहीं दिया। **कैतौ कालि** = कितनी बार अर्थात् अनकश:। **बापुरो** = बेचारा। **बलाइ** = बलाय, मुसीबत। **घने** = बहुत से। **घर** = घरबार। **घालि है** = ध्वस्त कर देगा, नष्ट कर देगा।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने रानियों की विकलता तथा अस्तव्यस्तता का सुन्दर निरूपण किया है।

व्याख्या–लंका-दहन के फलस्वरूप गजगामिनियाँ–रानियाँ व्याकुल होकर पानी-पानी शब्द कहते हुए दौड़ी चलीं जा रही हैं। इस समय उन्हें अपने वस्त्रों की अस्तव्यस्तता के विषय में भी कुछ सुधि नहीं हैं। मणिजटिल आभूषणों की सार-संभाल उनसे नहीं हो पा रही है। फैली हुई अग्नि से समूचा वातावरण संतप्त हो गया है। भय तथा प्यास के कारण उनके मुख सूख गए हैं। उन्हें अब यही चिन्ता लग गई है कि ऐसी विषम परिस्थिति में हमारी कौन रक्षा

नोट

करेगा। इधर रानी मंदोदरी अपने हाथ मलती हुई तथा अपना सिर पीटती हुई कह रही है कि मैंने कितनी ही बार समझाया किन्तु किसी ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। बेचारे विभीषण ने भी पुकार-पुकार कर बारम्बार यही कहा था कि यह वानर एक बड़ी भारी विपत्ति के रूप में है–बला है। इसे छेड़ना ठीक नहीं है किन्तु किसी ने सुना ही नहीं। अब यह वानर अनेक घरों को तहस-नहस कर देगा।

विशेष–

(1) यहां रानियों की चिंताजनक दशा का चित्रांकन किया गया है।

(2) रानियों को भयवस्त दिखलाया गया है। उन्हें अपने वस्त्रों तथा आभूषणों की सुधि-बुधि भी नहीं रह गई है।

(3) मंदोदरी तथा विभीषण के द्वारा बारम्बार कहे जाने पर भी किसी पर उनकी बात का प्रभाव नहीं पड़ा।

(4) **अलंकार–**अनुप्रास एवं वीप्सा।

'कानन उजार्‌यो तौ उजार्‌यो न बिगार्‌यो कछू,
बानर विचारो बाँधि आन्यो हठि हार सी।
निपट निडर देख काहूं न लख्यी बिसेषि,
दीन्हों ना छुंड़ाइ कइि कुल के कुठार सों।
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलै, मैलें गरे छुराधार सों।
'तुलसी' मँदोवै रोई रोइ कै बिगावै आपु,
'बार-बार कह्यो में पुकारि दाढ़ाजार सों' ॥ 11 ॥

शब्दार्थ–बिगार्‌यो = बिगाड़ा। **आन्यो** = लाया। **हठि** = बलपूर्वक। **निपट** = पूर्ण रूप से। **लख्यौ** = देखा। **बिसेषि** = विशेष रूप से। **कुल के कुठार** = कुलघातक। **बड़ेरे** = बड़े, समर्थ। **अनेरे** = नासमझ, बुद्धिहीन। **पूतऊ** = पुत्र भी। **सांपनि सों खेलें** = सांपों से खेलना, जानबूझकर मुसीबत लेना। **मेलें गरे** = गले लगना। **छुराधार** = छुरे की धार। **मैले गरे छुराधार** = छुरे की धार से गले लगाना अर्थात् अपनी जिन्दगी जोखिम में डालना (मुहावरा)। **बिगावै** = पछताना, दु:खित होना। **दाढ़ीजार** = अपशब्द (गाली) है जो मेघनाद के लिए प्रयुक्त हुआ है। है जो मेघनाद के लिए प्रयुक्त हुआ है।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने मंदोदरी के भावों का वर्णन किया है।

व्याख्या–इस वानर ने पहले तो अशोकवन को उजाड़ दिया। अशोकवन को उजाड़कर तो कुछ भी बिगाड़ नहीं किया अर्थात् जो कुछ भी हुआ सो हुआ। वानर का ऐसा स्वभाव होता ही है। जिस पर भी उस बेचारे वानर को जबरदस्ती बांध कर यहां ले आया। यहां आने पर भी वह पूर्णरूप से निडर रहा–इस बात को किसी ने भी नहीं सोचा-समझा कि आखिर इसमें इतनी निर्भीकता क्यों है? वानर में किसी प्रकार का भय-सन्देह दिखलाई नहीं दे रहा था। किसी ने भी यह बात रावण को नहीं सुझाई–कोई भी कुलघातक रावण को समझा-बुझाकर इस वानर को छुड़ा न सका। मेरे छोटे-बड़े सभी पुत्र नासमझ हैं। वे तो साँपों से खेलते हैं और छुरे की धार को गले लगाते हैं अर्थात् जानबूझकर अपनी जान को मुसीबत में डाल रहे हैं। इस प्रकार रानी मंदोदरी रो-रोकर पश्चात्ताप कर रही है–परम दु:खित हो रही है और कह रही है कि मैंने उस दाढ़जार (मेघनाद) से बार-बार यही कहा था कि इस वानर को छेड़ना उचित नहीं है।

विशेष–

(1) मेघनाद के लिए 'दाढ़ीजार' अपशब्द का प्रयोग मंदोदरी की क्रोधपरक उक्ति का व्यंजक है। वैसे भारतीय परम्परानुकूल ऐसा प्रयोग शोभनीय नहीं है।

नोट

(2) यहाँ मंदोदरी ने अपने पुत्रों के विषय में खरा-खोटा कहा है। मंदोदरी ने अपने पुत्रों के विषय में कहा है कि जानबूझकर मुसीबत में फंसते हैं।

(3) यहां मुहावरों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(4) यहाँ ओजगुण का प्रकाशन हुआ है।

(5) **अलंकार**–अनुप्रास।

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए।

1. कवितावली में कुल कितने काण्ड हैं
   (क) आठ (ख) सात (ग) तीन
2. राम द्वारा धनुष तोड़ने की घटना कहाँ घटित हुई–
   (क) मिथिला प्रदेश (ख) काशी (ग) अयोध्या
3. कवितावली की रचना किस भाषा में हुई–
   (क) अवधी (ख) ब्रज (ग) मैथिली
4. तुलसी ने बालकाण्ड में 'केसरी कुमार' किसे कहा है–
   (क) लक्ष्मण को (ख) राम को (ग) हनुमान को

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकै ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को।
मींजि-मींजि हाथ, धनै माथ दसमाथ तिय
'तुलसी, तिलौ न भयो बाहिर अगार को।
सब असबाब डाढो, मैं न काढो, तै न काढो,
जिय की परी, सँभारै सहन भंडार को?
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
'बयो लनियत सब याही दाढीजार को' ॥ 12 ॥

शब्दार्थ–डाढ़त = अग्नि से जलती हुई। **परानी जाहिं** = भागी जा रही हैं। **केसरीकुमार** = पवन-पुत्र हनुमान। **मींजि-मींजि हाथ** = हाथ मल-मलकर। (पछता कर)। **धुनै माथ** = सिर पीटना (परम दु:खित होना)। दशमाथतिय = रावण की स्त्रियां (रानियाँ)। **तिलौ** = तिल भी (अर्थात् थोड़ा-सा भी)। **अगार को** = भवन का (सामान)। **बाहिर** = बाहर। **असबाब** = सामान। **डाढ़ी** = जल गया। **काढ़ों** = निकाला। **तैं** = तूने। **जिय की परी** = जान के लाले पड़ना। **संभारे** = सभालना। को = कौन। **खीझति** = खीझ रही है, क्षुब्ध हो रही है। **सविषाद** = दु:ख सहित। **बयौ** = बोया हुआ। **लुनियत** = काटना। **याही** = इसी। **दाढ़ीजार** = अपशब्द प्रयोग (मेघनाद के लिए)।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने राक्षसेन्द्र रावण की रानियों की व्यग्रता को व्यक्त किया है।

व्याख्या–लंका नगरी में हनुमानजी ने अपनी विशाल पूँछ से स्थान-स्थान पर आग फैला दी है जिसके फलस्वरूप रानियाँ परम व्यग्र हो उठी हैं। वे अग्नि की लपटों से जलती-झुलसतीं हुई भागी जा रही हैं। वे सुरक्षित स्थान खोजने के लिए चिन्तातुर हो गई हैं। ऐसी दशा में वे हनुमान के भयंकर वेश को देखने में भी समर्थ नहीं हैं। रावण की स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर तथा अपने सिर पीट-पीट कर पश्चाताप कर रहीं हैं कि घर का सामान अंदर ही जलकर राख हो गया–कोई भी सामान बाहर निकाला नहीं जा सका। वे परस्पर पछताती हुई कह रही हैं कि सामान को न तो मैं ही बाहर निकाल सकी और न तू ही सामान को बाहर निकाल सकी। समूचा घर के भीतर ही स्वाहा

नोट

हो गया। सभी को अपनी-अपनी जान के लाले पड़ गए। सामान निकालने के विषय में तो किसी से कुछ हो ही नहीं पाया। घर-भंडार की बात तो कोई तब सोचे जब किसी के पास इतना समय हो। जब अपने जीवन को बचाना ही दूभर हो गया हो तब सामान के बाहर निकालने की सामर्थ्य भला किस में होती है। मेघनाद को देखकर परम दु:खित होकर रानी मंदोदरी क्षुब्ध होते हुए कह रही है कि यह सब काम इसी दाढ़ीजार मेघनाद का ही किया हुआ है। इसने जैसा बोया है वैसा ही हम सभी को काटना पड़ेगा अर्थात् इसने जो काम किया है उसका फल तो अब हमें भोगना ही पड़ेगा। कष्ट भोगने के सिवाय अब हमारे सामने कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि यह उस वानर को जबरदस्ती यहां न लाया होता तो संभव है हमें यह दुर्दिन न देखना पड़ता।

विशेष–

(1) यहाँ रावण की रानियों के आन्तरिक दु:ख का सशक्त चित्रण हुआ है।

(2) जीवन-रक्षा सर्वप्रथम है। जिसके प्राणों पर आ पड़ती है उसे सामान की कोई सुधि-बुधि और सामर्थ्य नहीं रहती है।

(3) यहाँ स्वाभाविकता का समावेश है। लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है।

(4) यहाँ 'ओज' नामक गुण तथा भयानक रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(5) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति।

रावन की रानी जातुधानी बिखलानी कहै,
हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, का-काहे रे महोदर तू
धीरज न देत, लाइ लेत त्यों न हाथ सों।
काहे अतिकाय, काहे-काहे रे अकपन
अभागे तिय त्यागे भोड भागे जात साथ सों?
'तुलसी' बढाय बादि साल ते बिसाल बाहैं,
याहि बल, बालिसों! विरोध रघुनाथसों ॥ 13 ॥

शब्दार्थ–बिलखानी = दु:खित। **बीसबाहु** = बीस भुजाओं वाला (रावण)। **तिय** = स्त्री। **बादि** = व्यर्थ। **साल** = शाल (वृक्ष विशेष)। **बाहें** = भुजाएँ। **बालिसौ** = बालि से।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने रानियों के आंतरिक दु:ख का वर्णन किया है।

व्याख्या–रावण की राक्षसी महिषियां व्यथित होकर कह रही हैं कि हम ऐसी मुसीबत में फंस गई हैं। हमारी ऐसी दशा के बारे में कोई भी उस बीस भुजाओं वाले तथा दस मस्तकों वाले रावण को नहीं बतलाता। हे मेघनाद! हे सहोदर! तुम सब किस लिए हो। तुम हमें धैर्य क्यों नहीं बंघाते। तुम हमें सहारा क्यों नहीं दे रहे हो। तुम हमें इस विषम आपत्ति से क्यों नहीं बचाते। हे अतिकाय! हे अकंपन! तुम क्या कर रहे हो? तुम तो अभागे और नीच हो जो हम स्त्रियों को त्यागकर मुख मोड़कर भागे जा रहे हो। हे दुष्टी! तुम्हारा बल-पराक्रम हमारे लिए तो किसी काम का नहीं है। तुमने अपनी भुजायें साल के समान विशाल धारण की है किन्तु इनका लाभ हमें तो कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम्हारा बाहुबल हमारे लिए तो व्यर्थ ही है क्योंकि तुम हमें आश्रय प्रदान करने में समर्थ नहीं हो। तुम ऐसे गये बीते हो तो तुम्हें श्रीराम से विरोध करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यदि तुम उनसे वैर न करते तो हमें यह दिन न देखना पड़ता।

विशेष–

(1) 'बीसबाहु' तथा 'दसमाथ' शब्दों का प्रयोग सभिप्राय है। 'बीसबाहु' शब्द रावण के अहंकार तथा 'दसमाथ' शब्द उसकी बुद्धि के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनों शब्दों में व्यंग्य सन्निहित है।

नोट

(2) 'अतिकाय' तथा 'अकंपन' शब्दों का प्रयोग साभिप्राय है। रावण के पुत्रों के नाम भी हो सकते हैं।

(3) **अलंकार–**अनुप्रास।

हाट, बाट, कोट-ओट अट्टानि, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दोरि दीन्हों अति आगि है।
आरत पुकात, सँभारन न कोऊ काहू,
व्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग चले भागि है।
बालधी फिरावै वार-बार झहरावै, झरै
बूंदिया सी, लंक पघिलाइ पाग, पागिहै।
'तुलसी, बिलोकि अकुलानि जातुधानी कहें,
'चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहै ॥ 14 ॥

शब्दार्थ– हाट = बाजार। **बाट** = मार्ग। **कोट** = किला। **ओट** = आड़। **अट्टनि** = अट्टालिकायें। **खोरि-खोरि** = गली-गली। **आरत** = दु:खी (सं. आर्त)। **कोऊ** = कोई। **काहू** = किसी को। **बालधी** = पूँछ। **झहरावै** = झटकारना। **झरै** = टपकना। **बूंदिया सो** = बूँदों के समान। पाग = पाक। **पागिहै** = पागना। **जातुधानी** = राक्षसी। **चित्रहू के कपिसों** = चित्रलिखित वानर से भी। **निसाचर** = राक्षस।

प्रसंग–तुलसीदासजी ने लंका-दहन का भीषण दृश्य उपस्थित किया है।

व्याख्या–हनुमानजी ने लंका-नगरी के बाजारों में, किले के ओट में, मार्गों, घरों 'अट्टालिकाओं, भवनों, पौरियों, गलियों में दौड़-दौड़कर सब जगह अग्नि को फैला दिया है–अग्नि लगा दी है। सभी लोग ऐसी विषम परिस्थिति में दु:खित होकर पुकार रहे हैं–चीत्कार कर रहे हैं। कोई किसी को नहीं संभाल पा रहा है। सभी व्याकुल हैं और ऐसी दशा में अपनी जान बचाने के लिए जहां-तहां भागने का प्रयास कर रहे हैं। भागे जा रहे हैं। उस पूँछ से आग की चिनगारियां बूँदों के समान गिर रही थीं। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों लंका पिघलकर चाशनी के रूप में तैयार हो रही थी और गिरती हुई चिनगारियाँ मानों बूँदियों के समान उसमें पागी जा रही हों–एक प्रकार का पाक तैयार हो रहा था। लंका की ऐसी दशा का अवलोकन कर राक्षसी रानियाँ यही कह रहीं थीं कि अब तो कोई भी राक्षस चित्र में अंकित वानर से भी नहीं जूझेगा। सच्चे वानर से तो जूझने का कभी साहस भी नहीं कर सकेगा।

विशेष–

(1) लंका-दहन के फलस्वरूप रानियों की व्याकुलता का अंकन किया गया है।

(2) 'चित्रहू के कपिसों निसाचर न लागि है'–यह अंश विशेषत: महत्वपूर्ण है। इससे राक्षसों का पूर्णत: संत्रस्त होना द्योतित हो रहा है।

(3) यहां भयानाक रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(4) **अलंकार–**स्वाभावोक्ति।

लागि-लागि आगि, भागि-भागि चले जहाँ-तहाँ
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उधारे, धूम-धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढे 'बारि-बारि, वार-बारहीं।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि खौंदि डाररीं।

नोट

नाक लै चिलात, बिललात अकुलात अति
'तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं ॥ 15 ॥

शब्दार्थ–धीय = पूत्री। **माय** = माता। **पूत** = पूत्र। **संभारही** = संभालना। **बार** = बाल, केश। **बसन** = वस्त्र। **उधारे** = खुलना। **धूम** = धुआँ (सं. धूम्र)। **बारि** = पानी। **हय** = घोड़े। **हिहिनात** = हिनहिनाना। **घहरात** = चिघाड़ना। **भीर** = भीड़। **बिललात** = बिलबिलाना। **झौंसियत** = झुलसाना। **झारहीं** = लपटें।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने लंका–दहन के परिणामस्वरूप वहां पर व्याप्त गड़बड़ी के विषय में वर्णन किया है।

व्याख्या–'सर्वत्र आग लग गई है'–इस प्रकार से सभी लोग अपने–अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए सुरक्षित स्थान की और भागे जा रहे हैं। इस समय सबको अपनी–अपनी पड़ रही है। माता अपनी पुत्री को और पिता अपने पुत्र को नहीं संभाल पा रहा था। यहां तक कि किसी को अपनी दशा का भी ज्ञान नहीं था। किसी के कपड़े खुले जा रहे थे तो किसी के बाल खुले जा रहे थे। वहां धुएं के कारण धुंध–सा छाया हुआ था अत: किसी को स्पष्ट रूप से कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था। बच्चे–बूढ़े प्यास के मारे बैचेन होकर बारबार पानी–पानी चिल्ला रहे थे। वहां तो कोई किसी की पुकार को नहीं सुन सकता था। अग्नि की लपटों से संत्रस्त होकर घोड़े हिनहिनाते हुए सुरक्षित स्थान की तलाश में जहां–तहां भागे जा रहे थो और हाथी चिंघाड़ते हुए भाग रहे थे। वे लोगों की भीड़ को धकेलते–रौंदते–कुचलते हुए जख्मी कर रहे थे, क्योंकि पशुओं को भी आने प्राणों की रक्षा करना आवश्यक था। सभी लोग अपने प्रिय एवं स्नेही–जनों को नाम ले–लेकर पुकार रहे थे और बिलबिला रहे थे और परम व्याकुल हो रहे थे। वे सभी यही कह रहे थे कि हम अग्नि की लपटों से तपे और झुलसे जा रहे हैं।

विशेष–

(1) यहां लंका–दहन का भीषण दृश्य निरूपित किया गया है।

(2) लंका–निवासियों में व्याप्त व्याकुलता एवं वहां हुई खलबली के विषय का स्वाभाविक किया गया है।

(3) **अलंकार–**स्वभावोक्ति एवं अनुप्रास।

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूं दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात! तू निबाहि रे।
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप,
बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे।
'तुलही, विलोक वोग व्याकुल बिहाल कहैं,
लेहिं दससीस अब बीस चल चाहि रे ॥ 16 ॥

शब्दार्थ–ज्वालजालमाल = अग्नि की लपटों का समूह। **दहूँ दिसि** = दश दिशाओं में। **धूम अकुलाने** = धुएं से व्याकुल। **काहि** = किसी को। **जरे** = जलना। **गात** = शरीर। **ललात** = लालायित होना। **बिललात** = बिलबिलाना। **पाइमाल** = पैरों से रौंदा जाना। **भ्रात** = भाई। **निबाहि** = बचाओ, रक्षा करो। **पराहि** = भागो। **बिलोकि** = देखकर। **बिहाल** = विह्वल, दु:खी। **चख** = नेत्र। **चाहि** = देखना।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने लंका–निवासियों के हाहाकार का वर्णन किया है।

व्याख्या–अग्नि की लपेटों का समूह दसों दिशाओं में प्रसृत हो गया। वहाँ आग फैलने से उत्पन्न धुएं के फलस्वरूप लोग विकल हो गए थे। वहाँ उस समय कोई किसी को पहचान भी नहीं पा रहा था। धूएँ के कारण सर्वत्र अंधेरा ही अंधेरा छा गया था। प्यास से संतप्त होकर वहाँ सभी पानी पीने के लिए लालायित हो रहे थे चीत्कार कर रहे

नोट

थे और उनके शरीर आग की लपटों से झूलसे जा रहे थे। एक-दूसरे को ठीक प्रकार से न देख सकने के कारण आपस में ही वे कुचले जा रहे थे। वे परस्पर एक-दूसरे से बचाने की प्रार्थना कर रहे थे। हे भाई! तू हमें बचा ले। कोई कह रहा था कि हे प्रिय! तुम यहाँ से भागो। हे पुत्र! तू यहाँ से भाग। इस प्रकार लोग अपने सम्बन्ध के अनुसार जीवन बचाने के लिए एक-दूसरे से कह रहे थे। उनमें इतनी विकलता थी कि सभी कह रहे थे कि हे रावण! हमारी कितनी बुरी दशा हो रही है। अब तू हमारी ऐसी शोचनीय दशा को अपने बीस नेत्रों से देख ले। यहाँ कहने का आशय यह है कि तूने गर्हित कार्य किया है जिसका परिणाम हमें भोगना पड़ रहा है। श्रीरामजी से विरोध करना सभी के लिए इतना मंहगा पड़ गया है।

विशेष–

(1) लंका में फैली हुई अग्नि की भीषणता एवं तज्जन्य धुएँ से धुंधले वातावरण का चित्रण उपस्थित किया गया है।

(2) यहाँ लंका-निवासियों की व्याकुलता को अभिव्यक्त किया गया है। उनका चीत्कार एवं व्यग्रता का निरूपित किया गया है।

(3) प्रकारांतर से यहाँ यह व्यक्त किया गया है। कि रावण ने जो भी कार्य किया उसका परिणाम जनता को भोगना पड़ रहा है।

(4) यहाँ भयानक रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(5) **अलंकार–**स्वभावोक्ति।

बीथिका बाजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति, वानर बिलोकिए।
अध ऊर्ध्व बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रहो है भरि बानर तिलोकिए।
मूंदे आँखि होय में, उधारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोऊ को किए।
'लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखायो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए, ॥ 17 ॥

शब्दार्थ–बीथिका = गली। **अटनि** = अट्टालिकाएं, अटारियाँ। **अगार** = अगार, घर। **पंवरि** = देहरी। **पगार** = दीवार। **अध** = नीचे। **ऊर्ध्व** = ऊपर। **बिदिसि दिसि** = दिशाओं-विदिशाओं में। हीय = हृदय। **उधारे** = खोलने पर। **धाइ** = दौड़कर। **सोइ** = वही।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में तुलसीदासजी ने लंका-निवासियों में व्याप्त हनुमान-विषयक आतंक का वर्णन किया है।

व्याख्या–लंका के निवासियों के हृदय में वानर हनुमान का आतंक समधिक रूप से व्याप्त हो गया था जिसके परिणामस्वरूप उन्हें सर्वत्र वानर के ही दर्शन होते थे। उन्हें वीथिकाओं में, बाजारों, अट्टालिकाओं पर, घर में, पौरियों में, देहरियों पर, दीवारों पर वानर के अतिरिक्त कुछ दिखलाई नहीं देता था। यहाँ तक कि अधोभाग में, ऊर्ध्व भाग में, दिशा-विदिशाओं में वानर के सिवाय कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था मानो वह वानर तीनों लोकों में व्याप्त हो गया था। यदि वे अपने नेत्रों को बंदकर लेते तो उन्हें अपने हृदय में वानर का स्वरूप दिखलाई देता था और नेत्रों को खोलने पर वानर सम्मुख ही खड़ा दिखलाई देता था। वे जीवन रक्षार्थ जहाँ भागने का प्रयत्न करते थे, वहां पर भी वानर ही दिखलाई देता था। उनके हृदय में उस वानर के प्रति इतना त्रास व्याप्त हो यगा था। वे कहने लगे कि हमने कितनी बार समझाया कि इस वानर को छेड़ना ठीक नहीं है किन्तु हमने जिसको भी यह सीख दी–किसी ने हमारी बात पर ध्यान नहीं दिया, अब लो, इसका कुपरिणाम तो अब हम सभी को भोगना पड़ेगा। हम जिसे भी कुछ समझाते-बुझाते, वानर को छेड़ने से मना करते तब तो वही हमारी बात का बुरा मानता था।

नोट

विशेष–

(1) लंका-निवासियों की त्रासद अवस्था का सशक्त एवं सजीव वर्णन हुआ है।

(2) लंका-निवासियों में वानर हनुमान का आतंक इतना अधिक छा गया है कि उन्हें सर्वत्र वानर ही दिखाई दे रहा है।

(3) यहां भयानक रस की अवतारणा हुई है।

(4) **अलंकार–**अनुप्रास।

एक करै धौज, एक कहै काढ़ौ सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहै, 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखत है ठाढ़े, कहैं, 'पावक भयावनो'।
'तुलसी' कहत एक 'नीके हाथ लाए कपि,
अजहूं न छाँड़ै बाल गाल को बजावनौ।
धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो' ॥ 18 ॥

शब्दार्थ–धौज = भगदड़। **काढ़ौ** = निकालो। **सौज** = सामान, सामग्री। **औजि** = गर्मी, भभक। **बनत न आबनो** = आना संभव नहीं हो पा रहा है। **डाढ़त** = दग्ध होते हुए, जलते हुए। **पावक** = अग्नि। **भयावनो** = भयंकर। **नीके हाथ लाए** = अच्छे मुहूर्त में (वानर को) लाए। **गाल को बजावनी** = गाल बजाना (कोरी शेखी बघरना–मुहावरा)। **धाओ** = दौड़ो। **सिंधु** = सागर। **सावनो** = श्रावण मास की वर्षा।

प्रसंग–तुलसीदासजी ने लंका-दहन-जन्य दशा का चित्रण किया है।

व्याख्या–लंका नगरी चारों ओर से आग की लपटों से पूरी तरह से घिरी हुई थी। वहाँ के रहने वाले समस्त राक्षस उस भीषण अग्नि को बुझाने में प्रयत्नशील थे। वहां उस समय कोई भाग रहा था तो दूसरा सामान को घर से बाहर निकालने के लिए कह रहा था। कोई वहाँ फैली हुई अग्नि की भभक से बेचैन होकर पानी पीते हुए कह रहा था कि उसका आग की लपटों से घिरे होने के कारण दूसरी और अर्थात् सुरक्षित स्थान में आना संभव नहीं हो रहा है। कोई कह रहा था कि हम तो भारी मुसीबत में फंस गये हैं–अब यहाँ से निकलना दूभर हो गया है। कोई किसी को आग में जलते हुए को देखकर उसे बाहर निकाल रहा है। कुछ लोग वहाँ पर खड़े हुए कह रहे थे कि आग बहुत भयंकर है। कुछ लोग विचार व्यक्त कर रहे थे कि इस वानर ने सर्वत्र आग लगाकर हमें विपदा में डाल दिया है–इस वानर को अच्छे मुहूर्त में बाँधकर लाए। इसने तो हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा है। हम सभी को यह महान् कष्ट सहना पड़ रहा है। आज भी ये लोग बालकों के समान कोरी शेखी बघार रहे हैं क्योंकि इस वानर का ये लोग कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। कुछ लोग कह रहे थे कि अरे! दौड़ो, इस अग्नि को बुझाओ। इसे सुनकर कुछ लोग कहने लगे कि अरे! तुम सब पागल हो गए हो, यह अग्नि साधारण अग्नि नहीं है जिसे सुगमतापूर्वक बुझाया जा सके। यह अग्नि तो बहुत ही भीषण है। इस अग्नि को तो बुझाने में सागर और श्रावण मास की मूसलाधार वर्षा भी बुझाने में समर्थ नहीं है।

विशेष–

(1) यहाँ लंका-निवासियों को अग्नि-शमन-विषयक प्रयत्नों में तत्पर प्रदर्शित किया गया है। स्वाभाविकता वर्णन की विशेषता है।

(2) लंका नगरी में व्याप्त आपाधापी का चित्रण किया गया है।

(3) लंका में व्याप्त अग्नि की अलौकिकता को संकेत रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

नोट

(4) यहाँ मुहावरों का प्रयोग विशेषत: प्रेक्षणीय है।

(5) 'नीके हाथ लाए कपि'–इसमें निहित व्यंग्य ध्यान देने योग्य है।

(6) यहाँ 'ओज' नामक गुण की झलक दर्शनीय है।

(7) **अलंकार**–अनुप्रास एवं व्यंग्योक्ति।

2.2 अभ्यास प्रश्न

1. बालकाण्ड के आधार पर राम के बाल रूप का वर्णन कीजिए।
2. हनुमान के भक्त रूप पर प्रकाश डालिए।
3. राम-सीता के स्वयंवर की घटना का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. (ख) **2.** (क) **3.** (क) **4.** (ग)

2.3 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *कवितावली*– गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।

नोट

इकाई–3: कवितावली– मुख्य उद्देश्य

अनुक्रमणिका

उद्देश्य
प्रस्तावना
3.1 कवितावली– मुख्य उद्देश्य
3.2 सारांश
3.3 शब्दकोश
3.4 अभ्यास-प्रश्न
3.5 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे।

- तुलसी रचित कवितावली की रचना के उद्देश्य से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

साहित्य ही क्या, जीवन का प्रत्येक कार्य सोद्देश्य होता है। मनुष्य जो कुछ भी करता है किसी उद्देश्य को लेकर करता है। ठीक इसी प्रकार कवि अथवा लेखक जो कुछ भी लिखता है, उसका एक निश्चित और सुस्पष्ट उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य कुछ भी हो सकता है–यहां तक कि केवल मनोरंजन करना भी किसी कविता, कहानी, नाटक–विशेष का उद्देश्य हो सकता है। मूल बात यह है कि प्रत्येक साहित्यिक कृति किसी न किसी उद्देश्य से प्रेरित होती हैं इस उद्देश्य की पहचान कैसे हो? इसके दो ही साधन हैं, या तो लेखक स्वयं अपने उद्देश्य को व्यक्त करे या फिर पाठक उस उद्देश्य की पकड़ करे। पहली संभावना तो प्रायः कहीं नहीं दीखती। कोई भी कवि अथवा लेखक अपनी किसी भी रचना के उद्देश्य को स्पष्ट नहीं करता, यह कार्य प्रायः प्रबुद्ध पाठक को ही करना होता है। किसी भी साहित्यिक कृति के उद्देश्य की सम्यक् पहचान के लिए उसके प्रतिपाद्य का सूक्ष्म विश्लेषण आवश्यक है।

3.1 कवितावली– मुख्य उद्देश्य

जहां तक कवितावली के उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व यह स्पष्टतः समझ लिया जाना चाहिए कि कवि तुलसी मूलतः एक भक्ति कवि थे। उनके जीवन और साहित्य की समूची साधना एक ही उद्देश्य को से प्रेरित रही है और वह उद्देश्य है–अपने आराध्य श्रीराम की स्तुति करना, उनके शील-शक्ति-सौन्दर्य की महिमा का प्रतिपादन करना, उनकी कृपालुता, भाक्तवत्सलता का वर्णन करना, उनके रक्षक रूप के प्रति अटूट विश्वास व्यक्त करना आदि-आदि। कवितावली की रचना भाटों की शैली में हुई है अतः इसके पद मुख्यतः गाए जाने के लिए रचे गए होंगे। कवि ने कवितावली में श्राम और उनके सम्बन्धियों, अनुचरों आदि के गुणों का वर्णन किया है। ऐसा करने के लिए उन्होंने इन सबसे जुड़ी विभिन्न घटनाओं का वर्णन भी किया है। कवि की मूल

नोट

स्थापना यह रही है कि उसके आराध्य श्रीराम ईश्वर के अवतार हैं। कवितावली के अयोध्याकाण्ड में गंगा-तट पर खड़े हुए श्रीराम गंगा पार करने की योजना बना रहे हैं। उस समय श्रीराम के प्रति कही गई निम्न उक्ति से स्पष्ट है कि वे भगवान् विष्णु के अवतार हैं–

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूढ़त काढ़े।

जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कल होत अजाखुर वारिधि बाढ़े।

तुलसी जेहि पद पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अधु गाढ़े।

सो प्रभु स्वै सरिता कहं मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े।।

यह उल्लेख्य है कि अजामिल का उद्धार स्वयं भगवान् विष्णु ने किया था। और इसी प्रकार पार्वती का जन्म भी विष्णु के नखाग्र से ही बताया जाता है। इन दोनों प्रसंगों के वर्णन से कवि वस्तुतः श्रीराम के ईश्वरत्व की सिद्धि करना चाहता है। इसी प्रकार कवितावली का निम्न पद देखिए जिसमें कवि ने वाल्मीकि, गज, गणिका, अजामिल जैसे सिद्ध पापियों और श्रीराम द्वारा उनके उद्धार किए जाने के प्रसंगों का सजीव वर्णन किया है। ये सारे प्रसंग वस्तुतः श्रीराम के दिव्य रूप की ही प्रतिष्ठा करते हैं और साथ ही यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्रीराम वस्तुतः ईश्वर के ही अवतार हैं। देखिए–

रामु विहाइ 'मरा' जपतें बिगरी सुधरी कविकोकिल हू की।

नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चलचू की।।

नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु वधू की।

ताको भलो अजहूं 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की।

उत्तरकाण्ड में कवि ने अनेक स्थलों पर श्रीराम की कृपालुता, रामप्रेम, रामनाम-विश्वास, रामनाम की महिमा का वर्णन किया है। इस प्रकार के सभी वर्णनों से राम की महत्ता सिद्ध की गई है। इसी प्रकार कवि ने चित्रकूट, सीतावट, तीर्थराज सुषमा आदि का भी सजीव चित्रण किया है; क्योंकि ये सभी स्थान उसके आराध्य श्रीराम से जुड़े हुए हैं। जब भक्त अपने आराध्य की भक्ति में डूब जाता है तो उसे चारों ओर उसी आराध्य का प्रसार दीखता है। आराध्य ही नहीं, उससे सम्बद्ध वस्तुएं, स्थान, व्यक्ति सभी आकर्षक लगते हैं।

टास्क श्रीराम को तुलसीदास ने किसका अवतार माना है?

तुलसी का मन निर्गुण-निराकार ब्रह्म के प्रति आकृष्ट नहीं होता। कवितावली ही नहीं, अपितु अपनी समूची साहित्यिक साधना के सहारे तुलसी ने निर्गुण ब्रह्म की तुलना में सगुण ब्रह्म अथ्रात् श्रीराम की श्रेष्ठता सिद्ध की है। उनका विश्वास है कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना शुष्क ज्ञान का विषय है। भक्ति का आधार प्रीति है जोकि मूलतः हृदय का विषय है। आचार्य शुक्ल ने भक्ति को श्रद्धा और प्रीति के योग के रूप में समझाया है। इन दोनों के लिए प्रभु का साकार होना आवश्यक है। निराकार ब्रह्म से प्रीति कैसे हो सकती है? तुलसी ने कहा है कि–

अंतर जामिहुतें बड़े बाहेर जामि हैं रामु, जे नाम लिये तैं।

धावत धेनु पेन्हाइलवाइ ज्यो बालक बोलनि कान किये तैं।

नोट

आपनि बूझि कहै तुलसी कहिबे की न बाबरि बात बियेतैं।

पैज परें प्रह्लादहुको प्रगटु प्रभु पाहन तैं, न हिये तैं ॥

यदि श्रीराम वस्तुत: निराकार होते तो अजामिल, गज, गणिका, आदि का उद्धार कैसे होता। श्रीराम तो अपने भक्तों पर सदैव कृपालु रहते हैं। भक्त की पुकार सुनकर प्रभु को अपनी खड़ाऊं तक का भी ध्यान नहीं रहता और वे अविलम्ब सहायता के लिए दौड़ आते हैं। भक्त प्रह्लाद की कठिन घड़ियों में यही प्रभु नृसिंह के रूप में अवतरित हुए थे। जब ग्राह ने गज को ग्रस लिया तो उन्होंने दौड़कर उसकी रक्षा की थी। तुलसी ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है–

प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा, प्रकटे नरके हरि खंभ महां।

ऋषराज ग्रष्यो गजराज, स्त्रपा ततकाल, विलंबु कियो न तहा।

सूर साखि दै राखि है पांडु वधू, पट लूटत कोटिक भूप जहां।

तुलसी भजु सोच विमोचन को, जन को पनु राम न राख्यौ कहां।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही [✓] अथवा गलत [X] का निशान लगाइए–

1. महाकवि तुलसी अवधी भाषा-क्षेत्र से संबंध रखते थे। ☐
2. राम शिव के अवतार थे। ☐
3. तुलसी ने राम के सगुण रूप को ही उपयुक्त माना है। ☐
4. दशरथ पुत्र राम एक राजा मात्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ☐
5. राम शिव के उपासक हैं। ☐

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवितावली के कवि का मूल उद्देश्य अपने आराध्य श्रीराम के ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करना है किन्तु यह स्मणीय है कि तुलसी ने उनके सगुण रूप की ही वन्दना की है। यद्यपि 'मानस' में उन्होंने राम के निर्गुण रूप का भी विवेचन किया है किन्तु कवितावली में राम के केवल सगुण रूप का वर्णन हुआ है। भक्ति के मार्ग के लिए प्रभु का सगुण रूप ही उपयुक्त है। अजामिल, गज, गणिका आदि के उद्धार की कथाओं का वर्णन करके कवि ने अपने इसी आराध्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

3.2 सारांश

कवितावली के उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व यह स्पष्टत: समझ लिया जाना चाहिए कि कवि तुलसी मूलत: एक भक्ति कवि थे। उनके जीवन और साहित्य की समूची साधना एक ही उद्देश्य को से प्रेरित रही है और वह उद्देश्य है–अपने आराध्य श्रीराम की स्तुति करना, उनके शील-शक्ति-सौन्दर्य की महिमा का प्रतिपादन करना, उनकी कृपालुता, भाक्तवत्सलता का वर्णन करना, उनके रक्षक रूप के प्रति अटूट विश्वास व्यक्त करना आदि-आदि। कवितावली की रचना भाटों की शैली में हुई है अत: इसके पद मुख्यत: गाए जाने के लिए रचे गए होंगे। कवि ने कवितावली में श्राराम और उनके सम्बन्धियों, अनुचरों आदि के गुणों का वर्णन किया है। ऐसा करने के लिए उन्होंने इन सबसे जुड़ी विभिन्न घटनाओं का वर्णन भी किया है। कवि की मूल स्थापना यह रही है कि उसके आराध्य श्रीराम ईश्वर के अवतार हैं।

नोट

उत्तरकाण्ड में कवि ने अनेक स्थलों पर श्रीराम की कृपालुता, रामप्रेम, रामनाम-विश्वास, रामनाम की महिमा का वर्णन किया है। इस प्रकार के सभी वर्णनों से राम की महत्ता सिद्ध की गई है। इसी प्रकार कवि ने चित्रकूट, सीतावट, तीर्थराज सुषमा आदि का भी सजीव चित्रण किया है; क्योंकि ये सभी स्थान उसके आराध्य श्रीराम से जुड़े हुए हैं। जब भक्त अपने आराध्य की भक्ति में डूब जाता है तो उसे चारों ओर उसी आराध्य का प्रसार दीखता है। आराध्य ही नहीं, उससे सम्बद्ध वस्तुएं, स्थान, व्यक्ति सभी आकर्षक लगते हैं।

तुलसी का मन निर्गुण-निराकार ब्रह्म के प्रति आकृष्ट नहीं होता। कवितावली ही नहीं, अपितु अपनी समूची साहित्यिक साधना के सहारे तुलसी ने निर्गुण ब्रह्म की तुलना में सगुण ब्रह्म अथ्रात् श्रीराम की श्रेष्ठता सिद्ध की है। उनका विश्वास है कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना शुष्क ज्ञान का विषय है। भक्ति का आधार प्रीति है जोकि मूलतः हृदय का विषय है।

3.3 शब्दकोश

1. नखाग्र– नाखुन का अग्रभाग
2. ग्राह– मगरमच्छ, सूर्य-चंद्रमा को लगने वाला ग्रहण
3. गणिका– वेश्या, चरित्रहीन स्त्री

3.4 अभ्यास-प्रश्न

1. कवितावली की रचना का उद्देश्य समझाइए
2. कवितावली में वर्णित राम के ईश्वर रूप की चर्चा कीजिए।

उत्तरः स्व-मूल्यांकन

1. ☑ 2. ☒ 3. ☑ 4. ☒ 5. ☑

3.5 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *कवितावली*– गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. *गोस्वामी तुलसीदास*– रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली।

नोट

इकाई–4: कवितावली– भाषा-शैली

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

4.1 कवितावली– भाषा-शैली

4.2 सारांश

4.3 शब्दकोश

4.4 अभ्यास-प्रश्न

4.5 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे।

- तुलसी रचित कवितावली की भाषा-शैली से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

तुलसी युग के काव्य में दो ही भाषाओं का प्रचलन था। ब्रज और अवधी। इन दोनों भाषाओं में भी काव्य में अधिकतर ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया जा रहा था और अवधी का प्रयोग मुख्यत: प्रेमाख्यानों की रचना में लगे हुए प्रेममार्गी कवि ही कर रहे थे। ब्रजभाषा के प्रति तत्कालीन कवियों के अधिक झुकाव का कारण यही था कि इन दोनों भाषाओं में ब्रजभाषा में अपेक्षतया अधिक माधुर्य और लालित्य है। यही कारण है कि ब्रजभाषी प्रान्तों के कवियों ने भी ब्रजभाषा में ही काव्य-सृजन किया।

4.1 कवितावली– भाषा-शैली

तुलसी अपने युग के नहीं अपितु समूचे हिन्दी साहित्य के एक महान कवि रहे हैं। असाधारण कवि-प्रतिभा के धनी होने के कारण उन्होंने ब्रज तथा अवधी-दोनों भाषाओं में काव्य-सृजन किया। यही नहीं, तुलसी ने अवधी को समुचित रूप से परिमार्जित करके उसे साहित्यिक भाषा का गौरव भी प्रदान किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुलसी के समय में अवधी भाषा साहित्य अथवा काव्य की भाषा ही नहीं थी। अवधी का प्रयोग मुख्यत: प्रेमाख्यान कविगण कर रहे थे किन्तु तुलसी ने अवधी को समुन्नत और परिमार्जित करके उसमें और भी अधिक माधुर्य की सृष्टि कर दी। तुलसी-साहित्य के गौरवग्रन्थ अर्थात् रामचरितमानस की रचना अवधी-भाषा में ही हुई है। श्रीरामचरितमानस के अतिरिक्त बरवै-रामायण, रामललानहछू, जानकी-मंगल की रचना भी अवधी में ही हुई है। विनयपत्रिका, गीतावली और कवितावली में कवि ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार महाकवि तुलसी ने अपनी रचनाओं में अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का साधिकार रूप से प्रयोग किया है। वस्तुत: ब्रजभाषा के अन्तर्निहित माधुर्य और लालित्य ने ही तुलसी सरीखे महान् कवि को अपनी ओर आकृष्ट किया होगा। कदाचित् इसी कारण ब्रजभाषा का प्रयोग उस युग में भी प्रचुर मात्रा में हुआ जबकि काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली

नोट

का रूप स्थिर हो चुका था। एक विद्वान आलोचक ने इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा है कि "बहुत से खड़ी बोली के प्रशंसकों ने राधिका-कन्हाई की भाषा को काव्य-भाषा के पद से अपदस्थ करने का भगीरथ प्रयत्न किया है और नए युग की नई भाषा खड़ी बोली का स्वागत करने में अपूर्व उत्साह दिखलाया है परन्तु फिर भी राधा-माधव के केलि-करील कुंजों और तमाल तरुओं में आकर ही उनके मन शांति ग्रहण करते हैं और एक घड़ी विराम पाकर ही हरे-भरे होते दीखते हैं।"

क्या आप जानते हैं तुलसी ने जनभाषा अवधि को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और अवधी में श्रीरामचरित मानस की रचना की। किंतु कवितावली की रचना ब्रजभाषा में की।

कवितावली में तुलसी ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कवितावली में ब्रजभाषा को छोड़ अन्य किसी भी भाषा का प्रयोग हुआ ही नहीं है। कवितावली की भाषा के सूक्ष्म विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने कवितावली में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, राजस्थानी, बंगला, गुजराती, मराठी और यहां तक कि तुर्की अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं का भी प्रयोग किया है। किसी भी काव्यकृति के भाषागत विश्लेषण की भी प्रमुख कसौटी यही होती है कि कवि अपनी बात को कितने प्रभावोत्पादक ढंग से शब्दबद्ध कर पाया है। इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते कि भाषा भावों की अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है, वह साध्य कभी नहीं हो सकती। कवितावली का भाषागत विश्लेषण करते समय भी यही कसौटी दृष्टिगत रखी गई है।

कवितावली में कवि ने ब्रजभाषा के निखरे रूप का ही प्रयोग किया है और साथ ही इसे संस्कृतगर्भित होने से भी बचा लिया है। यही कारण है कि विनयपत्रिका और गीतावली की तुलना में कवितावली की भाषा अधिक बोधगम्य और प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। तुलसी संस्कृत के महान् पंडित थे अत: स्वभावत: उन्होंने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं का पर्याप्त संस्कार किया था। इस पर भी कवि ने ब्रजभाषा के लालित्य और माधुर्य को खंडित नहीं होने दिया है, अपितु उसे और अधिक उत्कर्ष ही प्रदान किया है। कवितावली की ब्रजभाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, ब्रजभाषा की प्रवृत्ति का आद्योपान्त निर्वाह हुआ है। उदाहरण के लिए 'होना' क्रिया लीजिए, जिसके लिए ब्रजभाषा में भया या भयो अथवा हुतो, हुते आदि का प्रयोग किया जाता है। कवितावली के निम्न पद से रेखांकित शब्द इसी तथ्य के परिचायक हैं–

नोट्स कवितावली की ब्रजभाषा की कुछ अपनी विशिष्टताएं हैं–पहली तो यह कि वह गीतावली और विनयपत्रिका की भाषा की तरह संस्कृतगर्भित नहीं है। तुलसी ने अवधी की भांति ही ब्रजभाषा का भी परिमार्जन किया था और उसके समुन्नत एवं संस्कृतनिष्ठ रूप के दर्शन विनयपत्रिका और गीतावली में सहज ही हो जाते हैं।

सेवक एकतें एक अनेक भए तुलसी तिहुं ताप न डाढ़े।
स्वारथ को परमारथ को परिपूरन भो फिरि घाटि न होसों।।
संग सुभामिनि भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।

नोट

इसी प्रकार ब्रजभाषा की एक अन्य प्रवृत्ति यह है कि बहुवचन बनाते समय शब्द के अन्त में 'न' जोड़ा जाता है जैसे देव से देवन, कपि से कपिन, लोकपाल से लोकपालन, कपूत से कपूतन, प्रान से प्रानन आदि। इस दृष्टि से कवितावली की निम्न पंक्तियों में रेखांकित शब्द दृष्टव्य हैं–

सैनको कपिन को गनै, अर्बुदै,
महाबल और हनुमान जानी।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै
... ...
कायर कूर कपूतन की हद, तेउ गरीबने बाजने बाजे
देऊ तौ दयानिकेत देत दादि दीनन की।
ईसन के ईस, महाराजन के महाराज।
देवन के देव, देव ! प्रानन के प्रान हौ॥

कवितावली में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी भाषा का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। इसका स्पष्ट कारण यह है तुलसी के जीवन का अधिकांश भाग अवध प्रदेश में बीता था अत: स्वभावत: अवधी-भाषा के प्रति भी उनके मन में बहुत आकर्षण रहा होगा जिसका सर्वाधिक सशक्त प्रमाण यह है कि उन्होंने अपने एकमात्र महाकाव्य अर्थात् रामचरितमानस की रचना अवधी-भाषा में ही की है। कवितावली में भी अवधी का निखरा हुआ रूप ही दीखता है जोकि संस्कृत से प्रभावित होते हुए भी संस्कृतनिष्ठ नहीं है। कवितावली में अवधी का प्रयोग करते हुए तुलसी की प्रवृत्ति क्लिष्ट और संस्कृनिष्ठ शब्दों के स्थान पर सरल और बोधगम्य शब्दों के प्रयोग की ओर अधिक रही है। तथापि अवधी भाषा की मूल प्रवृत्ति का निर्वाह बराबर हुआ है। जैसे–अवधी में 'मैं' के लिए मांह, मांहीं, मंह आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टि से कवितावली की निम्न पंक्तियों में रेखांकित दृष्टव्य हैं–

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दूलही सिय सुन्दर मन्दिर मांही।
मन मो न बस्यौ अस बालकु जौं, तुलसी जग में फलु कौन जिएं।
कौसिक, विप्रवधू, मिथिलाधिप के सब सोच दले फल मांहें।
प्रभु सत्य करी प्रह्लाद-गिरा प्रकटे नर के हरि खंभ महां।

इसी प्रकार अवधी में बहुवचन बनाने के लिए शब्द के अन्त में 'न्ह' जोड़ा जाता है। कवितावली का रेखांकित शब्द देखिए–

काल कृपाल नृपालन्ह के धनु भंगु सफर सुनै फरसा लिएं धाए।

इसी प्रकार अवधी की उकारान्त प्रवृत्ति भी कवितावली में यत्र-तत्र दीखती है

राम कोठु पावकु समीरु सीम स्वासु कीसु।
ईस बामता बिलोकु बानर को व्याजु है॥

कवितावली की भाषा में ब्रज, अवधि के अतिरिक्त भी कई प्रान्तीय एवं विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए भोजपुरी भाषा के रेखांकित शब्द देखिए–

रावरौ कहावौं गुन गावौं राम रावरोई
रोटी द्वै हौं पावौ राम रावरी ही कानि हौं॥
तुलसी के ईस राम रावरो सों सांची कहौं।
भारी भारी राउरे के चाउर से कांडिगो।

नोट

कहीं-कहीं डिंगल भाषा का सुस्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। निम्न पंक्तियां देखिए–

डिगति उर्बि, अति गुर्बि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
दिग्गयंद लरखरत, परत बसकंठ मुखभर।

कतिपय अन्य भाषाओं के शब्दों के उदाहरण निम्नानुसार हैं–

बुन्देली–की बी, भांड जाना (घूम-घूम कर देखना) उजार्यों, बिगार्यो।

राजस्थानी–म्हाको।

बंगला–सकारे, संजोना आदि।

गुजराती–दरिया, सूकना (छोड़ना)।

मराठी–फोकट।

तुर्की–बैरख (झण्डा)।

अरबी–कहरी, गुलाम, हराम, हुबाब (पानी का बुलबुला)।

कवितावली के भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा-प्रयोग के प्रति तुलसी का दृष्टिकोण आद्योपान्त उदार रहा है। यही कारण है कि उन्होंने प्रसंग और वर्ण्य भाव के अनुरूप भाषा का ही प्रयोग किया है। कवितावली की भाषा के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात उसकी भावानुकूलता है। कवि ने जहां एक ओर कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए माधुर्य एवं प्रसाद गुणों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है वहां दूसरी ओर कठोर एवं पुरुष भावों की अभिव्यक्ति के लिए ओजगुण से युक्त भाषा का प्रयोग किया है। कोमल भावों से आशय श्रृंगार, वात्सल्य आदि रसों की व्यंजना से है। वात्सल्य भाव की व्यंजना देखिए–

वरदंत की पंगति कुदकली अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै, छवि मोतिन माल अमोलन की।
घुंघरारि लटें लटकें मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करे तुलसी, बलि जाउं लला इन बोलन की।

इसी प्रकार श्रृंगार-रस से ओतप्रोत एक चित्र देखिए–

राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए–

1. कवितावली की भाषा है–

   (क) ब्रज (ख) अवधी (ग) मैथिली

2. शब्द उजार्यों, बिगार्यों किस भाषा से संबंधित है–

   (क) अवधी (ख) राजस्थानी (ग) बुंदेली

3. तुलसी रचित श्रीरामचरित मानस की भाषा है–

   (क) राजस्थानी (ख) भोजपुरी (ग) अवधी

नोट

4. अवधी में बहुवचन बनाने के लिए शब्द के अंत में जोड़ा जाता है–

(क) हिं (ख) न्ह (ग) न्

पुरुष और कठोर भावों जैसे वीर, भयानक, वीभत्स और रौद्र रसों की व्यंजना के लिए कवि ने अत्यन्त ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए भयानक रस की सफल व्यंजना करने वाली निम्न पंक्तियां देखिए–

लपट झपट भहराने हहराने वात
भहराने भट परयो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि
नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो।

इसी प्रकार वीर रस का निम्न उदाहरण देखिए–

कतहूं विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खन।
चख चोट चटकन चकोट अरि उर सिर वज्जत।
विकटं कटक विछरत वीर बारि जिमि गज्जत।

उपर्युक्त पंक्तियों में डिंगल भाषा का सुस्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

कवितावली की भाषा में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए कवि ने प्रसंगानुसार लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सफल प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगों के कतिपय उदाहरण देखिए–

तुलसी कहत एक नीकें हाथ लाए कपि
अजहूं न छाड़ै बालु गाल को बजावनो।

... ...

कौसिला की कोखि पर, तोखि तन बारिए री,
राय दसरत्थ की, बलैया लीजै आलि री।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि तुलसीकृत कवितावली में मुख्यत: ब्रजभाषा और गौणत: अवधी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग किया गया है। कवि ने भाषा की प्रेषणीयता एवं सरलता के लक्ष्य को ही अपने समक्ष रखा है जिसके कारण कवितावली की भाषा में भावानुकूलता, सहजता और प्रवाहमयता बनी रही है। विनयपत्रिका तथा मानस में कहीं-कहीं जिस संस्कृतगर्भित शब्दावली के दर्शन होते हैं, कवितावली की भाषा में उसका अभाव-सा ही है। कवितावली की भाषा आद्योपान्त सरल, स्वाभाविक और भावानुरूप बन पड़ी है।

4.2 सारांश

तुलसी अपने युग के नहीं अपितु समूचे हिन्दी साहित्य के एक महान कवि रहे हैं। असाधारण कवि-प्रतिभा के धनी होने के कारण उन्होंने ब्रज तथा अवधी-दोनों भाषाओं में काव्य-सृजन किया। यही नहीं, तुलसी ने अवधी को समुचित रूप से परिमार्जित करके उसे साहित्यिक भाषा का गौरव भी प्रदान किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुलसी के समय में अवधी भाषा साहित्य अथवा काव्य की भाषा ही नहीं थी। अवधी का प्रयोग मुख्यत: प्रेमाख्यान कविगण कर रहे थे किन्तु तुलसी ने अवधी को समुन्नत और परिमार्जित करके उसमें और भी अधिक माधुर्य की सृष्टि कर दी। तुलसी-साहित्य के गौरवग्रन्थ अर्थात् रामचरितमानस की रचना अवधी-भाषा में ही हुई है। श्रीरामचरितमानस के अतिरिक्त बरवै-रामायण, रामललानहछू, जानकी-मंगल की रचना भी अवधी में ही हुई है। विनयपत्रिका, गीतावली और कवितावली में कवि ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार महाकवि तुलसी ने अपनी रचनाओं में अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का साधिकार रूप से प्रयोग किया है।

नोट

कवितावली में तुलसी ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कवितावली में ब्रजभाषा को छोड़ अन्य किसी भी भाषा का प्रयोग हुआ ही नहीं है। कवितावली की भाषा के सूक्ष्म विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने कवितावली में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, राजस्थानी, बंगला, गुजराती, मराठी और यहां तक कि तुर्की अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं का भी प्रयोग किया है।

कवितावली में कवि ने ब्रजभाषा के निखरे रूप का ही प्रयोग किया है और साथ ही इसे संस्कृतगर्भित होने से भी बचा लिया है। यही कारण है कि विनयपत्रिका और गीतावली की तुलना में कवितावली की भाषा अधिक बोधगम्य और प्रभावोत्पादक बन पड़ी है।

4.3 शब्दकोश

1. **परिमार्जन–** साहित्यिक त्रुटियों को दूर करना
2. **आद्योपांत–** आदि से अंत तक
3. **ओज–** साहित्य में शैली आदि की विशेषता जिसमें, मन में आवेश एवं साहस का संचार होने लगे, प्रकाश, बल, शक्ति, तेज।

4.4 अभ्यास-प्रश्न

1. कवितावली की भाषा पर विचार कीजिए।

उत्तरः स्व-मूल्यांकन

1. (क) 2. (ग) 3. (ग) 4. (ख)

4.5 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *कवितावली–* गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. *गोस्वामी तुलसीदास–* रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली।

इकाई–5: मीरांबाई का जीवन-परिचय एवं रचनाएँ

नोट

अनुक्रमणिका

उद्देश्य
प्रस्तावना
5.1 मीरांबाई का जीवन-परिचय एवं व्यक्तिगत विशेषताएँ
5.2 मीरांबाई की रचनाएँ
5.3 सारांश
5.4 शब्दकोश
5.5 अभ्यास-प्रश्न
5.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे।

- मीरांबाई के जीवन-परिचय एवं उनकी रचनाओं से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

मीरांबाई के सम्बन्ध में बाह्य एवं अन्त:साक्ष्य उतना मौन अथवा अनिश्चित नहीं, जितना अन्य मध्ययुगीन महाकवियों के सम्बन्ध में है। उनके स्वरचित विधि पद उनके जीवन पर पड़नेवाले विभिन्न प्रभावों तथाा उनके अन्य परिणामों के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। उनके भक्ति-पदों की सर्वजनमनोहारिणी रसवत्ता ने उन्हें अल्पकाल में ही इतना लोकप्रिय बना दिया कि विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न वर्गों के सन्तों, भक्तों, कवियों तथा रचनाकारों ने अपनी कृतियों में उनकी चर्चा कई रूपों में की है। विभिन्न भक्तमालों एवं वार्त्ता-ग्रन्थों में भी मीरा संबंधी अनेक साक्ष्य प्राप्त हैं। राजपूताना के कतिपय प्रशस्तिपत्रों, अभिलेखों, दानपत्रों और कुछ प्राचीन चित्रों में भी उनके जीवन से संबंधित कई तथ्य उपलब्ध हैं। उनकी जन्म-तिथि के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, जिसका अंतराल 1403 ई. से 1516 ई. तक फैला हुआ है। किंतु नवीन अनुसंधानों और देर से प्राप्त कतिपय अकाट्य प्राचीन प्रमाणों के आधार पर अब यह प्राय: निश्चित है कि उनकस जन्म 1504 ई. में और मृत्यु 1558 से 15563 ई. के मध्य हुई।

5.1 मीरांबाई का जीवन-परिचय एवं व्यक्तिगत विशेषताएँ

वस्तुत: मीरांबाई की जन्मतिथि विषयक विभिन्न मतों का आधार मीरांबाई के जीवन सम्बन्धी विभिन्न जनश्रुतियाँ रही हैं। अत: मीरा के जन्मतिथि विषयक विवाद पर कोई भी तर्कपूर्ण निर्णय लेने से पहले इन जनश्रुतियों की इतिहास के परिप्रेक्ष्य में परीक्षा करनी होगी। मुख्य जनश्रुतियाँ इस प्रकार हैं–

(क) मीरांबाई राणा कुम्भा की महारानी थीं।

(ख) मीरांबाई प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति की समकालीन थीं।

नोट

(ग) मीरांबाई राठौर सरदार जयमल की पुत्री थीं।

(घ) मीरांबाई और तुलसी के मध्य पत्र-व्यवहार हुआ था।

(ङ) मीरांबाई से अकबर और तानसेन की भेंट।

इन जनश्रुतियों की परीक्षा करने पर ही मीरांबाई की सही जन्मतिथि निर्धारित की जा सकती है। इनके सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों तथा विद्वानों के विचार निम्नानुसार हैं–

(क) मीरांबाई राणा कुम्भा की महारानी थीं–इस जनश्रुति के अनुसार मीरांबाई महाराणा कुम्भा (सन् 1468) की महारानी थीं। इस मत की स्थापना राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने की थी। अपने मत की पुष्टि में कर्नल साहब के पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। वस्तुत: उन्होंने चित्तौड़ में महाराणा कुम्भा के शिवालय के निकट ही मीरांबाई का मन्दिर देखा था और मात्र इसी आधार पर कर्नल टॉड ने मीरांबाई को राणा कुम्भा की महारानी मान कर यह कहा है कि "अपने पिता की गद्दी पर सन् 1491 में बैठने वाले राणा कुम्भा ने मारवाड़ के मेहता-कुल की कन्या मीरांबाई से विवाह किया, जो अपने समय में सुन्दरता एवं चरित्रता के लिए बहुत प्रसिद्ध थीं और जिसके रचे हुए अनेक प्रशंसनीय गीत अभी तक सुरक्षित हैं।" इसी आधार पर हिन्दी के कई विद्वानों ने मीरांबाई की जन्मतिथि तद्नुसार मान ली है। गुजराती इतिहासज्ञ गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी तथा हिन्दी के श्रीकृष्णलाल मोहनलाल झावेरी ने मीरा की जन्मतिथि ईसा की 15वीं शताब्दी में मानी है। इसी आधार पर हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने यह माना है कि "मीरांबाई का विवाह संवत् 1470 (अर्थात् सन् 1413) के करीब राजा गोकुलदेव के पुत्र कुम्भकर्ण चित्तौड़ नरेश के साथ हुआ था।"

वस्तुत: कर्नल टॉड की उक्त स्थापना किसी ठोस प्रमाण पर नहीं अपितु जन-श्रुति पर आधृत है। मुंशी देवीप्रसाद ने कर्नल टॉड के इस मत की यथार्थता पर आपत्ति की है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने कहा है कि (चित्तौड़) के किले पर कुम्भशाम जी का मन्दिर कुम्भा राणा का बनाया हुआ है। उसके पास एक और मन्दिर है जिसको मीरांबाई का बनवाया हुआ बताते हैं, इन दोनों मन्दिरों के पास-पास होने से शायद टॉड साहब ने यह धोखा खाया है। मीरांबाई का नाम मेड़ती है और महाराणा कुम्भा जी का इन्तकाल संवत् 1525 (1468 ई.) में हुआ है, उस वक्त तक मीरांबाई व दादा बूंदा जी को मेड़ता मिला ही नहीं था, इसलिए मीरांबाई, महाराणा कुम्भा की महारानी नहीं हो सकती।" प्रसिद्ध इतिहासकार श्री हरविलास सारदा ने भी कर्नल टॉड के इस मत का खण्डन किया है।

इस सम्बन्ध में एक और अत्यन्त सशक्त प्रमाण उपस्थित किया जाता है, सोरों की 'नरसीजी रो मोहेरो' नामक कृति में मीरा ने भक्त नरसी के सम्बन्ध में 'को नरसी सो भयो कौन विध' जैसे प्रश्न किए हैं। श्री झवेरी के मतानुसार नरसी भक्त का समय 1415 ई. से 1421 ई. तक है। कुछ ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर नरसी भक्त को मीरा का समकालीन भी माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में नरसी भक्त के सम्बन्ध में मीरा के उक्त प्रकार के प्रश्न अस्वाभाविक से लगते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कहना है, "इसके सिवाय मीरांबाई का मेवाड़ में आकर 'मेड़तणी' कहा जाना, यह उनके मेड़तिया वंश की होने का प्रमाण था और मेड़ता के राव दादा जी द्वारा सर्वप्रथम संवत् 1519 (सन् 1462 ई.) में अधिकृत होने के कारण उक्त शाखा का उनसे पहले प्रचलित होना असम्भव था।"

(ख) **मीरांबाई प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति की समकालीन थीं**–मीरांबाई से सम्बन्धित यह मान्यता भी कर्नल टाड की उक्त मान्यता से पूर्णत: नहीं तो अंशत: प्रभावित अवश्य थी। भारतीय भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार, "राजपूताने की सबसे प्रसिद्ध कवयित्री मारवाड़ की राजकुमारी मीरांबाई हैं, जो विद्यापति की समकालीन थीं।" तथापि विद्यापति के जीवनकाल के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद नहीं है। विद्यापति का समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी माना गया है। अत: डॉ. ग्रियर्सन की यह मान्यता ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर खरी नहीं उतरती।

नोट

(ग) **मीरांबाई राठौर सरदार जयमल की पुत्री थीं**–कुछ विद्वान मीरा को राठौर सरदार जयमल की बेटी बतलाते हैं और उनका जन्म संवत् 1675 (सन् 1681) मानते हैं। किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार राव जयमलजी मीरा के पिता नहीं बल्कि चचेरे भाई थे। दोनों ने प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा एक साथ ग्रहण की थी। इस प्रकार यह मत भी जनश्रुति के आधार पर ही स्थापित किया गया है।

(घ) **मीरांबाई और महाकवि तुलसी के मध्य पत्र-व्यवहार हुआ था**–विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार मीरांबाई और महाकवि तुलसीदास केवल समकालीन ही नहीं थे अपितु इन दोनों के मध्य पत्र-व्यवहार भी हुआ था। यह पत्र-व्यवहार इस प्रकार है। मीरांबाई ने अपने परिवार के सदस्यों तथा अन्य लोगों के कटु व्यवहार से तंग आकर तुलसीदास को निम्न पद भेज कर अपना मार्गदर्शन माँगा था–

'स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण, दूषण-हरण गोसाई।
बारहिं बार प्रणाम करहूं अब हरहूं सोक समुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरु भजन करत मोहि, देत कलेस महाई।
मेरे मात पिता के सम हो, हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समुझाई।'

कहते हैं तुलसीदास जी ने उत्तर स्वरूप निम्न पद लिखकर भेजा था–

'जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनिता, भये सब मंगलकारी।
नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंख जो फूटे, बहुतक कहौ कहां लौं।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों बढ़े सनेह राम पद, एतौ मतौ हमारो।'

कुछ विद्वानों के अनुसार तुलसीदास जी ने उक्त पद के साथ-साथ निम्न पद भी मीरांबाई को भेजा था–

'सो जननी सो पिता सोई भ्रात, सो भामिन सो सुत सो हिय मेरो।
सोई सगो सखा सोई सेवक सो गुरु सो सुर साहिब चेरो।
सो तुलसी प्रान समान, कहाँ लौं बताई कहौं, बहुतेरो।
सो तजि गेह को, देह को नेह, सनेह सो राम को हेय सवेरो।

यद्यपि तुलसीदासजी के उक्त दोनों पद उन्हीं की रचनाएँ हैं किन्तु फिर भी यह सिद्ध करना कठिन है कि उक्त पत्र-व्यवहार मीरांबाई और तुलसीदास के मध्य हुआ ही था। यदि यह मान भी लिया जाय कि वस्तुत: मीरा और तुलसी के मध्य यह पत्र-व्यवहार हुआ था तो निस्सन्देह इसका रचनाकाल संवत् 1590 के लगभग होना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से मीरा के सम्मुख यह सभी कठिनाइयाँ संवत् 1591 से पहले ही होनी चाहिए थीं क्योंकि संवत् 1591 में तो उन्होंने मेवाड़ ही छोड़ दिया था। तथापि इस पत्र-व्यवहार का उल्लेख सर्वप्रथम वेणीमाधव के 'गुसाईं चरित्र' में मिलता है–

'सोरह सं सोरह लगे, कामदगिरि ढिग वास।
सूचि एकांत प्रदेश कहं, आये सूर सुदास।

नोट

लै पाती गये जब सूर कबी, उर में पथराय के श्याम छबी।
तब आयो मेवाड़ ते, विप्र नाम सुखपाल।
मीरांबाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रबाल।।
पढ़िपाती, उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय।
सब तजि हरि भजबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय।।

विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार यह वेणीमाधवदास की अपनी ही कल्पना है जिसका उद्देश्य मीरांबाई की लोकप्रियता को बढ़ा देना मात्र है।

(ङ) **मीरांबाई से अकबर और तानसेन की भेंट**–विद्वानों के एक वर्ग ने मीरांबाई का सम्बन्ध अकबर और तानसेन से भी माना है। इस सम्बन्ध में मीरा का निम्न पद भी उद्धृत किया जाता है–

'माई री मैं साँवलिया जान्यो नाथ।
लेन परचो अकबर आयो, तानसेन को साथ।
राग तान इतिहास श्रवन करि, नाय नाय सिर माथ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, कीन्ह्यौ मोहि सनाथ।

ऐसा ही कहा जाता है कि अकबर स्वयं तानसेन को लेकर मीरांबाई के पास गया था। इस घटना का उल्लेख प्रियादास ने किया है।

वस्तुतः यह घटना भी ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार खरी नहीं उतरती। डॉ. श्रीकृष्णलाल के अनुसार मीरांबाई की मृत्यु संवत् 1660 मानी गयी है और इस आधार पर अकबर आयु में मीरांबाई से 40 वर्ष छोटे बैठते हैं। इस प्रकार 31 वर्ष के अकबर के लिए 71 वर्षीय मीरा में 'रूप की निकाई' जैसी बात अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती है। इस प्रकार मीरांबाई के जीवनकाल सम्बन्धी यह घटना भी सत्य पर आधारित नहीं है।

मीरांबाई की जन्मतिथि के सम्बन्ध में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता में दिए गए निम्न दो प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

(1) और एक समय गोविन्द दुबे मीरांबाई के घर हुते तहाँ मीरांबाई सो भगवद् वार्ता करते अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविन्द दुबे मीरांबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं, तब श्री गुसाईं ने एक श्लोक लिखी पठायो।

(2) सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गए हुते सो श्री रणछोड़ जी के दर्शन करके यहाँ ते चले सो आपन मीरांबाई के गाँव आयै सो वे कृष्णदास मीरांबाई के घर गयै जहाँ हरिवंश व्यास आदि दे विशेष सह वैष्णव हुते।

ऐतिहासिक दृष्टि से इन दोनों प्रसंगों की परीक्षा करने पर यह सिद्ध होता है कि मीरांबाई का जन्म संवत् 1555-60 के दौरान हुआ।

कुल एवं जन्म-स्थान

मीरांबाई के कुल एवं जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों में पूर्ण मतैक्य नहीं है। अद्यतन शोध कार्य के आधार पर श्री कल्याणमल शेखावत ने यह सिद्ध किया है, "कुछ विद्वान मीरा का जन्म-स्थान मेड़ता, कुछ चौकड़ी ग्राम एवं अन्य कुड़की ग्राम मानते रहे हैं, जो अशुद्ध है। मैं अपने शोध कार्य के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा हूं कि मीरांबाई का जन्म-स्थान बाजौली ग्राम था जो मीरा के पिता एवं मेड़ता के राव दूदा जी धावत के पुत्र रतनजी दूदावत के जागीर के गांवों में दूसरा गांव था कुड़की जो अब तक मीरा का जन्म स्थान माना जाता रहा है। मीरा का जन्म कुड़की में नहीं हुआ, उन्होंने अपने बाल्यकाल के कुछ वर्ष वहाँ अवश्य व्यतीत

नोट

किए थे। कुड़की के गढ़ एवं कस्बे के निर्माण की पूर्ण परिक्रमा तो मीरा के जन्म के बाद पूरी हुई थी।" इसके विपरीत एक यह मत भी समान रूप से सशक्त और प्रामाणिक दीखता है कि मीरांबाई का जन्म ग्राम कुड़की में ही हुआ था। मीरांबाई के पिता रत्नसिंह जी को, राव दूदा जी की ओर से जीवन-निर्वाह के लिए बारह ग्राम मिले थे जिनमें ग्राम बाजौली, ग्राम कुड़की भी थे और मीरा का जन्म कुड़की में संवत् 1555 के आसपास हुआ था।'

नोट्स यद्यपि ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर यह तो सिद्ध होता है कि मीरांबाई ने राठौर राजपूत कुल में जन्म लिया था तथापि उनके माता-पिता के बारे में पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते हैं। तथापि इस सम्बन्ध में सभी इतिहासविज्ञ एकमत हैं कि मीरांबाई के पिता रत्नसिंह जी थे और उनका जन्म कुड़की में हुआ था।

'मीरांबाई' नाम सम्बन्धी विवाद–मीरांबाई के जीवन सम्बन्धी विविध तथ्यों की भांति ही मीरां के नाम के सम्बन्ध में भी विद्वानों ने एक विवाद खड़ा किया था। हिन्दी साहित्य में मीरांबाई के नाम से सम्बन्धित विवाद का सूत्रपात डॉ॰ बड़थ्वाल ने किया था। डॉ॰ बड़थ्वाल ने 'मीरांबाई' के नाम का रहस्य संत कबीर के पदों में ढूंढ़ने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि मीरांबाई कवयित्री का असली नाम नहीं, उपनाम है और 'मीरा' का कबीर ने ईश्वर के अर्थ में प्रयोग किया है। जहाँ तक 'बाई' का प्रश्न है, डॉ॰ बड़थ्वाल ने सम्भवत: इसका अर्थ उत्तर प्रदेश में पत्नी के लिए प्रचलित पर्यायवाची शब्द 'बाई' से ग्रहण किया है। यही कारण है कि उन्होंने मीरांबाई का अर्थ 'ईश्वर की पत्नी' माना है। तथापि राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि में 'बाई' बहन का पर्यायवाची है, अत: डॉ॰ बड़थ्वाल की उक्त मान्यता पूर्णत: दोषमुक्त नहीं कही जा सकती। इस सम्बन्ध में यह आक्षेप भी किया जाता हैं कि यदि 'मीरा' अपने आप में एक उपनाम है तो उसका वास्तविक नाम क्या था। इतिहास में मीरांबाई के अतिरिक्त कोई अन्य नाम नहीं मिलता।

इस सम्बन्ध में पुरोहित हरिनारायण जी ने पर्याप्त खोज के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि 'मीरा' का नामकरण अजमेर के मीरां शाहसूफी के नाम पर किया गया है। कहते हैं कि मीरां के माता-पिता को सन्तान की बहुत इच्छा थी और मीरा शाहसूफी की 'दुआ' के कारण ही मीरां का जन्म हुआ था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह मान्यता भी खरी नहीं उतरती क्योंकि "ऐतिहासिक साक्ष्य पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि यह मीरां शाह कहलाने वाला खंग सवार मारा गया था कट्टर शत्रु की तरह राजपूतों के द्वारा। तब राजपूत राजवंशों में, जिनकी मित्र-शत्रु विषयक भावनाएं जगत की कहानी बनी हुई हैं, एक मुसलमान शत्रु-पक्ष वाले की पूजा कैसे सम्भव हो सकती थी।"

स्वामी आनन्द स्वरूप ने मीरां की व्युत्पत्ति संस्कृत के मिहिर (सूर्य) शब्द से मानी है। उनके अनुसार जन्म के समय मीरां के तेजोमय मुख को देखकर उसका नाम मिहिर (सूर्य) बाई रख दिया गया जो कालान्तर में मीरांबाई बन गया। गुजराती साहित्य के पंडित केशवराम की मान्यता भी यही है।

श्री ललित प्रसाद स्कुल ने मीरांबाई के नाम से पहले 'मेड़ता' शब्द की व्युत्पत्ति बताई। उनके अनुसार मेड़ता की व्युत्पत्ति मीरां + ता = मीरता है। संस्कृत में 'मीरां का अर्थ जल-राशि होता है। मेड़ता का भौगोलिक विवरण देते हुए यह कहा गया है कि 'Water is plaentiful of Merta there being numerous tank all round city.' इस प्रकार सकुल जी ने यह सिद्ध किया है कि 'मीरा' शब्द की व्युत्पत्ति मेड़ता नगर से हुई है। उनके मतानुसार, 'मीरांबाई' का नाम निस्सन्देह ही उपर्युक्त व्युत्पत्ति से सम्बन्धित है। 'मीरां' वाच्य है जलाशय का। मेड़ता के चारों और सुन्दर-सुन्दर झीलें हैं। सरिता और झील इत्यादि पर स्त्रियों के नाम रखने की प्रथा हमारे देश में नवीन नहीं।

नोट

यदि राव दूदा जी ने अपनी पौत्री के अलौकिक सौन्दर्य से प्रेरित होकर मेड़ते की सुन्दरतम झील के आधार पर 'मीरां' कहा तो आश्चर्य क्या? साथ ही जल हमारे देश में सात्विक भावना का सिद्ध उद्दीपन माना गया है।

श्री महावीर प्रसाद गहलौत का मत यह है, "बहुत सम्भव तो यही जान पड़ता है कि मीरां के माता-पिता ने अपनी प्रथम सन्तान को जीवन-चिन्तामणि जानकर अपने सुखों से उसे अति उच्च पद दिया और उसके शील, गुण, नम्रता आदि को लखकर यथागुणानुसार उसे मीर (श्रेष्ठ) ही माना और वही हमारी मीरांबाई अपने नाम को भक्ति-क्षेत्र को काव्य-क्षेत्र में स्वर्णांकित करने में सफल हुई। यही सीधा-साधा सरल रहस्य 'मीरां' नाम से निहित जान पड़ता है।"

इन सब मतों के आधार पर यही निष्कर्ष जा सकता है कि 'मीरा' का नाम उनके माता-पिता द्वारा दिया गया है। 'बाई' शब्द सम्मानसूचक होने के कारण उसके साथ जोड़ दिया गया। वस्तुत: वह विवाद डॉ॰ बड़थ्वाल ने उठा दिया और फिर अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार उसके तर्कयुक्त आधार उपस्थित करने के प्रयत्न किये जबकि यह अपने आपमें कोई विवाद ही नहीं था। प्रत्येक नाम का कोई रहस्य होता ही है–यह कोई नियम नहीं है बल्कि सत्य तो यह है कि प्राया: सभी नाम बहुत सोच-विचार के बाद नहीं रखे जाते। कोई-कोई नाम तो अत्यन्त निरर्थक होते हैं, अत: निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि 'मीरांबाई' के नाम का कोई रहस्य नहीं है, विद्वानों ने इसे रहस्य का रूप दे दिया है।

मीरां का बाल्यकाल– मीरां का बाल्यकाल उनके वैष्णव भक्त राव दूदाजी के संरक्षण में व्यतीत हुआ। अपने दादा जी के घर में ही मीरां को श्री गिरधरलाल का इष्ट हो गया था और इसका कारण उनके अपने संस्कार तो थे ही, उनके साथ-साथ राव दूदाजी की वैष्णव-भक्ति का भी भरपूर प्रभाव पड़ा था। तथापि यह अत्यन्त आश्चर्यजनक लगता है कि इतना होने पर भी मीरां ने अपने किसी पद में भी राव दूदा जी के नाम का उल्लेख नहीं किया। तथापि इतना तो निर्विवाद है कि दो वर्ष की आयु में ही माता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् मीरां का लालन-पालन राव दूदा के हाथ में हुआ और इसलिए 'मीरां' में भक्ति के संस्कारों का उत्पन्न हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। भक्ति के संस्कारों के उदित हो जाने के कारण 'मीरां' अपने वैष्णवभक्त दादा जी का ही अनुकरण करती, ठाकुर जी के तिलक लगाती, भोग लगाती, आरती उतारती और नाम स्मरण में खोई रहती।

प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा– मीरां की माता मीरां को दो वर्ष की छोड़ कर ही परलोक सिधार गई थीं। उनका लालन-पालन दादा राव दूदा जी की देख-रेख में हुआ था। राव दूदा जी मीरां को मेड़ता में ले आए थे और यहीं उन्होंने मीरां के लिए तथा अपने एक अन्य पौत्र जयमल के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी थी। तथापि उसके पिता तथा अन्य व्यक्ति युद्धों में अत्यधिक व्यस्त रहते थे और इस कारण मीरां की प्रारम्भिक शिक्षा बहुत सन्तोषजनक नहीं रही। तथापि इतना निर्विवाद है कि बालपन में ही मीरां को भक्ति और धर्म के संस्कार अवश्य गये थे।

विवाह एवं वैधव्य– मीरांबाई के विवाह आदि से सम्बन्धित प्रश्न भी निर्विवाद नहीं है। कर्नल टाड के अनुसार मीरां राणा कुम्भा की महारानी थी। मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार कर्नल टाड का यह मत निराधार है और मुंशीजी के मतानुसार मीरां का विवाह उदयपुर के सिसौदिया वंश के महाराणा साँगा के कुंवर भोजराज के साथ हुआ था।

मीरांबाई के पदों में सिसौदिया वंश का उल्लेख मिलता है। उन्होंने अपनी ननद का नाम भी ऊदाबाई बताया है किन्तु इस सम्बन्ध में अपेक्षित ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

तथापि नवीनतम शोधकार्य के आधार पर अब यह प्राय: निश्चित-सा है कि मीरां का विवाह महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ संवत 1573 में हुआ था। इस प्रकार 'मीरा' अपने ससुराल मेवाड़ में आ गई, किन्तु अभी भी उसके मन में गिरधरलाल के प्रति अपार प्रेम बना हुआ था।

नोट

क्या आप जानते हैं विवाह के पश्चात अपनी ससुराल जाते समय मीरां अपने साथ गिरधरलाल की सुन्दर मूर्ति भी ले आई। ससुराल में भी मीरां इस मूर्ति की पूजा किया करती थी।

मीरां का वैवाहिक जीवन सुखमय बीता किन्तु दुर्भाग्यवश वे जल्दी ही विधवा हो गई। संवत् 1480 के आस-पास मीरां के पति कुंवर भोजराज की मृत्यु हो गई और इस प्रकार मीरां का सुखमय दाम्पत्य जीवन सदा-सदा के लिए समाप्त हो गया। इस अप्रत्याशित वैधव्य ने मीरां के जीवन की धारा ही बदल दी और अब मीरां का एकमात्र आधार गिरधरलाल हो गए। यही नहीं, इसके चार वर्ष पश्चात् ही इनके पिता रत्नसिंह भी स्वर्ग सिधार गए और कुछ ही समय में मीरां को अपने जीवन का सर्वाधिक दु:खद और दुर्भाग्यपूर्ण समय देखना पड़ा। विपत्तियों के इन टूटते हुए पहाड़ों ने मीरां की जीवन-धारा में ही भारी मोड़ ला दिया। मीरां की बालपन की भक्ति और धर्म के संस्कार अब श्रीकृष्ण प्रेमामृत में एकतान हो गए। अब उनकी एकमात्र रुचि भगवद्भक्ति और साधु-संगति में हो गई।

अब मीरां का अधिकांश समय भगवद्दर्शन और साधुओं से धार्मिक परिचर्चाएँ करने में बीतता था। मीरां ने लोकलाज और कुल की मर्यादा को त्याग कर अपने आराध्य की भक्ति आरम्भ कर दी। कभी-कभी वे श्री गिरधरलाल के प्रेमामृत का पान कर इतनी प्रेमोन्मत्त हो जाती थीं कि पैरों में घूँघरू बांध कर, ताली दे-दे कर श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने नाचने लगतीं।

मीरां के श्वसुर राणा सांगा भी बाबर के साथ युद्ध करते हुए खेत हो चुके थे, अत: अब मीरां के ससुराल में कोई भी अपना नहीं रहा। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मीरां के देवर विक्रमजीत सिंहासन पर बैठे। कहते हैं कि विक्रमजीत सिंह ने मीरां को अनेक यातनाएं दी जिसका उल्लेख मीरां के पदों में भी सहज सुलभ है। वस्तुत: मीरां के देवर को यह पसंद नहीं था कि राणा परिवार की बहू मीरां संतों की मण्डली में घूमे-फिरे और गिरधारलाल के मन्दिर में ताली दे-देकर नृत्य करे। उन्हें मीरां को मार डालने तक की नई-नई युक्तियाँ सूझीं। मीरां को मार डालने के लिए विक्रमजीत सिंह ने विष का प्याला भेजा, जिसे मीरां चरणमृत समझ कर पी गई। मीरां को मारने के लिए पिटारी में सांप भी भेजा गया किन्तु जिसके अनुकूल स्वयं प्रभु हों, उस मीरां के लिए कुछ भी प्रतिकूल नहीं हो सका। मीरां ने जब उस सांप की पिटारी को खोल देखा तो उसे वहाँ सांप के स्थान पर शालिग्राम की मूर्ति दिखाई पड़ी। मीरां ने शालिग्राम की उस मूर्ति को प्रेमाश्रुओं से नहला ही दिया। इसी प्रकार की अनेक यातनाएँ मीरां को दी गई। मीरां के जीवन पर इन यातनाओं का अधिक प्रभाव पड़ा था। मीरां को भेजे गये विष-प्याले की घटना का उल्लेख तो अन्य कई कवियों ने भी किया है।

मीरां की एक ननद थी ऊदाबाई। ऊदा बाई ने भी मीरां को समझाने-बुझाने के बहुत प्रयत्न किए, किन्तु उनका कोई भी प्रभाव नहीं हुआ। मीरां के श्रीकृष्ण प्रेम में और साधुओं की संगति में लेशमात्र भी कमी नहीं आई। अन्तत: ऊदा ने एक षड्यंत्र रचा। उसने विक्रमाजीत सिंह को यह कहा कि मीरां आधी रात को दीप जलाकर किसी पर-पुरुष से प्रेमालाप करती है। यह सुनकर विक्रमजीत सिंह क्रोध से लाल-पीले हो गए और मीरां का सिर काटने के लिए तलवार लेकर दौड़े और मीरां से प्रश्न किया, "कहाँ है तेरा प्रेमी, जिसके साथ तू सारी-सारी रात जागा करती है ? अभी मैं उसका सिर धड़ से अलग कर देता हूँ।" मीरां ने अत्यंत संयत होकर गिरधर लाल जी की मूर्ति की ओर संकेत किया। मीरां के इस अप्रत्याशित व्यवहार के कारण राणा की क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे बोले, "अभी तू ठीक-ठीक बता, तू किससे बात कर रही थी अन्यथा मैं इस तलवार से तेरा ही खून कर दूँगा।" मीरां तनिक भी विचलित नहीं हुई और दृढ़तापूर्वक बोली, "सच मानो, यही मेरा चितचोर और प्राणधन है। इसी के चरणों में मैंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है ..... अभी देखो, देखो, खड़े-खड़े मुस्करा

नोट

रहा है। अभी एक क्षण भी तो नहीं हुआ जब वह आया था। आह ! उसका रूप कितना चित्ताकर्षक था। उसने मुझे जब आलिंगनबद्ध करने के लिए हाथ बढ़ाए मैं ..... उफ। मत पूछो। उस अपरूप रूप के स्वामी को देखकर मैं संज्ञाहीन होकर गिर गई।"

मीरां द्वारा मेवाड़-त्याग– विविध प्रकार की यातनाओं ने पीड़ित होकर मीरां मेवाड़ छोड़कर अपने पीहर मेड़ता आ गई। मेड़ता का वातावरण मीरां के लिए अत्यन्त अनुकूल सिद्ध हुआ क्योंकि यहाँ मीरां के श्रीकृष्ण प्रेम में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती थी। मीरां के चाचा राव वीरमदेव तथा चचेरे भाइ जयमल मीरां को अत्यधिक आदर और सम्मान दिया करते थे। इस प्रकार मेड़ता में आकर मीरां को भगवद्-भजन करने और साधुओं की संगति करने का सुअवसर सहज ही प्राप्त हो गया।

कालान्तर में मेड़ता पर आपत्तियों के बादल घिर आए। वस्तुत: मेड़ता और जोधपुर के राजाओं के मध्य संवत् 1588 से आपसी शत्रुता बनी हुई थी। कहते हैं कि संवत् 1565 में जोधपुर के राव मालदेव ने मेड़ता पर आधिपत्य कर लिया। अत: मीरां की पूजा, दैनिकचर्या आदि फिर से अव्यवस्थित हो गई। मीरां का मन अत्यन्त विरक्त-सा हो गया और तब मीरां ने तीर्थाटन करने का निश्चय किया। कहते हैं कि श्री गिरधरलाल की यह प्रेम-दीवानी वृन्दावन में आ गई। यहाँ पहुंचकर मीरां का एकमात्र कार्य श्री गिरधरलाल के मन्दिरों में मूर्ति के सम्मुख ताली दे-दे कर नृत्य करना और हाथ में करताल लेकर प्रेम के गीत गाना था। कहते हैं कि उस समय वृन्दावन में चैतन्य सम्प्रदायी श्री जीवगोस्वामी जी भी रहा करते थे और वृन्दावन के साधु वर्ग में जीवगोस्वामी को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त था। मीरां भी जीवगोस्वामी जी के दर्शन की इच्छुक थीं किन्तु जीवगोस्वामी जी ने स्त्रियों से न मिलने का व्रत ले रखा था। जब मीरांबाई को जीवगोस्वामी जी के इस निश्चय का पता चला तो उसने गोस्वामी जी को यह कहला भेजा कि, 'मैं तो अब तक समझती थी कि वृन्दावन में भगवान कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग केवल गोपी वा स्त्री रूप हैं। मुझे आज ज्ञात हुआ है कि, भगवान् के अतिरिक्त अपने को पुरुष समझने वाला यहाँ और भी विद्यमान हैं।" मीरां के इस संदेश को सुनकर जीवगोस्वामी जी अत्यन्त प्रभावित हुए और कहते हैं कि तब वे स्वयं दौड़कर मीरांबाई से आकर मिले। वृन्दावन में मीरांबाई संवत् 1568 तक रहीं। वृन्दावन-वास के समय मीरां तथा जीव-गोस्वामी जी का सत्संग बराबर चलता रहा। संवत् 1566 के आस-पास मीरांबाई द्वारिकाधाम चली गईं और यहाँ पर श्री रणछोड़ जी की स्तुति करने लगीं।

इसी बीच मीरां के चचेरे भाई जयमल ने पुन: मेड़ता पर अधिकार कर लिया था और जब वे चाहते थे कि मीरां पनु: मेड़ता में ही आकर रहें। उन्होंने द्वारिका में मीरां के पास अनेक संदेश भिजवाए किन्तु मीरां बाई द्वारिका छोड़कर कहीं भी जाना नहीं चाहती थीं। एक जनश्रुति के अनुसार मीरां ने द्वारिका नहीं छोड़ी और वह अन्तत: रणछोड़ जी की मूर्ति में ही लीन हो गईं।

यद्यपि विद्वानों का एक वर्ग मीरांबाई की मृत्यु का कारण भी यही बताता है और यह मानता है कि अन्तत: मीरांबाई रणछोड़ जी की मूर्ति में ही विलीन हो गई थीं तथापि इसे केवल एक अन्धविश्वास ही कहा जा सकता है। मीरां की मृत्यु का कारण और उनकी मृत्यु-तिथि, दोनों ही अभी तक विवादग्रस्त प्रश्न बने हुए हैं।

मीरांबाई के गुरु– मीरांबाई के जीवन के विविध पक्षों की तरह उनके गुरु सम्बन्धी प्रश्न भी विवादग्रस्त हैं। मीरांबाई के गुरु के रूप में रैदास, तुलसीदास, विट्ठल नाथ तथा जीवगोस्वामी आदि महान विभूतियों के नाम लिए जाते हैं। मीरां के अनेक पदों में 'रैदास' के नाम का उल्लेख मिलता है और वस्तुत: गुरु रैदास को ही मीरां के गुरु के रूप में मान्यता दी जाती है। इस मत का प्रतिपादन करने वालों में श्री जे॰ एन॰ फकर्हर, मा॰ नि॰ मेहता, डॉ॰ नरोत्तम स्वामी तथा डॉ॰ बड़थ्वाल के नाम उल्लेखनीय हैं।

तथापि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह मान्यता खरी नहीं उतरती। मीरां और रैदास में समय का इतना अधिक अन्तर है कि यह मान्यता पूर्णत: अविश्वसनीय ठहरती है। रैदास का समय निर्विवाद रूप से संवत् 1455 से 1475 तक माना जाता है औ रैदास की मृत्यु के समय मीरां ही नहीं बल्कि उनके पति भोजराज भी जीवित थे। अत:

नोट

यह सिद्ध है कि मीरां के गुरु रैदास नहीं थे। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने मीरां का गुरु रैदासी विट्ठल को माना है और उनकी मान्यता का आधार यही है कि मीरां के अनेक पदों में विट्ठल का प्रयोग मिलता है। किन्तु विट्ठल का प्रयोग तो श्रीकृष्ण के पर्याय के रूप में भी किया है, अत: चतुर्वेदी जी की यह मान्यता भी तर्क-संगत नहीं कही जा सकती। मीरां के गुरुओं में तुलसीदास, जीवगोस्वामी आदि का भी नाम लिया जाता है। यह भी कहा जाता है कि मीरां ने अपने एक पद द्वारा तुलसीदास को अपने कष्टपूर्ण जीवन से अवगत कराया था और मार्गदर्शन करने की प्रार्थना की थी। यह भी कहा जाता है कि तुलसीदास ने उत्तर-स्वरूप "जाके प्रिय न राम वैदेही तजिये ताहि कोटि बेरी सम यद्यपि परम सनेही" पद लिखकर मीरां के पास भेजा था। तथापि यह घटना भी ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर खरी नहीं उतरती है। इस प्रकार अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार मीरां के गुरुओं के नाम लिए हैं किन्तु इस सम्बन्ध में कोई भी विद्वान् अन्तिम निर्णय नहीं दे सका है। इस सम्बन्ध में हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह मत अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है कि, "मीरांबाई अत्यन्त मनोभावनापन्न भक्त थी। उन्हें किसी पंथ विशेष पर आग्रह नहीं था। जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या चारित्र्य मिला है उसे ही उन्होंने सिर-माथे चढ़ाया है।"

टास्क मीरा के काव्य में व्यक्त प्रेम के स्वरूप पर टिप्पणी कीजिए।

मीरां की मृत्यु-तिथि–मीरां की जन्म-तिथि की तरह उनकी मृत्यु-तिथि के बारे में भी अनेक मत सामने आते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा मुंशी देवी प्रसाद भाट मीरांबाई की मृत्यु संवत् 1603 में, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी उसे संवत् में मानते हैं। वियोगी हरि संवत् 1625 के आसपास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संवत् 1620-1630 के मध्य मानते हैं। डॉ॰ श्रीकृष्णलाल मीरा की मृत्यु संवत् 1630 में हुई मानते हैं। भक्ति विषयक साहित्य में मीरां का संवत् 1622 तक जीवित रहने का उल्लेख है। अत: डॉ॰ श्रीकृष्णलाल का मत सत्य के अधिक निकट बैठता है। मीरा का मृत्यु द्वारिका में हुई थी और एक जनश्रुति के अनुसार मीरा रणछोड़ जी की मूर्ति में ही विलीन हो गई थी। यह एक कपोल-कल्पित घटना ही कही जा सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर, यही कहा जा सकता है कि मीरा के जन्म, मृत्यु तथा जीवन के बारे में विविध जनश्रुतियों की उपस्थिति में मीरा सम्बन्धी ये विभिन्न तथ्य किसी निराक्षेप्य रूप में सामने नहीं आ सके हैं। उनकी जन्म-तिथि, मृत्यु-तिथि, गुरु, मृत्यु-स्थल आदि सभी सन्देहपूर्ण हैं, कुछ भी निश्चित रूप से स्थापित नहीं किया जा सका है। निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि मीरा की मृत्यु संवत् 1630 के आसपास द्वारिका में ही हुई होगी। तथापि मीरा के जीवन सम्बन्धी इन विवादग्रस्त आँकड़ों और ब्यौरो से अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मीरा मूलत: प्रेम की दीवानी थीं जोकि प्रभु के प्रेम में छकी हुई और गिरधरलाल के आलिंगन में बँधी हुई तथा सांवरे के दिव्य रूप में खोई हुई आई थीं। उनके जीवन का समूचा दर्शन एक अंग्रेज कवि की निम्न दो पंक्तियों में ढूँढ़ा जा सकता है :

"I go with a perpetual heatache;

None can see God or Goddess and live."

5.2 मीरा की रचनाएँ

मीरां की प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा मेड़ते में हुई थी। उनके दादा राव दूदा जी महान वैष्णव भक्त थे, अत: मीरांबाई में धर्म और भक्ति के संस्कार तो बालपन में ही पड़ गए थे। कहते हैं कि उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा के अधीन

नोट

काव्य-संगीत आदि का भी समुचित प्रशिक्षण दिया गया था। दूसरी ओर मेवाड़ के राजघराने में भी संगीत और साहित्य का पूरा प्रभाव था, अत: मीरा को अपनी सुसराल में भी काव्य-संगीत आदि की दृष्टि से पूर्णत: अनुकूल वातावरण मिला। इनके पति कुंवर भोजराज भी इनके संगीत एवं काव्य विषयक विकास में बाधक नहीं हुए और उनके पश्चात् तो मीरां ने कठोर वैधव्य की कष्टपूर्ण घड़ियों में एकचित्त होकर अपनी साहित्यिक गतिविधियों का विकास किया।

मीरां की कृतियाँ

सर्वप्रथम मिश्रबन्धु विनोद और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मीरां की निम्नलिखित तीन कृतियों का उल्लेख किया:

(1) गीत गोविन्द की टीका।

(2) नरसी जी रो माहेरो।

(3) राग गोविन्द।

मुंशी देवी प्रसाद ने प्रथम दो कृतियों के अतिरिक्त राग सोरठ संग्रह तथा फुटकर पदों का भी उल्लेख किया था। अब निम्न कृतियाँ भी मीरांबाई द्वारा रचित मानी जाने लगी हैं :

(1) राग मल्हार, (2) राग बिाहग, (3) सोरठ के पद, (4) मीरां नी गरबो, (5) फुटकर पद, (6) रुक्मिणी मंगल, (7) नरसी मेहता की हुंडी, (8) चरीत, (9) सतभामा नु रूसण। इन रचनाओं में से नरसी जी रो माहेरो, सोरठ पद, गरबो गीत व राग विहाग के फुटकर पदों से कुछ अंश को छोड़कर किसी भी रचना की मीरां की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं होती है।

मीरा की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(1) **गीत गोविन्द की टीका**–गीत गोविन्द संस्कृत के जयदेव की सुविख्यात रचना है। यह कृति मूलत: संस्कृत में लिखी हुई है, अत: यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि मीरा ने इसकी रचना नहीं की थी क्योंकि मीरा को इतनी शिक्षा ही प्राप्त नहीं थी। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि इसकी रचना महाराणा कुम्भा ने की थी। अत: यह रचना मीरांबाई की नहीं हो सकती।

(2) **नरसीजी रो माहेरो**– इस कृति का नाम 'नरसी जी को माहेरो', 'नरसी जी का माहेरा' अथवा 'मायरा' के रूप में भी मिलता है। 'माहेरो' का अर्थ भात देना होता है। इसकी प्रामाणिकता भी संदिग्ध है और अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि, "यह रचना कदाचित् मीरांबाई की न होकर किसी मीरादास नामक वैष्णव साधु की है और उसका रचनाकाल भी सम्भवत: संवत् 1749 और संवत् 1889 के बीच का समय है।" तथापि इसकी प्रामाणिक प्रति अभी तक नहीं मिल सकी है। इस कृति में नरसी भक्त के भात देने की कथा का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के कुछ अंश मुंशी देवी प्रसाद ने प्रकाशित भी कराए हैं।

'नरसी जी रो माहेरो' का सम्बन्ध मीरांबाई के साथ जोड़ने से पूर्व दो बातों पर विचार करना आवश्यक है। पहली तो यह कि इसकी भाषा तथा मीराबाई के अन्य पदों की भाषा में साम्य नहीं है। उक्त पदों की भाषा अधिकांशत: खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा का मिश्रण है जबकि मीरांबाई के पदों की भाषा राजस्थानी है। दूसरे, इन पदों में मीरा की वह भाव-प्रवणता भी नहीं मिलती है जो मीरा के अन्य पदों का मूल स्वर है। इन सभी कारणों से यह कृति मीरा द्वारा रचित नहीं कही जा सकती।

(3) **राग गोविन्द**–इस ग्रन्थ की चर्चा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अतिरिक्त पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी की है तथापि इस नाम की कोई भी पुस्तक मीरांबाई के नाम से अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि जिन पदों में मीरा ने गोविन्द की महिमा का वर्णन किया है, उन्हीं पदों के संग्रह

को 'राग गोविन्द' की संज्ञा दे दी गई।

नोट

(4) **राग मल्हार**–इस पुस्तक का उल्लेख भी सर्वप्रथम पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने किया है, और लिखा है कि, "यह राग अब तक प्रचलित है और बहुत प्रसिद्ध है।" तथापि इस नाम की कोई प्रामाणिक कृति मीरा के नाम से अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा के कुछ विशिष्ट पदों के संग्रह का ही यह नामकरण कर दिया गया।

(5) **सोरठ के पद**–भक्त कवियों का प्रिय राग सोरठ रहा है। 'सोरठ के पद' नामक कृति भी सोरठ राग में रचित पदों का संग्रह है। तथापि इस कृति में केवल मीरा के ही नहीं अपितु कबीर तथा नामदेव नामक भक्त कवियों के ऐसे पद संग्रहीत किए गए हैं जिनकी रचना राग सोरठ में की गई है। अत: इसे भी मीरांबाई की स्वतंत्र कृति नहीं कहा जा सकता।

(6) **मीरा नी गरबो**–इस कृति का उल्लेख सर्वप्रथम श्री झवेरी ने किया था। ये गीत प्राय: गुजरात में ही प्रचलित हैं। 'गरबा' गीत रासमण्डली आदि में गाए जाते हैं। इन गीतों पर आधुनिकता का अत्यन्त गहरा प्रभाव है, अत: इसे भी मीरा की कृति नहीं कहा जा सकता।

(7) **फुटकर पद**–इस कृति में मीरा के ही नहीं अपितु कई अन्य भक्त कवियों के पद भी संग्रहीत हैं। मीरा के अतिरिक्त लगभग नौ और भक्त कवियों का यह फुटकर पद संग्रह वस्तुत: मीरा की स्वतंत्र रचनाओं में परिगणित नहीं किया जा सकता।

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए–

1. मीरा के पति का नाम ..... था।
   (क) महाराणा (ख) श्रीकृष्ण (ग) कुंवर भोजराज
2. मीरा का विवाह राजस्थान के ..... वंश में हुआ था।
   (क) सिसोदिया वंश (ख) राजपूत राजवंश (ग) सूर्यवंश
3. मीरांबाई मैथिल कवि ..... की समकालीन थी।
   (क) तुलसीदास (ख) चन्द्रवरदायी (ग) विद्यापति
4. मीरांबाई की कृतियों में सर्वाधिक विश्वसनीय ..... को माना जाता है।
   (क) मीरांबाई की पदावली (ख) नरसी जी रो मोहेरो (ग) राग गोबिंद

(8) **मीरांबाई की पदावली**– मीरांबाई की पदावली ही मीरा की कृति में सर्वाधिक विश्वसनीय मानी जाती है। अभी तक इस पदावली के पदों की संख्या लगभग दो सौ मानी जाती थी किन्तु फिर भी मीरा की पदावली के पदों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत व्यक्त किए हैं। मीरा के प्रामाणिक पदों की संख्या निश्चित रूप से बताना कठिन है, क्योंकि इसमें अनेक प्रक्षेपक जोड़े गए हैं। वास्तविकता तो यह है कि हिन्दी में पृथ्वीराजरासो के अतिरिक्त सम्भवत: किसी भी अन्य कृति में इतने अधिक प्रक्षेपक नहीं जोड़े गए हैं।

मीरां की पदावली का प्रकाशन सर्वप्रथम श्रीकृष्णानन्द देव व्यास द्वारा 'रागकल्पद्रुपम' के नाम से किया गया था। इस पद-संग्रह में राजस्थान, गुजरात और बंगाल में प्रचलित लगभग पैंतालीस पद संग्रहीत हैं। श्री पुरोहित हरिनारायण जी के अनुसार मीरा के पदों की संख्या लगभग 500 है। इसके अतिरिक्त श्री गोविन्दराव मोरावा कार्लेकर ने भी मीरां के पदों का एक संग्रह किया था, जिसका उल्लेख डॉ. प्रभात ने अपने प्रबन्ध में किया

नोट

था। कार्लेकर के पद 'मीरांबाई भजन भण्डार' के नाम से प्रकाशित किए गए थे। इसमें पदों की संख्या 352 बताई गई है। इसके अतिरिक्त गुजरात में 'बृहत काव्य दोहन' नामक ग्रन्थ में मीरांबाई के 200 से अधिक पदों को स्थान दिया गया था। बाद में बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीरांबाई की शब्दावली' में मीरा के पदों की संख्या 168 स्वीकार की गई है। इसके पश्चात् अन्य कई विद्वानों ने मीरा के प्रामाणिक पदों का संग्रहीत करने के सफल प्रयास किए थे जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–

(1) मीरां की प्रेम साधना : श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' (पद 216)

(2) मीरां की जीवनी और काव्य : श्री महावीरसिंह गहलौत (पद 108)

(3) मीरां की पदावली : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (पद 202)

(4) मीरां बृहद् पद-संग्रह : शुभश्री पद्मावती शबनम (पद 590)

(5) मीरां-सुधासिन्धु : स्वामी आनन्द स्वरूप (पद 1312)।

इस प्रकार अन्य और भी प्रयास किए गए हैं किन्तु इन सबके कारण मीरा के प्रामाणिक पदों की संख्या निर्धारित करने की समस्या का कोई पूर्ण समाधान नहीं हो सका है।

गुजरात के साहित्यकारों ने भी मीरां के पदों को गुजराती भाषा में संकलित करने का प्रयास किया है। मीरा के अनेक पद राजस्थानी तथा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में भी उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार मीरा की पदावली के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि अभी तक की गई गवेषणा के आधार पर भी मीरा के प्रामाणिक पदों की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकी है। इसके कारण भी कई हैं किन्तु फिर भी इतना तो निर्विवाद है कि हिन्दी साहित्य में यह क्षेत्र अभी भी गवेषणा की पूरी अपेक्षा रखता है। अद्यतन गवेषणा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मीरा के पदों की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति 18वीं शताब्दी की है, जिसे आधार मानकर पदों की संख्या एवं भाषा का अध्ययन तथा तत्सम्बन्धी शोधकार्य किया जा सकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मीरा की अधिकांश रचनाएँ निर्विवाद रूप से प्रामाणिक नहीं हैं। तथापि गीत गोविन्द की टीका, नरसी जी रो माहेरो, राग गोविन्द, राग मल्हार, फुटकर पद, सोरठ के पद, मीरा नी गरबो तथा मीरा की पदावली नामक रचनाएँ इस आधार पर मीरा कृत मानी जा सकती हैं कि इनमें मीरा के जो भी पद संग्रहीत हैं, प्राय: प्रामाणिक ही हैं।

5.3 सारांश

वस्तुत: मीरांबाई की जन्मतिथि विषयक विभिन्न मतों का आधार मीरांबाई के जीवन सम्बन्धी विभिन्न जनश्रुतियाँ रही हैं।

(क) मीरांबाई राणा कुम्भा की महारानी थीं।
(ख) मीरांबाई प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति की समकालीन थीं।
(ग) मीरांबाई राठौर सरदार जयमल की पुत्री थीं।
(घ) मीरांबाई और तुलसी के मध्य पत्र-व्यवहार हुआ था।
(ङ) मीरांबाई से अकबर और तानसेन की भेंट।

मीरां का बाल्यकाल उनके वैष्णव भक्त राव दूदाजी के संरक्षण में व्यतीत हुआ। अपने दादा जी के घर में ही मीरां को श्री गिरधरलाल का इष्ट हो गया था और इसका कारण उनके अपने संस्कार तो थे ही, उनके साथ-साथ राव दूदाजी की वैष्णव-भक्ति का भी भरपूर प्रभाव पड़ा था।

नोट

दो वर्ष की आयु में ही माता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् मीरां का लालन-पालन राव दूदा के हाथ में हुआ और इसलिए 'मीरां' में भक्ति के संस्कारों का उत्पन्न हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। भक्ति के संस्कारों के उदित हो जाने के कारण 'मीरां' अपने वैष्णवभक्त दादा जी का ही अनुकरण करती, ठाकुर जी के तिलक लगाती, भोग लगाती, आरती उतारती और नाम स्मरण में खोई रहती।

मीरां की माता मीरां को दो वर्ष की छोड़ कर ही परलोक सिधार गई थीं। उनका लालन-पालन दादा राव दूदा जी की देख-रेख में हुआ था। राव दूदा जी मीरां को मेड़ता में ले आए थे और यहीं उन्होंने मीरां के लिए तथा अपने एक अन्य पौत्र जयमल के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी थी।

मीरांबाई के विवाह आदि से सम्बन्धित प्रश्न भी निर्विवाद नहीं है। कर्नल टाड के अनुसार मीरां राणा कुम्भा की महारानी थी।

मीरांबाई के पदों में सिसौदिया वंश का उल्लेख मिलता है। उन्होंने अपनी ननद का नाम भी ऊदाबाई बताया है किन्तु इस सम्बन्ध में अपेक्षित ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

मीरां का वैवाहिक जीवन सुखमय बीता किन्तु दुर्भाग्यवश वे जल्दी ही विधवा हो गई। संवत् 1480 के आस-पास मीरां के पति कुंवर भोजराज की मृत्यु हो गई

विविध प्रकार की यातनाओं ने पीड़ित होकर मीरां मेवाड़ छोड़कर अपने पीहर मेड़ता आ गई। मेड़ता का वातावरण मीरां के लिए अत्यन्त अनुकूल सिद्ध हुआ क्योंकि यहाँ मीरां के श्रीकृष्ण प्रेम में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती थी। मीरां के चाचा राव वीरमदेव तथा चचेरे भाइ जयमल मीरां को अत्यधिक आदर और सम्मान दिया करते थे।

मीरांबाई के जीवन के विविध पक्षों की तरह उनके गुरु सम्बन्धी प्रश्न भी विवादग्रस्त हैं।

मीरां के अनेक पदों में 'रैदास' के नाम का उल्लेख मिलता है और वस्तुतः गुरु रैदास को ही मीरां के गुरु के रूप में मान्यता दी जाती है।

मीरां ने कठोर वैधव्य की कष्टपूर्ण घड़ियों में एकचित्त होकर अपनी साहित्यिक गतिविधियों का विकास किया। सर्वप्रथम मिश्रबन्धु, विनोद और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मीरां की निम्नलिखित तीन कृतियों का उल्लेख किया:

(1) गीत गोविन्द की टीका।
(2) नरसी जी रो माहेरो।
(3) राग गोविन्द।

अब निम्न कृतियाँ भी मीरांबाई द्वारा रचित मानी जाने लगी हैं :

(1) राग मल्हार, (2) राग बिहग, (3) सोरठ के पद, (4) मीरां नी गरबो, (5) फुटकर पद, (6) रुक्मिणी मंगल, (7) नरसी मेहता की हुंडी, (8) चरीत, (9) सतभामा नु रूसण। इन रचनाओं में से नरसी जी रो माहेरो, सोरठ पद, गरबो गीत व राग विहाग के फुटकर पदों से कुछ अंश को छोड़कर किसी भी रचना की मीरां की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं होती है।

मीरांबाई की पदावली ही मीरा की कृति में सर्वाधिक विश्वसनीय मानी जाती है। अभी तक इस पदावली के पदों की संख्या लगभग दो सौ मानी जाती थी किन्तु फिर भी मीरा की पदावली के पदों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत व्यक्त किए हैं। मीरा के प्रामाणिक पदों की संख्या निश्चित रूप से बताना कठिन है।

मीरां की पदावली का प्रकाशन सर्वप्रथम श्रीकृष्णानन्द देव व्यास द्वारा 'रागकल्पद्रुपम' के नाम से किया गया था। इस पद-संग्रह में राजस्थान, गुजरात और बंगाल में प्रचलित लगभग पैंतालीस पद संग्रहीत हैं।

नोट

5.4 शब्दकोश

1. **जनश्रुति–** परंपरा से चली आने वाली बात
2. **एकतान–** एक ही विषय का ध्यान रखने वाला, एकचित्त, तन्मयलीन
3. **समीचीन–** यथार्थ, ठीक, उचित, वाजिब
4. **अद्यतन–** आज का, चालू, ताजा
5. **गवेषणा–** खोज, अध्ययन, अनुसंधान

5.5 अभ्यास-प्रश्न

1. मीरांबाई के जीवन से संबंधित विभिन्न जनश्रुतियों का उल्लेख कीजिए।
2. मीरां की शिक्षा-दीक्षा एवं वैवाहिक जीवन पर एक लेख लिखिए।,
3. मीरांबाई की रचनाओं का परिचय दीजिए।

उत्तरः स्व-मूल्यांकन

1. (ग) 2. (क) 3. (ग) 4. (क)

5.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *मीरां माधुरी–* बाबू ब्रजरत्न दास, अनीता प्रकाशन, दिल्ली।

2. *संत मीरांबाई और उनकी पदावली–* सं. बलदेव वंशी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई–6: मीरा माधुरी– व्याख्या भाग (केवल लीला पद)

नोट

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

6.1 मीरा माधुरी– व्याख्या खण्ड (केवल लीला पद)

6.2 अभ्यास-प्रश्न

6.3 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- लीला पद के वैशिष्ट्य से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

मीरांबाई द्वारा रचित कही जानेवाली जो पूर्ण या अपुर्ण रचनाएँ प्राप्त हैं अथवा जिनका उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है, उनकी कुल संख्या ग्यारह है– गीतागोविन्द की टीका, नरसी जी का मायरा (अथवा मोहेरो), राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविन्द, सत्याभामानु रूसणं, मीरां की गरबी, रुक्मणीमंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरीत (चरित्र), स्फुट पद। इनमें से केवल 'स्फुट पद' ही मीरां की प्रामाणिक रचना है, अन्य रचनाओं में से कुछ तो किसी अन्य कृतिकार द्वारा रचित हैं तथा कुछ लोक-प्रचलित जनश्रुतियों अथवा किंवदन्तियों के आधार पर मीरां के नाम से सम्बद्ध हो गयी हैं। मीरां के स्फुट पद आजकल 'मीरांबाई की पदावली' के नाम से प्रकाशित रूप में प्राप्त हैं। यहाँ मीरां माधुरी में संग्रहित लीला पद के सार की व्याख्या प्रस्तुत है।

6.1 मीरा माधुरी– व्याख्या खण्ड (केवल लीला पद)

बाल-लीला

राग कनड़ी

हो कानाँ किन गुँथी जुल्फाँ कारियां ।।टेक।।
सुघर कल प्रवीण हाथन सूँ जसुमति जू णे सवारियाँ।
जो तुम आओ मेरी बाखरियाँ, जरि राखूँ चन्दन किवारियां।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ।।

शब्दार्थ–कानां = कन्हैया। **जुल्फाँ** = बाल। **कारियाँ** = काले। **सुघर** = सुन्दर। सवारियां = सजायी गई है। **बाखरियाँ**= छोटे-छोटे मकानों की ओर। **जरि राखूँ** = अच्छी तरह बन्द करके रखूँ। **वारियाँ** = न्यौछावार होती हूँ।

प्रसंग–इस पद में मीराँ ने श्रीकृष्ण के रूप की महिमा का वर्णन किया है।

व्याख्या–मीराँ अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे कन्हैया, तुम्हारी ये काली जुल्फें किसने

नोट

गूँथी है। मुझे ऐसा लगता है कि यशोदा माता ने स्वयं अपने सुन्दर और दक्ष हाथों से तुम्हारी ये काली लटें सँवारी हैं। हे प्रियतम, यदि तुम एक बार मेरे इन छोटे-छोटे मकानों में आ गये तो मैं अपने चन्दन के किवाड़ों को अच्छी तरह बन्द करके रख लूँगी जिससे कि तुम फिर से मेरे से अलग न हो सको। मीरां कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं जिनकी मनोहर लटों की शोभा पर मैं न्यौछावर होती हूँ।

विशेष–

(1) इस पद की तीसरी पंक्ति के संदर्भ में सूरदास की निम्न पंक्ति देखें–

जानति हौं गोरस को लेबो, बाहि आखरि मांझ।

(2) इस पद में श्रीकृष्ण के बालरूप का प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है।

राग परज

गोकुला का बासी भले ही आए, गोकुला के बासी ॥ टेक॥
गोकुल की नारि देखत, आनंद सुखरासी।
एक गावत एक नाँचत, एक करत हाँसी।
पीताम्बर फेटा बाँधे, अरगजा सुबासी।
गिरधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी॥

शब्दार्थ–गोकुला के बासी = गोकुलवासी अथवा श्रीकृष्ण। **भले ही** = बहुत अच्छा हुआ। **सुखरासी** = सुख की अपार निधि। **करत हांसी** = ठिठोली करती है। **अरगजा** = एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ। **सुनवल ठाकुर** = सुन्दर श्रीकृष्ण।

प्रसंग–इस पद में श्रीकृष्ण के आगमन के समय का मनोहारी वर्णन है।

व्याख्या–मीरा कहती है कि यह तो बहुत ही अच्छा हुआ कि गोकुलवासी श्रीकृष्ण आ गये। प्रियतम श्रीकृष्ण के आने पर गोकुल की नारियां आनन्द और सुख की उस अपार राशि अर्थात् श्रीकृष्ण को देख रही हैं। उनमें से कोई तो गा रही है, कोई नाच रही है और कोई हँसी-ठट्ठा कर रही है। मीरां कहती है कि श्रीकृष्ण ने पीताम्बर का फेंटा बाँध रखा है और उनका सुन्दर शरीर अरगजा से सुवासित हो रहा है। मीराँ कहती है कि यह एक संयोग ही है कि मुझे तो गिरधर श्रीकृष्ण जैसा सुन्दर स्वामी मिला और उन्हें मुझ जैसी दासी समर्पित किया।

विशेष–इस पद में मीराँ ने अपने प्रियतम के गोकुल-आगमन का बहुत हो मार्मिक वर्णन किया है। उसके आगमन पर किसी का नाचना, किसी का गाना और किसी का हँसी-मजाक करना–यह सब इसी तथ्य का परिचायक है कि मीरां के प्रियतम श्रीकृष्ण की रूप-छवि वस्तुतः जादू-भरी थी।

राग छाया टोड़ी

सखी म्हारो कानूड़ो, कलेजे की कोर ॥ टेक॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल की झकझोर।
बिन्द्रावन की कूंज गलिन में नाचत नन्दकिसोर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चितचोर॥

शब्दार्थ–कानूड़ो = कान्ह, श्रीकृष्ण। **कालेज की कोर** = हृदय का टुकड़ा। **झकझोर** = झलक। **चितचोर** = चित्त को चुराने वाले; श्रीकृष्ण।

नोट

प्रसंग–इस पद में मीराँ ने अपने प्रियतम को 'कलेजे की कोर' के सर्वोच्च पद से विभूषित किया है। यहाँ मीराँ के समर्पण की पराकाष्ठा देखी जा सकती है।

व्याख्या–मीरा अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी, मेरे प्रियतम कृष्ण तो मेरे हृदय के टुकड़े के समान हैं अर्थात मुझे अत्याधिक प्रिय हैं। उनके भाल पर मोरपंखी मुकुट और शरीर पर पीताम्बर सुशोभित हैं। उनके कानों के कुण्डल भी झलक मार रहे हैं। मेरे प्रियतम नन्दकिशोर वृन्दावन की कुँज गलियों में नाचते हुए फिरते हैं। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर हैं और उन्होंने ही मेरा चित्त चुराया है अर्थात् मेरे प्रियतम भी वही हैं। मैं उन्हीं के चरण कमलों के प्रति समर्पित हूँ।

विशेष–'कलेजे की कोर' का प्रयोग अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। इस प्रयोग से मीरां की आत्मीयता का परिचय मिलता है।

राग प्रभाती

जागो बंसीवारे ललना, जागो मेरे प्यारे ।।टेक।।
रजनी बीती भोर भयो है घर घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कँगवा के झणकारे।
उठो लालजी भोर भयो है सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वालन-बाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे।
माखन रोटी हाथ में लोही, गउवन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सरण आया कूँ तारे।।

शब्दर्थ–बंसीवारे = श्रीकृष्ण। **ललना** = लाल। **किंवारे** = किवाड़। **झणकार** = झंकार। **सुर नर** = देवता एवं मनुष्य। **भोर भयो है** = सवेरा हो गया है। **कूं** = को। **तारें** = तारते हैं।

प्रसंग–इस पद पर वैष्णव भक्ति का भरा-पूरा प्रभाव देखा जा सकता है। इस पद में मीरां श्रीकृष्ण के बाल-रूप का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है।

व्याख्या–मीरा ने अपने बालकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे बालकृष्ण, जागो, मेरे प्रिय जागो। रात बीत गई है और सवेरा हो गया है, घर-घर के द्वार खुल गए हैं इसलिए तुम भी जाग जाओ। गोपियों के घी मथने का शब्द, उनके कंगनों की झंकार में घुलमिल गया है। हे बालकृष्ण, सवेरा हो गया है अब उठ जाओ क्योंकि तुम्हारे द्वार पर देवता और मनुष्य सभी इकट्ठे हो गए हैं। तुम्हारे सभी ग्वाल-बाल शोरगुल कर रहे हैं और तुम्हारी जयजयकार कर रहे हैं। यह सब सुन कर बालकृष्ण ने मक्खन-रोटी ले ली। वह श्रीकृष्ण गउओं के रक्षक भी हैं। मीरां कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं जो अपनी शरण में आए हुए प्रत्येक व्यक्ति को इस भवसागर से पार लगा देते हैं।

विशेष–(1) इस पद पर वैष्णव भक्ति का सुस्पष्ट प्रभाव लक्षित है।

(2) **भाव**-साम्य की दृष्टि से कृष्ण-कवि सूरदास का निम्न पद द्रष्टव्य है:

प्रात भयौ, जागो गोपाल।
नवल सुन्दरी आई, बोलत तुमहिं सबै ब्रजबाल।
प्रगट्यों भानु, मंद भ्यो उड़पति, फूले तरुन तमाल।
दरसन को ठाढ़ी ब्रजबनिता, गूँथि कुसुम बन-माला।
मुखहिं धोइ सुन्दर बलिहारी, करहु कलेऊ लाल।
सूरदास प्रभु आनन्द के निधि! अम्बुज-नैन बिसाल।

नोट

वंशीवादन-लीला

मुरलिया बाजा जमणा तीर ॥ टेक ॥
मुरली म्हारो मण हर लीन्हो चित धराँ णा धीर।
स्याम कन्हैया स्याम कमर्याँ स्याम जमण रो नीर।
धुण मुरली सुण सुध बुध बिसराँ, जर जर म्हारो शरीर।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, वेग हर्या म्हा पीर॥

शब्दार्थ–मुरलिया = मुरली। **जमणा तीर** = यमुना नदी के किनारे। **कमर्याँ** = कामरी। **जमण रो** = यमुना नदी का। **जर जर** = जड़ीभूत। **हर्या** = हरो।

प्रसंग–यह पद श्री कृष्ण के वंशीवादन से सम्बन्धित है।

व्याख्या–मीरां कहती है कि यमुना नदी के किनारे वंशी बजी और उस वंशी की मधुर ध्वनि ने हमारा मन ही हर लिया। अब मेरे चित्त को धीरज नहीं रहता। अपने प्रियतम श्री कृष्ण का रूप-वर्णन करते हुई मीरा कहती है कि श्रीकृष्ण का रंग श्याम है और उनकी कामरी भी काली है। यमुना का जल भी श्याम (नीला) है। मीरां फिर कहती है कि प्रियतम की मुरली की धुन सुनकर मैं अपनी सुध-बुध खो बैठी हूँ और मेरा शरीर जड़ीभूत हो गया है। मीराँ कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर हैं। हे प्रियतम शीघ्र ही मेरी पीड़ा अर्थात् विरह-व्यथा को दूर करो।

विशेष–(1) इस पद पर वैष्णव भक्ति का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है क्योंकि वैष्णव भक्ति के अनुसार ही इस पद में श्रीकृष्ण की लौकिक मुरली की धुन को अलौकिकता प्रदान की गई है।

(2) भाव-साम्य की दृष्टि से कृष्ण कवि सूरदास का पद द्रष्टव्य है:

वांगनि की सुधि बिसरि गई।

स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भई।

जो जैसे सो रहि गई, सुख दुख कह्यौ न जाई।

लिखि चित्र सी सूर सु ह्वै रहि, इकटक पल बिसराई॥

राग कान्हरी

भई हों बावरी सुन के बाँसुरी, हरि बिन कछु न सुहाये माई ॥ टेक ॥
श्रवण सुनत मेरी सुध बुध बिसरी लगी रहत तामें मन की गाँसु री ।
नेम धरम कोण कीनी मुरलिया कोण तिहारे पासु री ।
मीराँ के प्रभु बस कर लोने सप्त ताननि की फाँसु री ॥

शब्दार्थ–हों = हूँ। **गांसुरी** = गाँस फँसाने का एक फन्दा। **कोण** = कौन से। **सप्त ताननि** = संगीत के सात स्वर (सा, रे, ग, म, प, ध, नि)।

प्रसंग–इस पद में भी श्रीकृष्ण के वंशीवादन की महिमा का वर्णन है।

व्याख्या– मीरां अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी, जब से मैंने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की मुरली की धुन सुनी है, मैं पागल हो गई हूँ और हे सखी, उस मुरली की धुनि के कान में पड़ने मात्र से मैं अपनी सुध-बुध खो बैठी हूँ और अब तो मेरा मन भी उसी फन्दे में फँसा रहता है। हे सखी इस मुरली ने, ऐसे कौन से नियमों तथा धर्म का पालन किया है कि इसकी धुन के सुनने मात्र से मेरी सुध-बुध खो गई।

नोट

इस मुरली को किसका सान्निध्य प्राप्त है जिससे कि इसकी धुन इतनी प्रभावशाली है। मीरां कहती है कि इस मुरली ने तो मेरे स्वामी को भी वंश में कर लिया है (तभी तो वे मेरे पास नहीं आते, मुरली में ही खोए रहते हैं)। मीरां कहती है यह मुरली सातों स्वरों की फांसी की तरह है।

विशेष–(1) इस पद की अन्तिम पंक्ति में सौतिया डन्ह का-सा स्वर सुनाई देता है। महाकवि सूरदास के निम्न पद में भी ऐसा ही भाव देखा जा सकता है:

सखी री, मुरली लीजै चोरि।
जिनि गुपाल कीन्हे अपनै बस प्रीति सबन की तोरि।
छिक इक घर-भीतर निसि-बासर, धरत न कबंहु जोरि।
कबहुं कर, कबहुं अधरनि कहि कबहुं खोंसत जोरि।
ना जानौं कछु मलि मोहिनी, राखे अंग अंग मोरि।
सूरदास प्रभु को मन सजनी बंध्यौ राग की ओर।

(2) इस पद की दूसरी पंक्ति के संदर्भ में सूरदास की निम्न पंक्ति देखें:

निरखिन देंखहु अंग-अंग अब चतुराई की गाँस।

(3) भाव-साम्य की दृष्टि से घनानन्द का निम्न पद भी महत्वपूर्ण हैं:

मुरली मे मोहन मंत्र बजावै कान्ह छबीला छैल।
ब्रज-गोरिन के मोहन लाग्यौ बरज्यौ न मानै अरैल।
रोम रोम आनन्दघन छायौ, बिरह बिथा को फैल।।

नाग-लीला

कमलदल लोचण थें नाथ्याँ काल भुजंग ।। टेक ।।
कालिन्दी दह नाग नाथ्याँ काल फलफण निर्त करत।
कूदाँ जल अन्तर णाँ डर्‌यौ थें एक बाहु अणन्त।
मीराँ रे गिरधर प्रभु नागर, ब्रजबणितााँ रो कंत।।

शब्दार्थ–कमलदल लोचणा = कमलों-सी आँखों वाला अर्थात् श्रीकृष्ण। **काल भुजंग** = मृत्यु का-सा भयंकर साँप। **कालिन्दी** = यमुना। निर्त = नृत्य। **करंत** = करते रहे। थें एक बाहु अणन्त = तुम एक हो किन्तु तुम्हारे भीतर अनन्य बाहुओं का सा सामर्थ है। **ब्रजब्रणितां रो** = ब्रज की नारियों के। **कन्त** = पति।

प्रसंग–प्रस्तुत पद का सम्बन्ध श्रीकृष्ण-जीवन की कालियानाग कथा से है।

व्याख्या–हे कमलदल की-सी आँखों वाले श्रीकृष्ण, आपने ही मृत्यु से भयंकर कालियानाग को नाथ दिया था। हे श्रीकृष्ण, तुमने उस नाग को यमुना की दह में नाथा था और फिर तुमने मृत्यु से भयंकर उस नाग के फण पर खड़े होकर नृत्य किया था। कालियानाग का मर्दन करने के लिए तुम निडर होकर यमुना के जल में कूद पड़े थे। हे श्रीकृष्ण, तुम एक हो किन्तु तुम्हारे भीतर अन्नत बाहुओं की-सी सामर्थ्या विद्यमान है। मीरां कती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर हैं और ब्रज की नारियां भी उन्हें पति-तुल्य मानती हैं।

विशेष–(1) इस पद में मीरां ने अपने प्रियतम के बल और शौर्य का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है।

(2) भावसाम्य की दृष्टि से सूरदासजी का निम्न पद द्रष्टव्य है:

बन बन ढूँढ़ि स्याम तहं आए, गोसुत ग्वाल रहे मुरझाइ।
मन में ध्यान करत ही जान्यो, काली उरग रह्याँ हनाँ आइ।

नोट

गरुड़ त्रास करि आइ रह्यौ दूरि, अन्तरजामी सबके नाथ।
अमृत दृष्टि भरि चितए, सूरप्रभु, बोलि उठे गावत हरिनाथ।।

(3) **पाठान्तरः कमलदल लोचना, तैने केसे नाथ्यो भुजंग।**

पेसि पिलाया काली नाग नाथ्यो फण फण पर निर्त करंत।
कूद पर्‌यो न डर्‌यो जल माँहि और करि नहीं संक।
मीरा के प्रभु गिरधरनागर श्री वृन्दावन चंद।।

(4) **कालियानाग सम्बन्धी अन्तर्कथा**–प्राचीन काल में कन्द्रू नामक नाग का एक पुत्र कालियानाग था जोकि गरुड़ के भय के कारण यमुना के दह में रहा करता था। कालियानाग ने युमना का सारा जल विषैला बना दिया था जिससे कि ब्रज के नर-नारियों के सामने एक विकट समस्या उत्पन्न हो गई। विषैला जल पीने के कारण ब्रज के अनेक नर-नारी परलोक सिधार गए। यह सुनकर श्रीकृष्ण यमुना की उसी दह में कूद पड़े जहाँ वह कालियानाग रहा करता था। श्रीकृष्ण ने केवल उस नाग को अपने वश में ही नहीं कर लिया अपितु उसके विशाल फण के ऊपर नृत्य करते रहे। बाद मे उन्होंने इस नाग को क्षमा कर दिया और वह नाग फिर से रमणक नामक द्वीप में प्रसन्नतापूर्वक रहने लगा।

चीरहरण–लीला

राग काफी

आज अनारी ले गयो, बैठी कदम की डारी, हे माथ ॥ टेक ॥
म्हारे गेल पड्‌यो गिरधारी, हे माय, आज अनारी।
मैं जल जमुना भरन गई थी, आ गयो कृष्न मुरारी, हे माय।
ले गयो सारी अनारी, म्हारी, जल में ऊभी उधारी, हे माम।
सखी साइनि मोरी हँसति हैं, हँसि हँसि वे मोहि गारी, हे माय।
सास बुरी अर नणद हठीली, लरि लरि मोहिं तारी, हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की बारी, हे माय।।

शब्दार्थ–अनारी = शरारती, श्रीकृष्ण। **कदम** = कदम्ब का वृक्ष। **माय** = सखी। **गेल पड्‌यो** = पीछे पड़ा हुआ है। **ऊभी** = खड़ी। **उधारी** = नग्न। **साइनि** = साथ रहने वाली सखियाँ। **अर** = और। **लरि-लरि** = लड़-लड़कर। **बारी** = न्यौछावर।

प्रसंग–प्रस्तुत पद कृष्ण-लीलाओं में चीरहरण के सन्दर्भ में है।

व्याख्या–मीरा अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी, आज तो शरारती श्रीकृष्ण मेरी साड़ी उठाकर ले गया और जाकर कदम्ब की डाली पर बैठ गया। हे सखी, यह श्रीकृष्ण तो मेरे पीछे पड़ा हुआ है। तभी तो आज मेरी साड़ी भी उठाकर ले गया है। मीरा कहती है कि मैं तो यमुना में जल भरने के लिए गई थी कि तभी प्रियतम श्रीकृष्ण भी वहां आ गया। तभी वह मेरी साड़ी उठाकर ले गया और मैं यमुना में नग्नावस्था में खड़ी रह गई। जब सदा मेरे साथ रहने वाली सखियों ने मुझे इस अवस्था में देखा तो वे हँसने लगीं और हँस-हँसकर मुझे गाली भी देती रहीं। हे सखी, अब मैं क्या करूँ। तू तो जानती ही है कि मेरी सास बहुत बुरी है, मेरी ननद भी हठीली है। जब उन्हें इस घटना का पता चलेगा तो वे दोनों हाथ मार-मारकर मुझसे लड़ेंगी। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर है और मैं उन्हीं के चरण-कमलों पर न्यौछावर हो गई हूँ।

विशेष–(1) भावसाम्य की दृष्टि से सूरदास का निम्न पद द्रष्टव्य है:

नोट

बसन हरे सब कबन चढाए।
सोरह सहस गोप- कन्यनि के, अंग-अभूवन सहित भुराए।
नीलाम्बर, पाटाम्बर, सारी, सेत, पीत, चूनरी, अरुनाए।
अति विस्तार नीव तरु तापै लै लै जहाँ तहाँ लटकाए।
मनि-आभरन डार डारनि प्रति, देखत छवि मनहिं बटकाए।
सूर स्यसामद जु तिनि व्रत पूरन को, फल डारनि कदम-कराए।

चीरहरण के ऐसे प्रसंग श्रीकृष्ण-लीला में सहज सुलभ हैं। मीरा क प्रस्तुत पद तथा सूरदास के उक्त पद में व्याप्त भाव-साम्य इस बात का परिचायक है कि श्रीकृष्ण के लीला-वर्णन में चीरहरण के प्रसंगों की भी परम्परा रही है।

(2) **पाठान्तरः भाटयौ मेरो चीर रे ओरारी रे, झट औ मेरो चीर।**

मेरो चौर कदम चढ़ बैठो, मैं जल बीच उघाड़ौ।
हाँ रे वाला में जल बीच उघाड़ी॥
ऊभी राधा अरज करत है, दो वीर जो दो बिरधारौ।
प्रभु में तेरे पाथ परुँगी॥
जो राधा तेरे चीर चहावत हो जल से हो ग्यारी।
हाँ रे वाला जल से हो जो न्यारी।
जल से न्यारी कान्ह कबुए न होवुँगी, तुम हो पुरुष हम तारी।
लाख मोकूँ आवत भारी॥
तुम तो कुँसर, नन्दलाल कहावो, मैं वृषभान दुलारी।
हाँ रे बाला मैं दृषभान दुलारी॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी।
चरण जाऊँ बलिहारी॥
झटक्यो मेरी चीर मुरारी ॥ टेक ॥
गागर रंग सिरते झटकी, बेसर मुर गई सारी।
छुटी अलक कुंडल तें उरझौ, झड़ पई कोर निकारी।
मनमोहन रसिक नागर भये, हो अनोखे खिलारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल गिरधारी॥

शब्दार्थ–झटक्यों = झटक दिया। **बेसर** = एक प्रवार वा आभूषण। **सारी** = साड़ी। **झड़ गई** = टूट गई। **रसिक** = चतुर। **खिलारी** = खिलाड़ी।

प्रसंग–यह पद भी श्रीकृष्ण द्वारा किए गए चीर-हरण से सम्बन्धित है।

व्याख्या–मीरा कहती है कि श्रीकृष्ण मुरारी ने मेरी साड़ी को झटक दिया और इस कारण मेरे सिर पर रखी हुई मटकी झटक गई। बेसर नामक आभूषण साड़ी में उलझ गया और उसके किनारे, कोने झड़ गए। मीरा कहती है कि मन को मोहने वाले श्रीकृष्ण चतुर नागर तथा अनोखे खिलाड़ी बन गये हैं। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधरनागर हैं और मैंने उन्हीं के चरण-कमलों में सिर रखा हुआ है।

नोट

मिलन–लीला

आवत मोरी गलियन में गिरधारी।
मैं तो छुप गई लाज की मारी ॥ टेक ॥
कुसुमल पाग केसरिया जामा, ऊपर फूल हजारी
मुकुट ऊपर छत्र बिराजे, कुण्डल की छबि न्यारी।
केसर चीर दरियाई को लेंगो, ऊपर अँगिया भारी।
आवत देखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै, नथनी की छबि न्यारी।
गल मोतिन की माल बिराजै, चरण कमल बलिहारी।
ऊभी राधा प्यारी अरज करत है, सुणजो किसन मुरारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी॥

शब्दार्थ–आवत = आते हुए। **कुसुमल** = लाल। **पाग** = पगड़ी। **जामा** = पहनावा। **हजारी** = सहस्त्र दलों वाले। **दरियाई** = रेशम। **लैगी** = लहँगा। **भारी** = उत्तम। **गल** = गले में। **ऊभी** = खड़ी हुई। **सुणजो** = सुन लीजिए। **बारी** = न्यौछवार हूँ।

प्रसंग–इस पद में मीरा के राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन किया गया है। हिन्दी साहित्य के समूचे कृष्ण-काव्य में राधा-कृष्ण का मिलन प्राय: सभी कृष्ण-कवियों ने किया है।

व्याख्या–मीरा कहती है कि जब मैंने श्रीकृष्ण को अपनी गला में आते हुए देखा तो मैं संकोच के कारण छिप गई। मीरा अपने प्रियतम की रूप-छवि का वर्णन करते हुए कहती है कि उन्होंने लाल रंग की पगड़ी बाँधी हुई है और केसरिया पहनावा धारण कर रखा है। सिर पर सहस्त्र दलों वाले फूल धारण किए हुए हैं। उनके मुकुट पर छत्र विराजमान है। और उनके कुण्डलों की शोभा भी न्यारी है। राधा की शोभा का वर्णन करते हुए मीरा कहती है कि उसने केसरिया रंग की साड़ी पहनी हुई है। मीरा कहती है कि कृष्णमुरारी को आता देखकर राधा भी छिप गई। राधा ने भी मोरपंखी मुकुट धारण कर रखा है जो कि अत्यन्त मनोहर लग रहा है। उसकी नाक की नथ की शोभा भी अनुपम है। उसके गले में मोतियों की माला सुशोभित है। मीरा कहती है कि मैं उनके चरण-कमलों पर न्यौछावर होती हूँ। हे कृष्ण मुरारी, राधा की विनती भी सुनो। राधा खड़ी हुई विनती कर रही है। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधरनागर श्रीकृष्ण है और मैं उनके चरण-कमलों पर न्यौछावर होती हूं।

विशेष–(1) इस पद में अर्थ-संगति का अभाव है क्योंकि पहली दो-तीन पंक्तियों में तो मीरा अपनी ही बात कहती है, बाद में अपने भावों को राधा पर आरोपित कर देती है और अन्तिम पंक्ति में फिर से स्वयं उपस्थित हो जाती है।

(2) राधा-कृष्ण मिलन का यही प्रसंग सूरदास ने इस प्रकार वर्णित किया है–

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बांधें, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी।
मोर-मुकुट, कुण्डल स्त्रवनिन वर दसन-दमक दामिनि-छवि-छोरी।
गए श्याम रवि-तनया कै तट, अंग लसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी लहें राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।

नोट

नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनि पीठि रुलाति झकझोरी।
संग लरकिनीं चलि इत आवति, दिन-थोरी अति छवि तन-गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥

नोट्स मीरा का संबंध राजघराने से था। अतएव जब मीरा कृष्ण प्रेम में दीवानी बनकर नाचने लगीं तो राज परिवार उनके इस रूप को सहर्ष स्वीकार न कर सका और मीरां को तरह-तरह से यातनाएँ दी गयीं।

पनघट–लीला

भाई मेरो मोहने मण हर्‌यो ॥ टेक ॥
कहा करूँ किस जाऊँ सजणी, प्रान पुरुष सूँ बर्‌यो।
हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे धर्‌यो।
सांवरी सी किसोर मूरत, कछुक टोनों कर्‌यो।
लोक लाज बिसारि ड़ारी तबहीं काज सर्‌यो।
दासि मीरा लाल गिरधर, छाने ये बर बर्‌यो॥

शब्दार्थ–मोहने = श्रीकृष्ण ने। **कहा** = क्या। **सजणी** = सखी। **प्रान पुरुब सूँ बर्‌यो** = मेरे प्राण प्रियठम कृष्ण से मिल गए हैं। **हूँ** = मैं। **कछुक टोनों कर्‌यो** = कुछ जादू-सा कर दिया। **काज सार्‌यो** = कार्य पूरा हुआ। **छाने** = चुपचाप।

प्रसंग–इस पद में मीरा ने पनघट-लीला का वर्णन किया है।

व्याख्या–मीरा अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी, प्रियतम श्रीकृष्ण ने मेरे मन को मोह लिया है। अब तू ही बता मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरे प्राण तो प्रियतम श्रीकृष्ण से मिल गए हैं। हे सखी, मैं सिर पर मटकी रखे जल भरने गई थी, तभी प्रियतम सांवले की मधुर छवि दिखाई दी। मीरा कहती है कि उस सांवली-सी छवि ने मुझ पर जादू-सा कर दिया और मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गई। परिणामत: मुझे लोकलाज, मर्यादा आदि को तजना पड़ा और तभी जाकर मेरा यह कार्य अर्थात् श्रीकृष्ण-प्रेम सिद्ध हो गया। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर हैं जिन्हें मैंने चुपचाप पति-रूप में स्वीकार कर लिया है।

विशेष–इस पद मे मीरा ने पनघट-लीला का वर्णन प्रस्तुत किया है। कृष्ण कवि सूरदास का पनघट-सम्बन्धी निम्न पद द्रष्टव्य है–

हाँ गई जमुना-जल साँवरे सौं मोही॥
केसरि की खौरि, कुसुम की दाम अभिराम।
कनुक-दुलरि कँठ, पीताम्बर खोही॥
नान्हौं नान्हीं बूदनि मैं, ठाढ़ौं गावैं मीठा तान।
मैं तो लाखन की छवि, नैकहै न जोही।
सूर स्याम मुरि मूसुक्यानी, छवि मँखियानि।
रहो हौं जानो री कहाँ हो और कोही।
प्रेमनी प्रेमनी प्रेममी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी ॥ टेक ॥
जल जमुना माँ भरवां गयां ताँ हती गागर माथें हेमनी रे।

नोट

काचे ते तातणे हरि जोए दाँधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
मौरां के प्रभु गिरधर नागर, शामल सूरत शुभ एमनी रे॥

शब्दार्थ–प्रेमनी = प्रेम की। **मने** = मुझे। **माँ** = में। **भरवाँ गयाताँ** = भरने के लिए गई थी। **हती** = थी। **हेमनी** = सोने को बनी हुई। **काचे ते तातणे** = प्रेम के कच्चे धागे से। **हरिजीए** = श्रीकृष्ण के। **जेम** = जैसे। **तेम-तभनी** = ठीक उसी प्रकार (जाता हूँ) **शामल** = साँवली। **शुभ** = सुन्दर। **एमनी** = ऐसी ही है।

प्रसंग–इस पद में श्री मीरा ने पनघट-लीला का ही वर्णन किया है। फिर भी इस पद में प्रेम का आवेग अपेक्षतया अधिक है।

व्याख्या–मीरा कहती है कि मेरे मन में प्रेम की कठार लग गई है। मीरा बताती है कि मैं यमुना में जल भरने गई थी और सिर पर सोने की मटकी रखी हुई थी। उसी समय प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम के कच्चे धागे में बँध गई और फिर जिस दिशा में प्रियतम मुझे खींचता रहा, मै उसी दिशा में खिंचती चली गई। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर श्रीकृष्ण हैं और उनकी साँवरी सूरत वस्तुत ऐसी ही है जिसे देखकर मैं उनकी ओर बलात् खिंची चली गई।

विशेष–(1) वीप्सा अलंकार का सफल प्रयोग किया गया है।

(2) भावसाम्य की दृष्टि से घनानन्द का निम्न पद द्रष्टव्य है–

गागरिया न भरन देत स्याम सुन्दर।
ब्रजमोहन रस को प्यासो डोले।
आनँदघन मोहिम्य झूक्यौ कहा कहौं चेटक,
चितवनि के सैनन ही बोलै।

(3) प्रस्तुत पद की तीसरी पंक्ति के संदर्भ में 'ढोला मारु रा दूहा' का निम्न दोहा द्रष्टव्य है–

'सालूणा पाँणी बिना रहइ विलक्खा जेम।
ढाढ़ी साहिब सूँ कहइ, मोमन तो विण एम।
राग हंस नारायण
आली साँवरो की दृष्टि, मानूँ प्रेम री कटारी हें ॥ टेक ॥
लगन बेहाल भई तन की सुधि बुद्धि गई।
तनह मैं व्यापी पीर, मण मतवारी हैं।
सखियाँ मिलि दोय च्यारी, बावरी भई हैं सारी,
हौं तो वाको नीको जाणो, कुंज को विहारी है।
चन्द को चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै,
जल बिना मरै मीन ऐसी प्रीत प्यारी है।
बिन देष्याँ कैसे जीवें कल ण परत हीये,
जाय बाकूँ ऐसे कहियौ मीराँ तो तिहारी है॥

शब्दार्थ–आली = सखी। **साँवरो** = श्रीकृष्ण। **प्रेम री** = प्रेम की। **लगन** = लगते ही। **बेहाल** = व्याकुल। तनह = शरीरी। **कल ण परत** = कल नहीं पड़ रहा है अर्थात् चैन नहीं पड़ रहा है। **देस्याँ** = देखे। **हीये** = हृदय। **बार्कू** = उसको।

प्रसंग–मीरा के श्रीकृष्ण-प्रेम का अत्यन्त भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत है।

नोट

व्याख्या–मीरा अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी, मेरे प्रियतम श्री कृष्ण की दृष्टि तो प्रेम की कटारी की तरह है जो हृदय के भीतर तक घाव कर जाती है। मीरा अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कहती है कि जब से मुझे श्रीकृष्ण की दृष्टि लगी है, मैं बेचैन हो उठी हूँ और अपनी सुध-बुध खो चुकी हूं। मेरे सारे शरीर में विरह की पीड़ा घर कर गई है और मेरा मन उनके प्रेम में दीवाना हो गया है। दो-चार सखियों की बात नहीं बल्कि सारी साखियां, मन को मोहने वाले श्रीकृष्ण को देखकर पागल हो गई हैं। मुझे तो यह बहुत अच्छा लगता है कि वे अर्थात् प्रियतम श्रीकृष्ण कुंजों में ही रहते हैं अन्यथा उन्हें देखने वाले सभी नर-नारी पागल हो जाते। प्रेम की रीति का वर्णन करते हुए मीरा कहती है कि चकोर केवल चन्द्रमा की अभिलाषा करता रहता है और दीपक प्रेम शलभ को जलाकर भस्म करता रहता है। जल में रहने वाली मछली बिना पानी के अपने प्राण त्याग देती है और प्रेम की यही प्यारी रीति है। इसी प्रकार मीरा भी कहती है कि मुझे भी अपने प्रियतम को देखे बिना चैन नहीं पड़ता, मेरा हृदय व्याकुल रहता है। मीरा अपनी सखी से कहती है कि हे सखी, प्रियतम को जाकर यह संदेश देना कि मीरा केवल उन्हीं की है।

विशेष–(1) प्रेम का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

(2) दृष्टान्त अलंकार काक सफल प्रयोग किया गया है।

क्या आप जानते हैं मीरा ने कृष्ण के सगुण रूप का वर्णन किया है किंतु मीरा की भक्ति में निर्गुण संतों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

फाग-लीला

होली झंझोटी

होरी खेलत हैं गिरधारी ॥ टेक ॥
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारो।
चन्दन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुँ देत सबन पैडारी।
छेल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तँह, दै दै कल करतारी।
फागु जू खेलत रसिक साँवरो बाढ्यो रस ब्रज भारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मोहनलाल बिहारी॥

शब्दार्थ–होरी = होली। **चंग** = एक प्रकार का बाजा। **डफ** = डफली। **बिहारी** = श्रीकृष्ण का ही एक नाम। **चार** = चाल। **धमार** = होली के अवसर पर गाय जाने वाला एक गीत। **कल** = सुन्दर। **करतारी** = हाथों की तालियाँ। **रस** = आनन्द। **मोहनलाल** = मोहनेवाले।

प्रसंग–प्रस्तुत-पद में मीरा ने फाग-लीला का वर्णन किया है।

व्याख्या-फाग-लीला का वर्णन करते हुए मीरा कहती है कि श्रीकृष्ण होली खेल रहे हैं। श्रीकृष्ण के साथ ब्रज की नारियां हैं और सब मिलकर मुरली, चंग तथा डफ बजाते हैं। स्वयं श्रीकृष्ण अपने ही हाथों से चन्दन और केसर छिड़कते हैं और मुट्ठी में गलाल भर भरकर सब पर छिड़क रहे हैं। फाग-लीला में छैलछबीले युवक श्रीकृष्ण के साथ प्यारी अर्थात् राधा भी सुशोभित हैं। वहाँ पर पैरों की चाल के साथ-साथ बमार राग गाया

नोट

जा रहा है और लोग तालियां बजा-बजाकर होली के पर्व का आनंद उठा रहे हैं। मीरा कहती है कि जब रसिक श्रीकृष्ण स्वयं होली खेलते हैं तो सारे ब्रज में आनन्द ही आनन्द छा जाता है। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो मन को मोहने वाल श्रीकृष्ण हैं।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही [✓] अथवा गलत [X] का निशान लगाइए–

1. मीरां ने सदा अविवाहित रहकर भगवान श्रीकृष्ण की उपासना की। ☐
2. मीरां की भाषा गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी तथा ब्रज मिश्रित है। ☐
3. मीरां की अधिकांश रचनाओं की विश्वसनीयता विवादास्पद है। ☐
4. मीरां कृष्ण द्वारा वासुकी नाग के फन पर बैठकर वंशी बजाने के कारण ही मोहित हो गई थी। ☐

दधि–बेचन–लीला

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।।
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, ओ मिले बाबा नन्दजी के छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी, 'ले लेहु री कोई श्याम सलोना'।
बृन्दावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मनमोहना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुधर सलोना।।

शब्दार्थ–टोना = जादू। **देख्यो** = देखा। **मटुकी** = मटकी। **नन्दजी के छोना** = श्रीकृष्ण। **बिसरि गयो** = भूल गया। **आँख लग्ण्य** = आँखें लगाकर। **रसलोना** = लावण्य, रस वाला अथवा श्रीकृष्ण।

प्रसंग–प्रस्तुत पद दधि-बेचन-लीला का ही पद है।

व्याख्या–मीरा अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी, इस ब्रज में तो मैंने कुछ जादू की-सी बात देखी। मीरा कहती है कि गुजरिया सिर पर दही की मटकी रखकर चलती है और आगे उसे श्रीकृष्ण मिल जाते हैं। श्रीकृष्ण के रूप के जादू से विमोहित वह गूजरी दही का नाम तो भूल जाती है और 'दहीं' ले लो के स्थान पर कह उठती है 'सलोना श्याम ले लो'। मन को मोहन वाला श्रीकृष्ण वृन्दावन की कुंज गलियों मे मिल गया और गुजरिया में आँख लगा गया अर्थात् उसमें प्रेमभाव सुन्दर और लावण्य रस से परिपूर्ण हैं।

विशेष–(1) इस पद में 'ले लेहु री कोई श्याम सलोना' पद्यांश में मीरा का प्रेम-भाव साकार-सा हो उठा है। अपने प्रिय के प्रति मीराँ का इसी प्रकार आत्म विभोर हो जाना थी कि वह स्वयं को ही कृष्ण मान बैठी थीं।

(2) इसी प्रकार विद्यापति की राधा भी अपने प्रियतम के प्रेम में इतनी भाव-विभोर हो गई उसके प्रेम की निश्छलता और पवित्रता का द्योतक है।

अनुखन माधव माधव सुमरइत, सुन्दरि भेलि मधाई।
ओं निज भाल सुँभावहिं बिसाल अपने गुन लुबुधाई।

(3) भाव-साम्य की दृष्टि से सूरदास के निम्न पद द्रष्टव्य हैं–

कोउ माई लैहे री गोपालहिं।
वधि कौ नाम स्यामसुन्दर-रस, बिसर गयौ ब्रज बालहिं।

नोट

कहना न होगा कि मीरा के प्रस्तुत पद की तीसरी पंक्ति का उत्तरार्द्ध सूर की उक्त पंक्तियों के अत्यन्त निकट दिखाई देता है।

इसी प्रकार सूरदास ने भी अपने कतिपय पदों में दधि बेचन-लीला का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए उनके निम्न पद्यांश देखिए–

(क) **ग्वालिन प्रगट्यौ पूरन नेहु।**

दधि-भावन सिर पर धरे कहति गोपालहिं लेहु

(ख) **गोरस को निज नाम भुलायो।**

लेहु लेहु कोई गोपालसिंह, गलिन गलिन यह सोर लगायौ।
कहां कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया ।।टेक।।
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में, गहे लींणो मेरो हाथ।
दधि मेरो खायो, मटकिया फोरी, लीणो भुज भर साथ।
लपट झपट मोरी गागर पटकी, साँवरे सलौने लोने गात।
कबहुं न दान लियो मनमोहन, सदा गोकुल आत जात।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जणम जणम के नाथ।।

शब्दार्थ–बिन्द्रावन = वृन्दावन। **गहे लीणों** = हाथ में हाथ लेकर चलना। **भुज भर** = बाँहों में। **लीणो** = सुन्दर। **दान** = दही का दान। **नाथ** = स्वामी।

प्रसंग–इस पद में दधि-बेचन-लीला का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत है।

व्याख्या–मीरा कहती है कि गोपियां सिर पर दही की मटकी लिए घूमती फिरती हैं और आवाज यही लगाती हैं 'कोई मनोहर श्याम को ले लो।' वे गोपियां श्रीकृष्ण की रूप-छवि को देखकर इतनी उन्मत्त-सी ही गई हैं कि उन्हें दही का नाम तो याद नहीं रहा और उसके स्थान पर 'हरि को ले लो' कहने लगीं। मीरा कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधरनागर हैं और मैं तथा वे गोपियों, सभी तुम्हारी बिना मूल्य की दासियाँ बन गई। श्रीकृष्ण की जादू-भरी रूप-छवि का वर्णन करते हुए मीराँ कहती है कि जिन गोपियों ने श्रीकृष्ण की अपार शोभा को जी भर कर देख लिया है, वे उनमत्त हो गई हैं और प्रेमोन्माद की इस स्थिति में कुछ का कुछ बोलती हैं।

विशेष–(1) प्रेमाधिक्य की स्थिति में मनुष्य को अपनी सुध-बुध नहीं रहती और फिर वह उसी के दिव्य-आलोक में आकण्ठ डूब जाना चाहता है। इस पद की अन्तिम पंक्ति 'औरहिं औरे बोलै' गोपियों की इसी मन:स्थिति की परिचायक है।

(2) भावसाम्य की दृष्टि से सूरदास का निम्न पद द्रष्टव्य है:

दधि-मटुकि सिर लिए ग्वालिनी कान्ह कान्ह करि डोलै ही।
बिबस भई तनु-सुधि न सम्हारे आपु बिकी बिनु मोलै ही।
जोइ ओर पूछै यामै कह लेहु लेहु कहि बोलै री।
सूरदास-प्रभु-रस-बस ग्वालिन विरह भरी फिरै होलै री।

6.2 अभ्यास-प्रश्न

1. मीरा द्वारा रचित कृष्ण का बाल वर्णन एवं सूरदास के बाल वर्णन का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
2. नागलीला के आधार पर कृष्ण के जग उद्धारक रूप का विवेचन कीजिए।

नोट **उत्तरः स्व-मूल्यांकन**

1. [X] 2. [✓] 3. [✓] 4. [X]

6.3 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *मीरां माधुरी*– बाबू ब्रजरत्न दास, अनीता प्रकाशन, दिल्ली।
2. *संत मीरांबाई और उनकी पदावली*– सं. बलदेव वंशी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–7: मीरा माधुरी– लीला पद का सार

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

7.1 लीला पद का सार

7.2 शब्दकोश

7.3 अभ्यास–प्रश्न

7.4 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- लीला पद के सार से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

मीराबाई की सर्वाधिक विश्वस्त रचनाओं में मीरा की पदावली को माना जाता है। इसमें मीरा ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति अपना प्रेम भाव प्रकट किया है। मीरा का यह प्रेम भाव निस्संदेह अत्यंत गहन और तीव्र होता हुआ भी लौकिक प्रेम से बहुत दूर है। उसमें केवल एक प्रेमदग्ध हृदय की छटपछाहद एक प्रेम हृदय की मिलनाकाँक्षा के ही दर्शन होते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु की प्रति प्रेम–निवेदन करता है, तो उसका प्रथमाकर्षण उस व्यक्ति अथवा वस्तु की बाह्य साज–सज्जा रंग–रूप आदि ही होता है। निराकार के प्रति भक्त केवल अपना आर्त्त हृदय ही रख सकता है। योग और साधना के अनेकानेक सोपान तय कर सकता है। परंतु फिर भी उसके किसी बाह्य रूप की कल्पना नहीं संजो सकता। मीरा ने अपने प्रियतम के बाह्य रूप सौंदर्य को जी भर निहारा है। श्रीकृष्ण के बाह्य–रूप–रंग का वर्णन करने में मीरा ने कोई कसर नहीं उठा रखी है। मीरा का प्रेम साकार और सगुण भक्ति का ही एक रूप है।

मीरा के काव्य में मानवीय रूप–सौंदर्य से कहीं अधिक प्रभाव–पूर्ण वर्णन भाव–सैंदर्य का है। और इसका कारण यह है कि मीरा का लक्ष्य तो प्रियतम के प्रति सर्वस्व समर्पित कर देना है। यहाँ मीरा द्वारा रचित लीला पद का सार प्रस्तुत है।

7.1 लीला पद का सार

मीरा ने कृष्ण की विभिन्न प्रकार की लीलाओं को अलग–अलग रूपों में रचनाबद्ध किया है। बाल लीला में मीरा ने श्रीकृष्ण के बालक रूप का वर्णन किया है। कृष्ण की गूँधी हुई चोटी पर मोहित मीरा कहती है कि हे प्रियतम मैं तुम्हारे इस रूप को हृदय में बंद कर लूँगी। मीरा कृष्ण के हर रूप पर स्वयं को न्योछावर करती हैं। तन पर पीतांबर डाले कृष्ण के सौंदर्य को जादू भरी छवि के रूप में देखती हैं। कृष्ण का अति यौवन रूप चित्तचोर है। तन पर पीतांबर, कानों में कुण्डल, सिर पर मोर मुकुट की शोभा को देखकर मीरा उनके चरणों में स्वयं को समर्पित कर देना चाहती है। मीरा कृष्ण को प्रियतम कहती है किंतु स्वयं को सदैव सदैव चरणों की दासी ही समझती है।

नोट

मीरा श्रीकृष्ण को प्रतिदिन की जीवन-चर्या से भी जोडती हैं उन्हें गोपियों संग रासलीलाएँ गउओं की रक्षा एवं मक्खन रोटी खाने के लिए सुबह सवेरे जगाती हैं। कृष्ण की मुरली की तान मन के समस्त दुखों को हर लेने वाली है। मुरली की धुन ने तो मीरा की सुधि-बुधि छीन ली है। शरीर को जड़ बना दिया है और मुरली ही है जो प्रियतम कृष्ण को मेरे समीप आने से रोकती है।

नोट्स मीराबाई का नाम भारत के महान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभादासजी, ध्रुवदास, व्यासजी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है।

नाग लीला में मीरा कृष्ण के उस जगपालक रूप का बखान करती है जिसने कालिया नाग के फन पर खड़े होकर नृत्य किया था। वह नाग जिसने यमुना के जल को विषैला बना दिया था, कृष्ण ने उसे अपने वश में करके ब्रज के नर-नारियों के दु:ख को हर लिया था।

चीरहरण लीला में मीरा स्वयं को गोपी के रूप में देखती हैं वह कृष्ण की उन लीलाओं का वर्णन करती हैं जब कृष्ण यमुना में स्नान करते समय गोपियों के वस्त्र उठा ले जाया करते थे। गोपियां जहां कृष्ण के इस कृत्य के कारण ब्रज समाज से डरती हैं कि लोग क्या कहेंगे। वहीं मीरा को अपनी सास, ननद का भय सताता है। यहाँ प्रेम में चुहल का श्रृंगारिक वर्णन है।

मिलन लीला में मीरा ब्रज की गलियों में कृष्ण के आगमन के कारण संकोच से छिपकर प्रिय को देखने का वर्णन करती हुई कहती है कि केसरिया रंग का वस्त्र धारण किए कृष्ण की शोभा न्यारी है। पनघट लीला में श्रीकृष्ण के यमुना किनारे पन की लीलाओं को वर्णन है। मीरा अपनी सखियों को संबोधित करके कहती है कि सखि; मैं मटकी भरने गई थी और प्रियतम कृष्ण वहाँ आ गए हैं इस प्रकार मैं लोक लाज भी न रख लकी और कृष्ण के प्रति मेरा प्रेम जग जाहिर हो गया। मैं ने उन्हें चुपचाप हृदय से पति मान लिया है।

क्या आप जानते हैं मीराबाई का विवाह उदयपुर के महाराणा कुवंर भोजराज के साथ हुआ था।

स्व-मूल्यांकन

रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

1. फाग लीला राग ..... में लिखा गया है।
2. ऐसा कहा जाता है कि एक बार मीरा ने परेशानियों से तंग आकर भक्तिकालीन कवि ..... को पत्र लिखा था।
3. ..... लीला में कृष्ण द्वारा नाग के फन पर नृत्य करने का वर्णन है।

फाग लीला में होली का वर्णन है। ब्रज में सब नर-नारी कृष्ण संग मिलकर एक-दूसरे पर गुलाब छिड़क रहे हैं। कृष्ण जब होली खेलते हैं तो संपूर्ण ब्रज आनंदमय हो जाता है। मीरा कहती है कि ब्रज में कृष्ण का जादू ऐसा है कि दही बेचने वालियां 'दही' का नाम भूलकर कृष्ण का नाम लेने लगती हैं और वही मनमोहन छवि मीरा के मन को हर लेती है।

नोट

7.2 शब्दकोश

1. **आर्त्त हृदय–** दुखी मन
2. **चुहल–** हँसी-मजाक

7.3 अभ्यास प्रश्न

1. लीलापद का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. झिंझोटी **2.** तुलसीदास **3.** नाग

7.4 संदर्भ पुस्तकें

1. *मीरां माधुरी–* बाबू ब्रजरत्न दास, अनीता प्रकाशन, दिल्ली।
2. *संत मीरांबाई और उनकी पदावली–* सं. बलदेव वंशी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–8: मीरां माधुरी– भाषा-शैली

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

8.1 मीरां माधुरी– भाषा शैली

8.2 सारांश

8.3 शब्दकोश

8.4 अभ्यास-प्रश्न

8.5 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- मीरां की भाषा-शैली से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

मीरांबाई का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेमोच्छवास का साकार रूप है। उनकी वृत्ति एकान्तत: और समग्रत: प्रेम में ही रमी है। अपने आराध्य 'गिरधर गोपाल' की विलक्षण रूप-छटा के प्रति उनकी अनन्य आसक्ति अनेकत्र शब्द-धारा बनकर फूट पड़ी है। कृष्ण-प्रेम में मतवाली मीरां ने मन-ही-मन उनके मधुर मिलन के स्वप्न संजोकर तज्जन्य आनन्द की अनेकविध व्यंजना की है, किंतु उनकी कविता का प्रमुख रस विप्रलम्भ श्रृंगार है उनकी विहर-भावना का कोई ओर-छोर नहीं। प्रेमोन्मादिनी मीरां का एक-एक पद उनके हृदय की इस आकुलता का परिचायक है। यथा:

बिरहनी बावरी सी भई।
ऊंची चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय दई।
ले अंचरा मुख अंसुवन पोंछत उघरे गात सही।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर बिछुरत कछु न कहीं।।

वियोग श्रृंगार के अतिरिक्त मीरां-काव्य में शान्त रस की भी व्यंजना हुई है। सांसारिक धन-वैभव की क्षणभंगुरता का बारम्बार उल्लेख करते हुए उन्होंने निर्वेद-भाव की अभिव्यक्ति की है। उनकी भक्ति भाव-पद्धति और शास्त्रीय पद्धति दोनों दृष्टियों से सारयुक्त है, किंतु उसमें शास्त्र-दृष्टि स्पष्टत: सीमित और भाव-पक्ष सबल है। वास्तव में माधुर्य और दैन्य भाव उनके काव्य में घुल-मिलकर एक हो गये हैं।

8.1 मीरां माधुरी– भाषा शैली

मीरां की पदावली में किसी एक ही भाषा का प्रयोग नहीं है। मुख्यत: ब्रजभाषा, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती भाषाओं का प्रयोग किया गया है। तथापि मीरां की पदावली में सर्वाधिक प्रयोग राजस्थानी भाषा का हुआ है

नोट

और इसका एक मात्र कारण यही है कि मीरां का जन्म तथा उनका अधिकांश जीवनकाल राजस्थान में ही बीता था। इसके साथ ही मीरां की पदावली की भाषा के निर्धारण के सम्बन्ध में एक अन्य कठिनाई यह है कि इस पदावली मे अनेक प्रक्षिप्तांश जुड़ गए हैं और इसलिए उनके काव्य तथा जीवन की ही तरह भाषा का प्रश्न भी विवादपूर्ण है। उदाहरण के लिए मीरां की पदावली के निम्न पद द्रष्टव्य हैं जो कि इस बात के परिचायक हैं कि मीरां ने प्राय: उक्त चारों भाषाओं का साधिकार प्रयोग किया है:

राजस्थानी :

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ,
मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।
साजणियाँ दुसमण होय बैठ्याँ,
सबने लगूँ कड़ी।

ब्रजभाषा :

यहि विधि भक्ति कैसे होय
मन को मैल हियते न छूटी
दियो तिलक सिर धोय।

पंजाबी :

हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ।
सुघर कल प्रवीण हाथन सूँ, जसुमति जूणे सांवरियाँ।
जो तुम आओ मेरी बाखरियां, जरि राखूँ चन्दन किवारियाँ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ।

गुजराती :

प्रेमनी प्रेमनी रे प्रेमनी लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुना मां भरवा गयाँताँ।
हती गागर माथे हेमनी रे।
काचे ते तातणे हरिजीए बाँधी,
जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
शामल सूरत शुभ एमनी रे।

जहाँ तक मीरां की भाषा की विशेषताओं का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मीरां का समूचा काव्य मूलत: भाव-प्रधान है। मीरां के काव्य में भावपक्ष ही अधिक मुखरित हो पाया है और उसमें कलागत सौन्दर्य को ढूँढ़ने का प्रयास करना अकारथ ही होगा। मीरां का काव्य सौन्दर्य, मीरां के प्रेमी हृदय का सौन्दर्य है। मीरां के सम्बन्ध में डॉ. भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' के निम्न शब्द मीरां के पदों की भाषा का स्वरूप निर्धारण करने में भी सहायक हो सकते हैं: "चार सौ वर्ष से ऊपर हुए, प्रभु ने पृथ्वी पर प्रेम की एक पुतली भेजी थी। वह आई प्रभु प्रेम में छकी हुई, प्रभु के आलिंगन में डूबी हुई, प्रभु के रूप में भूली हुई वह आई। प्रभु

नोट

की मुरली में अपने प्राण ढाल कर, प्रभु के पीताम्बर पर अपने को निछावर कर, प्रभु की मन्द-मन्द मुसकान पर अपना सब-कुछ दे डाल कर, प्रभु के चरणों के नीचे अपना हृदय बिछा कर वह अल्हड़ योगिनी पैरों में घुँघरू और हाथ में करताल लेकर नाच उठी और प्रेम के आनन्द में विभोर होकर गा उठी।" यह था मीरां का वास्तविक स्वरूप और इस आधार पर मीरां को एक 'कवयित्री' से अधिक 'प्रेम-दीवानी' कहना और मानना ही उनके समग्र मूल्यांकन की दृष्टि से न्यायोचित कहा जा सकता है।

क्या आप जानते हैं मीरां की भाषा व्याकरण सम्मत न होकर भावानुकूल अनुभूति की भाषा है।

मीरां की ही तरह उनके काव्य की भाषा भी व्याकरण की नहीं अपितु अनुभूति की भाषा है, उसमें शब्दों का चमत्कार, और पच्चीकारी तो संभवत: देखने को न मिले किन्तु इतना तो निश्चित है कि उनका प्रत्येक पद, पद की प्रत्येक पंक्ति, पंक्ति का प्रत्येक शब्द और शब्द में छिपा प्रत्येक मानवीय भाव मानव हृदय को झकझोर देने में पूर्ण समर्थ है। उनकी अनुभूति इतनी तीव्र ईमानदार है कि सीधे-सादे शब्दों में 'घाव करने' की अपार क्षमता छिपी हुई है। 'प्रेम की दीवानगी' से ओत-प्रोत प्रत्येक शब्द किसी भी सहृदय पाठक के अन्तर्तम की टोह लेकर आता है। तथापि अध्ययन की दृष्टि से मीरां की भाषा की निम्न विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं:

(1) भावानुकूल शब्दों का प्रयोग–कवि की अनुभूति जितनी गहरी और तीव्र होगी, उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही सजीव और सशक्त होगी। प्रत्येक शब्द अनुभूति के पारस-स्पर्श से कुन्दन-सा प्रतीत होगा। मीरां के समक्ष काव्य-रचना का उद्देश्य नहीं था अपितु यह तो मात्र एक साधन था। मीरां का मूल उद्देश्य तो अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को रिझाना था। उनके समक्ष अपने भावपूर्ण हृदय को बिछा देना था, उनकी अपार सौन्दर्य-छवि के सम्मुख भाव-विभोर होकर नाच उठना था–

महां गिरधर आगां नाच्यारी।
णाच णाच म्हां रसिक रिझावां, प्रीत पुरातन जांच्यां री।
स्याम प्रीत रो बांधि घुँघरयां मोहण म्हारो सांचयां री।
लोक लाज कुलरा मरज्यादां जगमां णेकण राख्यां री।
प्रीतम पल छब णा विसरावां, मीरां हरि रंग राच्यां री।

मीरां ने प्रेम की पीर को अभिव्यक्त करने में तो सम्भवत: अपूर्व सफलता प्राप्त की है। विरह-दग्ध हृदय का इतना सच्चा और हृदय को छू देने वाला काव्य चित्र सहज ही सुलभ नहीं होगा–

हेरी म्हां दरद दिवाणां दरद न जाण्यां कोय।
घायल रीगत घायल जाण्यां, हिबड़ो अगण संजोय।
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्या जाण्यां जिण खोय।
दरद की मार्‌या दर दर डोल्यां बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरां री प्रभु पीर मिटांगां जब वैद सांवरो होय।

इस पद के प्रत्येक शब्द में अपार शक्ति और भावप्रवणता छिपी हुई है। ऐसा लगता है कि प्रेम की पीर में दीवानी मीरां ने अपने हृदय का समूचा 'दर्द' उंडेल दिया है।

टास्क मीरां की भाषा के भावपक्ष पर टिप्पणी कीजिए।

नोट

(2) प्रवाहमयता– काव्य की भाषा में अबाध प्रवाह का होना भी आवश्यक माना गया है। कभी-कभी अत्यधिक भाव-प्रधान कविता में भाषा भावों का साथ नहीं दें पाती और पीछे रह जाती है किन्तु इस सम्बन्ध में मीरां की पदावली अत्यधिक सफल कृति कही जा सकती है क्योंकि मीरां के भाव और उनकी भाषा साथ-साथ चलती रही है। भावों की प्रवणता के साथ-साथ भाषा का निर्बाध प्रवाह भी बना हुआ है। इस सम्बन्ध में मीरां का निम्न पद द्रष्टव्य है–

रमैया बिन नींद न आवै।
नींद न आवे विरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावै।
बिन पिया जोत मनिदर अधियारी, दीपक दाय न आवै।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी, जागत रैण बिहावै।

(3) संगीतात्मकता– काव्य और संगीत दोनों में शब्दों का सर्वोपरि महत्व बना रहता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध विचारक वागनेर की तो मान्यता यह रही है कि गीत सृष्टि का सर्वोच्च रूप वह है जिसमें श्रेष्ठ संगीत के साथ श्रेष्ठ काव्य भी हो।

मीरां के पदों में संगीतात्मकता का पूरा निर्वाह हुआ है। उनके पदों में अनेक राग-रागनियों के उदाहरण मिलते हैं। राग विहार का एक उदाहरण देखिए–

करम गत टारां णाही टरां
सतवादी हरिश्चन्दा राजा, डोम घर णीरां भरां।
पांच पांडु की राणी द्रुपदा, हाड़ हिमालां गिरां।
जाग किवा बलि लेण इन्द्रासन, जायाँ पाताल पराँ।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, बिखरूँ अमृत कराँ।

मीरां की पदावली में प्रयुक्त उल्लेखनीय राग-रागनियों में राग हमीरां, गूजरी, पीलू, पहाड़ी, बरवा, बिहागरा, सोरठ, दरबारी, मलार, टोड़ी असावरी, घनाश्री, बिहाग, मालकोस, ललित, सारंग, प्रभाती, धमार आदि के नाम परिगणित किए जा सकते हैं। अपने काव्य में संगीतात्मकता लाने के लिए मीरां ने शब्दों को यथा आवश्यकता तोड़ा-मरोड़ा भी है। उदाहरण के लिए कुछ शब्दों के मूल तथा प्रयुक्त रूप नीचे दिए गए हैं–

(1) शब्दों में लोच : बुलाया से बुलाइया। राम से रमैया, टूटा से टूट्या, मूरली से मूरलिया, पपीहा से पपइया, घुंघरू से घूँघर्‌यां, किवाड़ से किवरियों।

(2) संयुक्त शब्दों का अमीलित रूप: निर्मल का निरमल, रत्न का रतण, दर्शन का दरसण, कृपानिधान का किरपानिधान, अमृत का इमरत, प्रभात का परभात।

(3) शब्दों का विकृत रूप: हृदय का हिबड़ो, स्वप्न का सुपुनां, आंगन का आंगणां, संदेश का संदेसा, स्नेह का नेहड़ा, निद्रा का नींदड़ी, जीव का जीवड़ा।

(4) आत्मीयता के परिचायक सम्बोधनवाची शब्दों का प्रयोग:

(क) हे माँ बड़ी बड़ी अंखियन वारो।

(ख) हे मेरो मनमोहनो।

(ग) हे री म्हा दरद दिवाणी।

(घ) हेली म्हांसू हरि बिनि रह्या न जाय।

नोट

(4) **उपयुक्त शब्द चयन–** भावों की तीव्रता और गहनता की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की निष्ठा स्वभावत: सामान्य स्तर को छोड़ देती है। इस दृष्टि से मीरां हिन्दी के सर्वाधिक सफल कवियों में परिगणित की जा सकती हैं। क्योंकि, उनकी भाषा का परिवेश उनक भावों के अनुरूप ही रहा है। मीरां का शब्द–चयन वस्तुत: इतना उपयुक्त है कि किसी भी शब्द का स्थानापन्न उसे पूर्णत: अपदस्थ नहीं कर सकता:

(क) म्हारौ री गिरधर गोपाल दूसरा णा कूयाँ।
दूसरा णा कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ।

(ख) बस्या म्हारे णेणण माँ नन्दलाल।

(ग) म्हारो प्रणाम बाँके बिहारी जी।

नोट्स कविता अथवा शायरी में संगीतात्मकता, तुकांत आदि के प्रयोजन से शब्दों को तोड़ा–मरोड़ा जाता है। मीरां के काव्य में भी इसके दर्शन होते हैं यथा– निद्रां का निंदड़ी, जीव का जीवड़ा आदि।

(5) **राजस्थानी प्रभाव–**

(1) हिन्दी में जिन शब्दों में 'न' का प्रयोग होता है, राजस्थानी में उसके स्थान पर 'ण' अथवा 'णा' का प्रयोग किया जाता है, जैसे: **नयन से णेण, जमना से जमणा, मिलन से मिलण, मोहन से मोहणा, किन से किण।**

(2) (क) हिन्दी के पुल्लिग आकारान्त शब्द राजस्थानी में औकारांन्त हो जाते हैं और उनके बहुवचन बनाते समय आकारान्त हो जाते हैं, जैसे **: दूसरो से दूसरा, म्हारो से म्हारा, नेहरो से नेहरा।**

(ख) इकारन्त अथवा ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों को बहुवचन बनाते समय 'यां' अथवा 'इयाँ' प्रत्यय लगाते हैं, जैसे **: सहेली से सहेल्यां, झांझर से झांझरियां, आंख से अंखियां।**

(ग) उकारान्त अथवा ऊकारांत शब्दों का बहुवचन बनाने में 'वां' अथवा 'उवां' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे **: कुटुम्ब से कुटुम्बां।**

(3) कारण तथा अपादान कारकों के प्रयोग के लिए सूँ, से, तें आदि का प्रयोग होता है जैसे म्हांसू, एकरसूँ। इसी प्रकार कर्म एवं सम्प्रदान कारकों के लिए ज्याकूँ, त्याकूँ आदि का प्रयोग किया जाता है।

(4) सर्वनाम भी राजस्थानी भाषा से पूर्णत: प्रभावित हैं:

(क) उत्तम पुरुष = हूं मैं
कर्त्ता = म्हे, म्हाँ
करण एवं सम्प्रदान = म्हासूँ, म्होसूं
कर्म एवं सम्प्रदान = म्हाँने, मोकूँ
अधिकरण = हम पर, मो परि
सम्बन्ध = म्हांरा, मोरा, म्हाँरो, मो।

(ख) मध्यम पुरुष :
कर्त्ता = यें, तुम
करण एवं अपादान = तो सें, तो सूं
कर्म एवं सम्प्रदान = थाँने, तोइ

नोट

सम्बन्ध = थाँरो, थारो, तुमरी, रावरी, थाँको।

(ग) अन्य पुरुषः

वह का वो

यह का यो

कौन का कुण

जिन का जिण

यही नहीं, मीरां की पदावली में प्रयुक्त कतिपय क्रियाओं के वर्तमान तथा भविष्यत् आदि के रूपों में भी राजस्थानी भाषा का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

मीरां की भाषा में प्रयुक्त अलंकरों एवं छन्दों का वर्णन तत्संबंधी प्रकरणों में पृथक् रूप से किया गया है।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही [✓] अथवा गलत [X] का निशान लगाइए–

1. मीरां की भाषा कलात्मक अभिव्यक्ति की अपेक्षा भावप्रकाश अधिक है। ☐
2. राजवंश से संबंधित होने के कारण ससुराल में मीरां को सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त थी। ☐
3. मीरां के काव्य पर तुलसी के दर्शन का प्रभाव है। ☐
4. मीरां की काव्यभाषा पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। ☐

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मीरां की पदावली की भाषा में भावों की प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति की पूर्ण सामर्थ्य है। भावों और शब्दों के मध्य एक अद्‌भुत प्रवाह दृष्टिगोचर होता है और इसका एकमात्र कारण यही है कि मीरां की समूची पदावली श्रीकृष्ण के प्रेम में पगी एक प्रेमिका के हृदय की सच्ची कथा है। पदावली की रचना, काव्य-सृजन की दृष्टि से नहीं अपितु प्रेमातुर हृदय में हिलोरें लेते हुए प्रेमाम्बुधि के विस्तार को आंकने के लिए की गई है। मीरां मूलतः एक भक्तिनी है और उसके बाद कुछ और। यही कारण है कि सीधे से सरल शब्दों के भीतर अथाह प्रेरणाशक्ति छिपी हुई है। प्रत्येक शब्द, मीरां की स्वानुभूति के पारस स्पर्श के कारण सहृदय के अन्तस् की टोह लेकर आने का सामर्थ्य रखता है। साथ ही, संगीत की लय और धुन में संजोए गए शब्द तो वस्तुतः सोने में सुगनध-सा आकर्षण उत्पन्न करते हैं।

8.2 सारांश

मीरां की पदावली में किसी एक ही भाषा का प्रयोग नहीं है। मुख्यतः ब्रजभाषा, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती भाषाओं का प्रयोग किया गया है। तथापि मीरां की पदावली में सर्वाधिक प्रयोग राजस्थानी भाषा का हुआ है।

जहाँ तक मीरां की भाषा की विशेषताओं का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मीरां का समूचा काव्य मूलतः भाव-प्रधान है। मीरां के काव्य में भावपक्ष ही अधिक मुखरित हो पाया है और उसमें कलागत सौन्दर्य को ढूँढ़ने का प्रयास करना अकारथ ही होगा। मीरां का काव्य सौन्दर्य, मीरां के प्रेमी हृदय का सौन्दर्य है। मीरां के सम्बन्ध में डॉ. भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' के निम्न शब्द मीरां के पदों की भाषा का स्वरूप निर्धारण करने में भी सहायक हो सकते हैं: "चार सौ वर्ष से ऊपर हुए, प्रभु ने पृथ्वी पर प्रेम की एक पुतली भेजी थी। वह आई प्रभु प्रेम में छकी हुई, प्रभु के आलिंगन में डुबी हुई, प्रभु के रूप में भूली हुई वह आई। प्रभु

नोट

के मुरली में अपने प्राण ढाल कर, प्रभु के पीताम्बर पर अपने को निछावर कर, प्रभु की मन्द-मन्द मुसकान पर अपना सब-कुछ दे डाल कर, प्रभु के चरणों के नीचे अपना हृदय बिछा कर वह अल्हड़ योगिनी पैरों में घुँघरू और हाथ में करताल लेकर नाच उठी और प्रेम के आनन्द में विभोर होकर गा उठी।"

मीरां की ही तरह उसके काव्य की भाषा भी व्याकरण की नहीं अपितु अनुभूति की भाषा है, उसमें शब्दों का चमत्कार, और पच्चीकारी तो संभवत: देखने को न मिले किन्तु इतना तो निश्चित है कि उनका प्रत्येक पद, पद की प्रत्येक पंक्ति, पंक्ति का प्रत्येक शब्द और शब्द में छिपा प्रत्येक मानवीय भाव मानव हृदय को झकझोर देने में पूर्ण समर्थ है। उनकी अनुभूति इतनी तीव्र ईमानदार है कि सीधे-सादे शब्दों में 'घाव करने' की अपार क्षमता छिपी हुई है।

काव्य की भाषा में अबाध प्रवाह का होना भी आवश्यक माना गया है। कभी-कभी अत्यधिक भाव-प्रधान कविता में भाषा भावों का साथ नहीं दे पाती और पीछे रह जाती है किन्तु इस सम्बन्ध में मीरां की पदावली अत्यधिक सफल कृति कही जा सकती है क्योंकि मीरां के भाव और उनकी भाषा साथ-साथ चलती रही है। भावों की प्रवणता के साथ-साथ भाषा का निर्बाध प्रवाह भी बना हुआ है।

भावों की तीव्रता और गहनता की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की निष्ठा स्वभावत: सामान्य स्तर को छोड़ देती है। इस दृष्टि से मीरां हिन्दी के सर्वाधिक सफल कवियों में परिगणित की जा सकती है। क्योंकि, उनकी भाषा का परिवेश उनक भावों के अनुरूप ही रहा है।

8.3 शब्दकोश

1. **स्थानापन्न–** दूसरे का स्थान ग्रहण किया हुआ।
2. **टोह लेना–** थाह लेना, टटोलना

8.4 अभ्यास-प्रश्न

1. मीरां की काव्य भाषा का परिचय दीजिए।
2. मीरां की भाषा उनके भावों को वहन करने में समर्थ है। समझाइए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन

1. ✓ 2. X 3. X 4. ✓

8.5 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *मीरां माधुरी–* बाबू ब्रजरत्न दास, अनीता प्रकाशन, दिल्ली।
2. *संत मीरांबाई और उनकी पदावली–* सं. बलदेव वंशी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–9: शतरंज के खिलाड़ी– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

9.1 शतरंज के खिलाड़ी– कथासार

9.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

9.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

9.4 शब्दकोश

9.5 अभ्यास-प्रश्न

9.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- प्रेमचंद की कहानी शतरंज के खिलाड़ी की कथावस्तु, पात्रों का चरित्र-चित्रण के वैशिष्ट्य से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

मुंशी प्रेमचंद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में नागरिक तथा ग्रामीण जीवन का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है। प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पक्षपाती रहे। प्रस्तुत कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखी गयी है। कहानी में नवाब वाजिद अली शाह के समय का वर्णन किया गया है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में प्रेमचंद ने आदर्श की स्थापना के स्थान पर यथार्थ का बड़ा सजीव चित्रण किया है।

9.1 शतरंज के खिलाड़ी– कथासार

नवाब वाजिद अली शाह का शासन था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। समाज में देश एवं राजनीति के प्रति चेतना नाम को न थी। अमीर-गरीब सभी एक रंग में रंगे हुए थे। राजा नवाब कहीं शतरंज, कहीं ताश, कहीं मुजरे की महफिल सजाए बैठे थे तो कहीं तीतर-बटेर की लड़ाइयाँ लड़ी जा रही थीं। फकीर पैसे मांग कर रोटी की जगह अफीम खाने में मस्त थे। शाही घरानों में ऐसी मान्यता थी कि शतरंज के खेल से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है।

नवाब घरानों से ताल्लुक रखने वाले मिर्ज़ा सज्जाद अली और मीर रौशनअली– शतरंज के खेल में दोनों अपने-आपको किसी महारथी से कम न समझते थे। जिन्दगी की उन्हें कोई फिक्र न थी। आजीविका के लिए पुरखों की जागीरें थीं, जो काम आ रही थीं। भविष्य की चिंता में पड़ना बेकार की बातें थीं। सुबह से जो शतरंज

नोट

के मोहरों की बिसात बिछ जाती तो उन्हें खाने तक होश न रहता। मीर और मिर्जा की इन आदतों से कोई खुश न रहता था। घर के नौकर तक मुँह पीछे टिप्पणियाँ किया करते थे। लेकिन इन बातों से भी किसी को कोई फर्क न पड़ता था। पत्नियाँ घर की जिम्मेदारी निभाने और बेगम का खिताब पा खुश रहने को ही अपना भाग्य समझती थीं।

नोट्स प्रेमचंद के शतरंज के खिलाड़ी से पहले की कहानियों में आदर्शवाद किसी न किसी रूप में उपस्थित है। लेकिन शतरंज के खिलाड़ी की रचना में आदर्शवाद से मोहभंग दिखाई पड़ता है। यह कहानी समय के यथार्थ को चित्रित करती है।

मीर साहब की पत्नी ने तो अपने लिए दूसरे मशग़ले ढूँढ़ लिए थे। इसलिए उन्हें मीर साहब से कोई शिकायत ही न रहती थी। बल्कि मीर साहब यदि घर न हों तो उन्हें ज्यादा भला लगता था। हाँ मिर्जा साहब की पत्नी इस मनहूस खेल से परेशान थीं। एक दिन उन्हें इतना बुरा लगा कि उन्होंने इन दोनों खिलाड़ियों को दीवानखाने से बेदखल कर दिया। फिर क्या था कहीं न कहीं जगह तलाश करनी ही थी। गोमती नदी पार कर वीराने में एक मसजिद मिल गयी। अब दोनों सुबह से शाम तक वहीं शतरंज खेला करते।

इधर देश की स्थिति थी कि बद से बदतर होती जा रही थी। अंग्रेज कंपनी लखनऊ पर अपना कब्जा जमाने की फिराक में थी। शहर में उनके सिपाहियों की हलचल होने लगी, नवाबों से उनकी जागीरें हथियाने लगे। पूरे शहर में तबाही की स्थिति आ गयी। फिर क्या था नवाब वाजिद अली शाह को देखते-देखते बिना किसी विरोध के अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया। लेकिन मीर और मिर्जा के शौक में कोई फर्क न आया। वे वहीं गोमती के किनारे रोजाना खेलने पहुँच जाते। शतरंज के मोहरों की मात में एकदिन दोनों झगड़ बैठे। नौबत यहाँ तक आयी कि तलवारें तन गयीं। जो देश के लिए उठ न सके वे वे शतरंज के मोहरों के लिए लड़कर जान दे बैठे। मस्जिद की मेहराबे और खण्डहर इनके गवाह बने उनकी लाशों को देखते रहे।

टास्क कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख कीजिए।

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए।

1. 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी का समय है–
   (क) शाहजहाँ का शासनकाल (ख) नवाब शुजाउद्दौला का शासनकाल
   (ग) औरंगजेब का शासनकाल
2. शतरंज के खिलाड़ी कहानी आधारित है–
   (क) आदर्शवाद पर (ख) यथार्थवाद पर (ग) मनोविज्ञान पर
3. प्रेमचंद का असली नाम था–
   (क) धनपत राय (ख) नवाब राय (ग) रायसाहब

9.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

शतरंज के खिलाड़ी में प्रेमचंद ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला के समय का चित्रण किया है। शतरंज के खेल के

नोट

माध्यम से उन्होंने देश नखनऊ की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों को ही उजागर किया है। कहानी की पृष्ठभूमि समय को चित्रित करती है। समय महत्त्वपूर्ण है कहानी में चरित्र का निर्माण केवल यथार्थ के अंकन और कहानी के विकास के लिए किया गया है। कहानी में चरित्र का विशेष महत्त्व नहीं है। कहानी में मिर्जा या मीर साहब का व्यक्तित्व दिखाना लेखक का उद्देश्य नहीं है। इनके माध्यम से प्रेमचंद ने तत्कालीन लखनऊ की राजनीतिक स्थिति जनता में चेतना शून्यता विलासमयी जीवनचर्या और उसके परिणामों को उजागर किया है।

क्या आप जानते हैं कड़वे यथार्थ को अभिव्यक्त करती हुई कहानी 'कफन' प्रेमचंद की अंतिम कहानी है। जो हिंदी कहानी में मील का पत्थर है।

9.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

(1)

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर गरीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही में मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग धंधों में, आहार व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कालाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है इसकी किसी को खबर न थी।

शब्दार्थ–मजलिस = बैठने की जगह, सभा, जलसा। **पीनक** = अफीम का नशा

व्याख्या–प्रस्तुत प्रसंग में लखनऊ की नवाबी शानो-शौकत, ठाठ-बाट के मद में डूबे शासक और चेतना शून्य लापरवाह प्रजा को दिखाया गया है। शासक की विलासिता के साथ-साथ विलासी परिस्थितियों के आदी हो चुके जड़ समाज का चित्रण किया गया है। न केवल शासक बल्कि जनता भी उसी रंग में डूबी हुई थी। नाच-गाने की महफिलें सजती थीं। लोग अफीम और शराब की लत में डूबे हुए थे। कविगण भी कोई चेतना के गीत न लिखकर प्रेम और विहर के वर्णन में ही संतुष्ट थे। राजकर्मचारी रंगरलियाँ मना रहे थे। व्यापारी कारीगर भी उबर्टरन मिस्सी, कालाबत्तू, ज़री आदि विलासिता की चीजें बनाने में व्यस्त थे। देश किधर जा रहा है इससे किसी को कोई सरोकार न था।

(2)

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कंपनी की फौजें लखनऊ की तरफ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग-बाल बच्चों को लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी जरा भी फिक्र न थी वे घर से आते तो गलियों से होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाजिम की नजर न पड़ जाए और बेगार में पकड़े जाएँ हजारों रुपये सालाना की जागीर मुफ्त ही वे हजम करना चाहते थे।

शब्दार्थ–मुलाज़िम = नौकर, सेवक। **हज़म करना** = चट करना, पचा लेना।

नोट

व्याख्या–प्रस्तुत प्रसंग में लखनऊ की राजनीतिक अस्थिरता का चित्रण किया गया है, जो दिनों-दिन लगातार बिगड़ती जा रही थी। कंपनी की फौजों के कब्जे से और उनके अत्याचार के भय से लोग शहर छोड़कर गाँवों की ओर भाग रहे थे। इस वातावरण में भी मीर और मिर्जा के शतरंज के मोहरे चल रहे थे। उनका खेल यथानुरूप चल रहा था। पकड़े जाने के डर से वे तंग गलियों से होकर घर पहुँच जाते थे।

(3)

अंधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानों इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खण्डहर की टूटी हुई मेहराब गिरी हुई दीवारें और धुल-धुसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

शब्दार्थ–मेहराब = दरवाजे के ऊपर बना अर्धमण्डलाकार भाग। **मीनार** = लाट (कुतुब मीनार)।

व्याख्या–प्रस्तुत प्रसंग में उस दृश्य का वर्णन किया गया है जो कहानी संपूर्ण कथानक का निहितार्थ है। शहर का दृश्य बदल चुका था। शहंशाह चुपचाप गिरफ्तार हो चुका था। शहर में सन्नाटा पसरा था। नवाबी शान अंधरों में गुम हो रही थी। ठीक उसी तरह दोनों नवाब शतरंज के खेल में लड़कर मृत्यु को प्राप्त कर चुके थे। उनकी लाशों पर रोने वाला न था। मस्जिद की टूटी इमारत का खण्डहर उनपर आँसू बहा रहा था।

विशेष–कहानी का मूल कथ्य इन पंक्तियों में उभर कर आया है। लखनऊ की ऐतिहासिक हार का दृश्य अंकित किया गया है।

9.4 शब्दकोश

1. **महफ़िल–** सभा, नाच-रंग का स्थान
2. **ताल्लुक–** संबंध, लगाव
3. **मशग़ला–** दिल बहलाव, व्यापार
4. **बेदखल–** पदच्युत, अधिकार च्युत

9.5 अभ्यास प्रश्न

1. शतरंज के खिलाड़ी कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
2. शतरंज के खिलाड़ी कहानी के मुख्य चरित्र की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. (ख) 2. (ख) 3. (क)

9.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *प्रेमचंद: एक विवेचन–* इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
2. *सजीव कहानियाँ–* डॉ. लक्ष्मीदास खुराना, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
3. *हिंदी कहानी का विकास–* मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–10: ममता– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका
उद्देश्य
प्रस्तावना
10.1 ममता– कथासार
10.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण
10.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या
10.4 शब्दकोश
10.5 अभ्यास प्रश्न
10.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी सक्षम होंगे–

- जयशंकर प्रसाद की कहानी ममता की कथावस्तु से परिचित होंगे।
- ममता कहानी के प्रमुख अंशों की व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

प्रस्तावना

प्रसादी की ऐतिहासिक कहानी 'ममता' कहानीकला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कहानी है। उसमें भावों की सूक्ष्मता है और साथ ही आदर्श व यथार्थ का समन्वय भी। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है। ममता रोहतास दुर्ग के स्वामी के मन्त्री चूड़ामणि की पुत्री थी। वह युवावस्था में ही विधवा हो गयी थी। इसलिए चूड़ामणि सदैव उसके भविष्य के लिए चिन्तित रहते और सदैव उसे सुखी रखने के प्रयत्न करते।

10.1 ममता– कथासार

प्रसाद की कहानी 'ममता' ऐतिहासिक कहानी है। ममता रोहिताश्व दुर्ग के अधिपति के मन्त्री की पुत्री थी। युवावस्था में ही विधवा हो गई थी। इसलिए उसकी उदासी को दूर करने के लिए मन्त्री चूड़ामणि विकल रहते थे क्योंकि सब सुखों के बीच भी विधवा होने के कारण उनकी अकेली पुत्री व्यथित रहती थी।

चूड़ामणि साथ ही यह भी देख रहे थे कि इस समय देश पर शेरशाह का शासन है, उसकी दृष्टि रोहिताश्व दुर्ग पर लगी हुई है और उसकी विशाल वाहिनी के सम्मुख किसी का ठहरना दुष्कर है फिर यह छोटा-सा दुर्ग क्या कर लेगा और जब इस पर उसका अधिकार हो जायगा तो फिर उनकी क्या स्थिति हो जायगी, यही सोचकर वह यवनों द्वारा दिया धन-धान्य ग्रहण कर दुर्ग के गुप्त द्वार का भेद बता देते हैं।

लेकिन ममता को यह अच्छा नहीं लगा। वह अपने स्वार्थ के लिए देश को बेचने के लिए राजी नहीं हुई। उसने पिता को धिक्कारा, पर वह चूड़ामणि की बुद्धि परिवर्तित करने में असमर्थ रही।

नोट

मंत्रणानुसार यवनों ने अगले दिन सामान दुर्ग में भेजा, और उसमें डोलियों में छिपकर यवन किले में प्रवेश कर गये। उन्होंने भयंकर मारकाट की और सबको मार डाला। चूड़ामणि भी मारे गये, दुर्ग भी छिन गया, पर किसी प्रकार ममता बचकर भाग निकली। उसने काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार के खण्डहरों में एक कुटी बनाकर अपना डेरा डाला और यहीं से जनसमाज की सेवा का व्रत लेकर दीनों और आर्त्तों की सेवा करने लगी।

एक दिन शेरशाह से परास्त होकर हुमायूं वहाँ पर आया और भटकता भटकता ममता की कुटी तक जा पहुँचा। थकान और पराजय के कारण उसका अंग-प्रत्यंग टूट रहा था। उसने ममता से एक रात आश्रय की भीख मांगी।

एकांत स्थान, रात्रि का समय, दिल में मुसलमानों के प्रति विद्वेष और सामने एक विपन्न मुगल। ममता का हृदय घृणा और क्रोध से भर गया। उसके घर को उजाड़ने वाले मुसलमान ही तो थे। इन्हीं के कारण उसके पिता की मृत्यु हुई। पर साथ ही उसके दिल में हुमायूं की विपन्न अवस्था देखकर दया भी उत्पन्न हुई। हुमांयू भी तो शेरशाह–उसी शेरशाह के अत्याचार से आक्रान्त था, जिसने उसके पिता की निर्मम हत्या करवाई थी। पर तभी उसके मस्तिष्क में शरणागत को आश्रय देने का विचार उठा। अतिथि देवता होता है। उसका सम्मान करना चाहिए। फिर अब इस पर और अत्याचार ही क्या हो सकता है, यह सोचकर उसने हुमायूं को वहां आश्रय दे दिया और स्वयं अन्यत्र चली गयी।

रात भर हुमायूं उसकी कुटिया में उपलब्ध समस्त साधनों के कारण बड़े सुख से सोया।

प्रात: काल उसके सेवक उसे खोजने वहां आये। हुमायूँ ने कृतज्ञता के कारण उन सेवकों को आदेश दिया कि वे यहां पर एक सुन्दर-सा भवन बनवा दें। यहाँ पर उसने विपत्ति में विश्राम प्राप्त किया था– अपनी थकान को दूर किया था।

टास्क ममता कहानी के संवेदनशील पहलुओं का उल्लेख कीजिए।

इस घटना को सैंतालीस वर्ष से भी आधिक हो गये। हुमायूँ के बाद उसका पुत्र अकबर राज्याधिकारी हुआ। अब ममता सत्तर वर्ष की वृद्धा हो चली थी। वृद्धावस्था के कारण उसने रोग शटया पकड़ ली थी। शीतकाल था। दो-चार स्त्रियाँ ममता को घेरे बैठी थीं। उसी समय एक अश्वारोही उस झोंपड़ी के द्वार पर आता दिखायी पड़ा। वह उसी झोपड़ी को खोज रहा था, जहाँ बादशाह हुमायूँ ने एक रात विश्राम किया था।

कोई उसकी सहायता न कर सका। तभी ममता ने उसके शब्द सुने और वह स्थान उसे बता दिया। साथ ही उसने कहा कि वह आजीवन इस बात से डरती रही कि कोई उसकी झोंपड़ी को खोद न दे। भगवान ने उसकी सुन ली थी, इसीलिए सैंतालीस वर्ष तक कोई नहीं आया। अब मैं अपना चोला छोड़कर जा रही हूं अत: खुशी से यहाँ भवन बनवा लो।

ममता स्वर्ग सिधार गयी। उसके मरने के बाद वहाँ पर एक विशाल अष्टकोण भवन बना। पर उस पर ममता की स्मृति का कोई चिह्न नहीं था, अपितु मुगल सम्राट हुमायूँ की प्रशस्ति गाई गयी थी और उसके द्वारा उस स्थान पर एक रात ठहरने का उल्लेख किया गया था। अन्य समस्त इतिहास छिपा लिया गया था।

क्या आप जानते हैं जयशंकर प्रसाद ने अपने नारी पात्रों को सदैव सम्मान एवं गरिमा प्रदान की है।

10.2 पात्र एवं चरित्र–चित्रण

नोट

ममता

बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद की कहानी 'ममता' की प्रमुख पात्र ममता का चरित्र मानसिक द्वन्द्वों में आवेष्ठित एक चरित्र है, जो देश-प्रेम और ममता, धर्मप्रेम और शरणागत स्नेह आदि सद्गुणों का उज्जवल प्रतीक है। नारी-धर्म की सजग व सफल व्याख्या भी उसके चरित्र में प्रतिबिम्बित हो रही है। ममता रोहिताश्व दुर्ग के अधि पति के मन्त्री चूड़ामणि की पुत्री है, पर उसमें अधिकार भावना जरा भी नहीं है। घमण्ड तो उसे छू भी नहीं गया है। अपितु उसके हृदय में देश-प्रेम की सुनहली लता लहलहा रही है। यही कारण है कि जब उसके पिता चूड़ामणि यवनों का उत्कोच ग्रहण कर अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं तो ममता से नहीं रहा जाता, वह अपने पिता को स्पष्ट रूप से धिक्कारती है और मुगलों का उत्कोच ग्रहण न करने की सलाह देती है। "तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिताजी! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं है। लौटा दीजिये। पिताजी! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे?"

और तब चूड़ामणि कहता है कि जब मन्त्रित्व न रहेगा, उस दिन के लिए यह धन एकत्र किया जा रहा है तो वह तुरन्त प्रतिवाद करती है कि 'हे भगवान, तब के लिए! विपद के लिए! इतना आयोजन। परमपिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस! पिताजी, क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिन्दू भूपृष्ठ पर बचा न रहेगा जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके। यह असम्भव है। फेर दीजिये पिताजी, मैं कांप रही हूँ– इसकी चमक आंखों को अन्धा बना रही है।"

अर्न्तद्वन्द्व–ममता के हृदय में एक ओर शरणागत को शरण देने की भावना है, तो दूसरी ओर अपने शत्रु के प्रति घृणा भी। उसका चरित्र अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। वह एकदम यह तय नहीं कर पाती कि वह क्या करे! हुमायूं को देखकर वह कहती है कि "तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब तुम्हारे मुख पर भी है।"

और जब वह प्यास से कण्ठ सूखने की दुहाई देता है, तो अतिथि-धर्म का विचार करके जल पिलाती है, परन्तु साथ ही यह सोचती है कि "सब विधर्मी दया के पात्र नहीं–मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।" और उसका मन घृणा से तिक्त हो उठता है।

लेकिन अन्त में वह अपने मन पर विजय प्राप्त करती है। उसके हृदय में अतिथि सेवा का भाव उत्पन्न होता है और वह हुमायूँ को शरण दे देती है।

नोट्स ममता के पिता का हत्यारा मुसलमान हैं उसे यवनों से घृणा है। किंतु फिर भी हुमायूँ के आश्रय मांगने पर उसके संस्कार ही उसे रोक लेते हैं और वह हुमायूँ को आश्रय देने के लिए मजबूर हो जाती है।

धर्म प्राण–अपने धर्म के प्रति ममता सहज ही जागरूक है। वह विधवा है यद्यपि युवती है फिर भी वैधव्य का भार संजोये उसने अपने मन पर संयम का अंकुश लगाया हुआ है। प्रसाद उसके इस रूप का वर्णन करते हैं यथा– "ममता विधवा थी। उसका यौवन शोश्रण के समान ही उमड़ रहा था" मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिए वह सूख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहिताश्व दुर्ग के मन्त्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी–हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय है–तब उसकी विडम्बना का कहाँ अन्त था।"

नोट

यही कारण है कि अपने दुर्ग से बचकर भाग निकलने के बाद वह अपने वैधव्य धर्म के अनुरूप धर्म चक्र विहार में अपनी कुटी बनाती है और खण्डहरों की मलिन छाया में अपने स्वाध्याय के साथ-साथ जनता-जनार्दन की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर देती है।

इसी प्रकार वह नारी-धर्म के प्रति भी अत्यन्त सचेष्ट है। अपनी सहज उदारता एवं दयालुता के वशीभूत होकर ममता हुमायूँ को अपनी कुटिया में स्थान तो दे देती है, पर एक तेईस वर्ष की सर्वांग सुन्दरी युवती होने के नाते, यद्यपि हुमायूँ उसे माता कहकर संबोधित करता है, वह पास के टूटे खंडहरों में अपना अलग स्थान खोजती है–सम्पूर्ण झोपड़ी हुमायूँ को दे देती है। वह उस घर में विश्राम नहीं करती।

स्वाभिमानिनी–ममता के चरित्र में हमें उस स्वाभिमान के दर्शन भी होते हैं जो भारतीय नारी का सहज गौरव चिह्न है। ममता दयालु है, दयार्द्र है और साथ ही निर्लोभी भी। अपने पिता के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा और स्नेह का अगाध सागर लहलहा रहा है। पर जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पिता मुगलों से उत्कोच स्वीकार कर रहे हैं तो उसका स्वाभिमान सजग हो जाता है। वह तुरन्त उसका निषेध करती है और अपने पिता से उस पाप के धन को, जो अर्थ नहीं अनर्थ है, लौटा देने को कहती है अपने पिता को ब्राह्मण धर्म निभाने के लिए प्रेरित करती है।

समग्रत: ममता का चरित्र विपन्ना भारतीय नारी की सहज क्षमाशीलता और स्वाभिमानिनी रूप के सम्मिश्रण का प्रतीक है। वह परिस्थितियों से समझौता करने वाली दुर्बल नारी नहीं है अपितु उसके चरित्र में एक भारतीय नारी के उज्जवल चरित्र के दर्शन होते हैं जो स्वाभिमानिनी, देशभक्त, दयालु एवं धर्मप्राण है तथा साथ ही नारी-धर्म के प्रति सजग भी।

स्व-मूल्यांकन

रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

1. ममता ..... दुर्ग के अधिपति के मंत्री की पुत्री थी।
2. यवन ..... में छिपकर किले में प्रवेश कर गए।
3. पिता की हत्या के बाद ममता काशी जाकर रहने लगी।
4. मुगल सम्राट ..... ने ममता की झोंपड़ी में आश्रय मांगा था।

10.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

"गला सूख रहा है, साथी छट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है, इतना थका हुआ हूँ–इतना!" कहते-कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्मांड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी, 'सब विधर्मी दया के पात्र नहीं–मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।'–घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश प्रसाद की 'ममता' कहानी से उद्धृत किया गया है। ममता दुर्ग से भागकर अपनी कुटी काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार में बना लेती है, वहीं उसकी भेंट मुगल-शासक हुमायूँ से होती है। इस प्रसंग में यहां पर प्रसाद जी ने ममता के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। एक ओर हुमायूँ की विपन्नता और दूसरी ओर क्रूर यवनों के प्रति व्याप्त घृणा–इन दोनों का यहाँ सुन्दर समन्वय हुआ है।

व्याख्या–ममता के हृदय में पिता का वध किये जाने के कारण यवनों के प्रति अपार घृणा है, इसलिए वह हुमायँ को शरण देना नहीं चाहती, पर जब वह कहता है कि वह प्यासा है, थका हुआ और शेरशाह से परास्त होकर भागा है, तो उसके मन में दया का संचार होता है। हुमायूँ का मुख विषण्ण हो रहा था और माथा चकरा रहा था। इसीलिए दयार्द्र होकर ममता सोचती है कि वह किस विपत्ति में पड़ गयी, फिर भी वह उसे पानी पिलाती

नोट

है। पानी पीकर हुमायूँ को साहस बँधता है, उसे कुछ दम मालूम होता है और कृतज्ञ नेत्रों से उसकी ओर देखता है। तभी ममता के हृदय में पुनः ऊहापोह उठता है कि हुमायूँ भी यवन है और यवन दया के पात्र नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने ही तो उसके पिता का वध किया था। इसी कारण उसका मन घृणा से भर जाता है। पर अन्त में दया की विजय होती है।

विशेष–हृदय में अत्यधिक घृणाभाव के बावजूद ममता हुमायूँ को प्यास बुझाने के लिए जल देती है। यहाँ भारतीय संस्कृति में व्याप्त अतिथि देवोभवः की रक्षा हुई है और साथ ही नारी की सहृदयता का पक्ष भी उजागर हुआ है।

10.4 शब्दकोश

1. **उत्कोच**– रिश्वत, घूस
2. **सर्वांग**– सभी अंग
3. **आवेष्ठित**– ढका, छिपा या घिरा हुआ
4. **तिक्त**– तीता, चरपरा

10.5 अभ्यास प्रश्न

1. ममता कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
2. ममता कहानी की नायिका ममता के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. रोहिताश्व
2. डोली
3. काशी
4. हुमायूँ

10.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *सजीव कहानियाँ*– डॉ. लक्ष्मीदास खुराना, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
2. *हिंदी साहित्य का इतिहास*– डॉ. नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा (यू.पी.)।
3. *हिंदी कहानी का विकास*– मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–11: अशिक्षित का हृदय– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

11.1 अशिक्षित का हृदय–कथासार

11.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

11.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

11.4 शब्दकोश

11.5 अभ्यास-प्रश्न

11.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी 'अशिक्षित का हृदय' के कथानक एवं पात्रों के चरित्र को समझने में।

प्रस्तावना

'अशिक्षित का हृदय' कहानी में 'लेखक' ने एक अशिक्षित ग्रामीण के हृदय का सच्चा और अटूट स्नेह दिखाया है। मनोहर की निष्कपट भावना तथा नवयुवक तेजा के हृदय की कोमलता ने कहानी में एक विशेष आकर्षण पैदा कर दिया है। लेखक ने ठाकुर शिवपाल सिंह के रूप में किसानों के साथ जमींदारों के निर्दयी व्यवहार का भी चित्रण किया है।

11.1 अशिक्षित का हृदय– कथासार

ग्रामीण परिवेश पर आधारित इस कहानी में बूढ़ा मनोहर सिंह और ठाकुर शिवपाल सिंह कहानी के मुख्य पात्र हैं। पूरी कहानी मनोहर सिंह की निष्कपट भावनाओं के इर्द-गिर्द घूमती है। उसकी भावनाओं की तीव्रता को ही प्रदर्शित करने के लिए अन्य चरित्र गढ़े गए हैं। मनोहर सिंह ने कोई डेढ़ वर्ष पूर्व ठाकुर शिवपाल सिहं से खेती के लिए जमीन ली थी। एक वर्ष खेती करने के पश्चात् उसे कुछ विशेष अनाज न मिल सका जिसके कारण ठाकुर शिवपाल सिंह का लगान रह गया। जिसके बदले में उसने अपने दरवाजे पर खड़ा पुराना नीम का पेड़ गिरवी रख दिया था। ठाकुर शिवपाल सिंह ने डेढ़ वर्ष पश्चात् मनोहर सिंह को लगान के रुपये याद दिलाए, जो अब ब्याज के साथ 25 रुपये हो गए थे।

मनोहर सिंह के पास रुपये चुकाने का कोई ज़रिया न था। अत: उसने ठाकुर से मिन्नत की कि आपके पैसे तो मैं चुका दूंगा और नहीं तो मेरा पेड़ तो आपके पास गिरवी रखा ही हुआ है। मनोहर सिंह की बात सुनकर

नोट

ठाकुर ने उसके सामने शर्त रखी कि ठीक है अगर तुमने एक सप्ताह में पैसे लौटा दिए तो पेड़ तुम्हारा, वरना पेड़ मेरा हो जाएगा। उसके बाद मैं चाहे उसे काटूँ या कुछ भी करूँ, तुमसे कोई मतलब न होगा। ठाकुर की इस शर्त पर मनोहर बिदक गया और बोला कि पेड़ नहीं कट सकता चाहे में पैसे दूँ या न दूँ।

नोट्स 'अशिक्षित का हृदय' कहानी में 'कौशिक जी' ने जमींदारों के निर्मम व्यवहार, उसकी स्वनिर्मित अराजक व्यवस्था का चित्रण किया है।

एक सप्ताह बाद जब मनोहर सिंह पैसे नहीं लौटा सका तो ठाकुर ने अपने मजदूरों से कहा कि पेड़ काट दो। हमारे पैसे ऐसे ही वसूल हो सकते हैं। ठीक उसी समय गाँव का एक नवयुवक तेजा सिंह दौड़ता हुआ आया और मनोहर सिंह से बोला कि चाचा ये लो रुपया। मनोहर सिंह ने ठाकुर से रुपये लेने का आग्रह किया लेकिन ठाकुर ने कहा कि समय बीत चुका है अब मैं पैसे न लूँगा। यह खबर पूरे गाँव में फैल गयी। तेजासिंह के पिता भी वहाँ पहुंचे और जब उन्हें पता चला कि पैसे तेजा ने दिए हैं तो उन्होंने मनोहर सिंह से पैसे वापस ले लिए। मनोहर सिंह इससे और दुखी हो गया। ठाकुर ने जब रुपये वापस लेते हुए देखा तो मनोहर से बोले मनोहर लाओ रुपये अब मैं तुम्हारा पेड़ लौटा रहा हूँ। लेकिन मनोहर तो अब विवश था। ठाकुर ने अब अपने पक्ष को ही ठहराते हुए कहा कि जाओ अब पेड़ काट लो। यह बुड़ढा व्यर्थ चिल्ला रहा है। यह सुनकर तेजा ने आगे बढ़कर अपने हाथ से सोने की अंगूठी निकाल कर मनोहर को देते हुए बोला– चाचा यह लो अंगूठी इसका मूल्य 25 रुपये से ज्यादा है। यह मेरे पिता ने नहीं बल्कि मुझे मेरी नानी ने दी है। इस अंगूठी पर मेरे पिता का कोई अधिकार नहीं है। मैं तुम्हें यह स्वेच्छा से दे रहा हूँ। यह सुनकर ठाकुर को मजबूरन पैसे लेकर पेड़ वापस करना पड़ा।

टास्क 'कौशिक जी' की पहली कहानी 'रक्षाबंधन' किस पत्रिका में प्रकाशित हुई थी?

11.2 पात्र एवं चरित्र–चित्रण

11.2.1 मनोहर सिंह

कहानी का प्रमुख पात्र सीधा-सादा निष्कपट 55 वर्षीय ग्रामीण मनोहर सिंह है। अपनी कहानियों में मुख्यतया नगरीय जीवन के परिवेश को चित्रित करने वाले 'कौशिक' जी ने प्रस्तुत कहानी में न केवल ग्रामीण परिवेश लिया है बल्कि पात्र भी निष्कपट, गँवार एवं परिवेश के अनुकूल रखे हैं। सीधे-सादे मनोहर सिंह की फौज में नौकरी थी। रिटायर होकर पेंशन से अपना गुजारा करता था। एक बार उसे खेती करने की सनक सवार हुई तो उसने ठाकुर शिवपाल सिंह से खेती करने के लिए कुछ जमीन उधार ली। लेकिन खेती में कुछ विशेष अनाज न उत्पन्न हो सका इसलिए मनोहर सिंह उसका लगान नहीं चुका सका। उनका लगान न चुका पाने के कारण वह अराजक जमींदारी व्यवस्था के दाव-पेंच में फंस गया। इसी दाव-पेंच और व्यवस्था के बीच लेखक ने उसके चरित्र का बड़ी सुंदरता से उद्घाटन किया। एक अशिक्षित ग्रामीण का भावनात्मक लगाव जो तर्क बुद्धि से परे है। अपने द्वार पर लगे नीम के पेड़ को वह किसी भी हाल में कटते हुए नहीं देखना चाहता। गाँव के नवयुवक तेजा सिंह से कहता है– "यह पेड़ मेरे भाई के बराबर है, मैं इसे अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है।" इससे मनोहर सिंह की भावनाएँ उभर कर आती हैं। यह चरित्र कहानी के शीर्षक को भी चरितार्थ करता है।

नोट

क्या आप जानते हैं विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' मुंशी प्रेमचंद की पीढ़ी के कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ मुख्यत: सामाजिक हैं तथा उनकी कहानियों की कथावस्तु घटना प्रधान होती है।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए–

1. 'अशिक्षित का हृदय' ग्रामीण परिवेश की कहानी है। ☐
2. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' प्रेमचंद की पीढ़ी के कथाकार हैं। ☐
3. 'अशिक्षित का हृदय' मनोवैज्ञानिक कहानी है। ☐
4. कहानी का मुख्य पात्र जमींदार वर्ग से ताल्लुक रखता है। ☐

11.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

(1)

यह विचार मनोहर सिंह को ऐसा दुखदायी प्रतीत हुआ कि वह चारपाई पर उठकर बैठ गया और वृक्ष की ओर मुँह करके बोला यदि संसार में मेरा किसी ने साथ दिया है तो तूने। यदि संसार में किसी ने नि:स्वार्थ भाव से मेरी सेवा की है तो तूने। अब भी मेरी आँखों के सामने वह दृश्य आ जाता है जब मेरे पिता तुझे सींचा करते थे। तू उस समय बिल्कुल बच्चा था। मैं तेरे लिए तालाब से पानी भरकर लाया करता था। पिता कहा करते थे– बेटा मनोहर! यह मेरे हाथ की निशानी है। इससे जब-जब तुझे और तेरे बाल-बच्चों को सुख पहुँचेगा तब-तब मेरी याद आयेगी।

व्याख्या–प्रस्तुत अंश में निष्कपट मनोहर सिंह के हृदय की सरलता उभरकर हमारे सामने आती है। जिस पेड़ को वह बचपन से देखता आया है। उसे अपने पुरखों की निशानी स्वरूप आदर भाव से रखता है। उस पेड़ से उसका भावात्मक लगाव इतना है कि वह उसकी छाया से तृप्त होकर स्वयं को उसका आभारी समझता है। वह उसे अपने जीवन के दु:ख-सुख का साथी समझता है। उसे अपने पिता की याद आती है। उसके साथ जुड़ा हुआ हर समय उसे याद रहता है। पेड़ को देखकर उसे अपने पिता की यादें, उनके कहे गए वचन याद आ जाते हैं।

विशेष–एक निर्जीव पेड़ से मनोहर सिंह का सरल हृदय से लगाव और ग्रामीण निश्छलता को बड़े सहज ढंग से दिखाया गया है।

(2)

जिन्होंने कभी तोप की सूरत नहीं देखी, वे वीर और ठाकुर बने घूमते हैं। हमें आँख दिखाते हैं कि रुपये दो, नहीं तो पेड़ कटवा लेंगे। देखें, कैसे पेड़ कटवाते हैं? लाख बुड्ढा हो गया हूँ जब तलवार लेकर डट जाउँगा तो भागते दिखाई पड़ेंगे। और बेटा, सौ बात की एक बात तो यह है कि अब मुझे मरना ही है– चल चलाव लग रहा है। मैं बड़ी-बड़ी लड़ाइयों से जीता लौट आया। समझूँगा, यह भी एक लड़ाई ही है। अब इस लड़ाई में मेरा अंत है। पर इतना समझ रखना कि मेरे जीते जी इस पेड़ की एक डाल भी कोई काटने नहीं पावेगा। उनका रुपया गले बराबर है। भगवान जाने मेरे पास होता तो मैं दे देता। नहीं है, तो क्या किया जाए? पर यह नहीं हो सकता कि ठाकुर साहब मेरा पेड़ कटवा लें, और मैं बैठे टुकुर-टुकुर दखा करूँ।

नोट

व्याख्या–प्रस्तुत प्रसंग में ठाकुर ठाकुर शिवपाल सिंह के व्यवहार से खिन्न मनोहर सिंह तेजासिंह से बड़े आवेश में कहता है कि ठाकुर जी ने तो तोप की सूरत भी नहीं देखी जो फौज में हमारे पास होाती थी। जिससे हमने कई लड़ाइयां भी जीती हैं। मनोहर सिंह को ठाकुर का रवैय्या बहुत बुरा लगता है। अपनी बातों से वह तेजा को आश्वस्त करा देना चाहता है कि वह ठाकुर शिवापाल सिंह से बड़ी आसानी से निपट सकता। बड़े उत्साह में अपनी शक्ति-सामर्थ्य को जाहिर करता है कि पेड़ मैं नहीं कटने दूँगा चाहे इस लड़ाई में मेरे जीवन का अंत ही क्यों न हो जाए। तेजा को अपनी नीयत का विश्वास दिलाना चाहता है कि मेरे पास यदि रुपये होते तो मैं ठाकुर का पैसा नहीं रख सकता था। लेकिन जब रुपये नहीं हैं तो हम ठाकुर को यह अधिकार भी नहीं दे सकते कि वह हमारा पेड़ कटवा लें और हम देखते रहें।

11.4 शब्दकोश

1. **निष्कपट–** कपट रहित
2. **अराजक–** शासन से हीन, विद्रोही या षड्यंत्रकारी

11.5 अभ्यास प्रश्न

1. अशिक्षित का हृदय कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
2. कहानी के मुख्यपात्र मनोहर सिंह का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. (✓) **2.** (✓) **3.** (×) **4.** (×)

11.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *सजीव कहानियाँ–* डॉ. लक्ष्मीदास खुराना, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
2. *हिंदी साहित्य का इतिहास–* डॉ. नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा (यू.पी.)।
3. *हिंदी कहानी का विकास–* मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–12: न्यायमंत्री– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

12.1 न्याय मंत्री– कथासार

12.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

12.3 महत्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

12.4 शब्दकोश

12.5 अभ्यास-प्रश्न

12.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- सुदर्शन की कहानी 'न्याय मंत्री' के कथ्य एवं पात्रों से परिचित होंगे।
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

प्रस्तावना

सुदर्शन की कहानी न्याय मंत्री ऐतिहासिक ताने-बाने को आधार बनाकर बुनी गयी है। कहानी में अशोक के शासन-काल का समय वर्णित है जिसमें चक्रवर्ती सम्राट अशोक कहानी का एक पात्र है।

12.1 न्याय मंत्री– कथासार

न्याय मंत्री कहानी का समय 2500 वर्ष पूर्व चक्रवर्ती सम्राट अशोक का शासन-काल है। बिहार स्थित बौद्ध गया नामक गाँव में शिशुपाल ब्राह्मण के घर आए एक परदेसी ने रात काटने के लिए आश्रय मांगा। यद्यपि शिशुपाल गरीब था फिर भी उसने अतिथि को अपना सौभाग्य समझ उसे अपने घर में आश्रय देना स्वीकार किया। ब्राह्मण और उसके पुत्र ने अतिथि सत्कार में कोई कसर न छोड़ी। परदेसी उनका आदर सत्कार पाकर बहुत खुश हुआ और उसने शिशुपाल से उसके बेटे की तारीफ करते हुए कहा कि 'आपका पुत्र बहुत बड़े काम का लड़का है, उसका सेवाभाव देखकर मेरा जी खुश हो गया।' सेवा-भाव की बात सुनकर शिशुपाल क्रोध से भर उठा। शिशुपाल निर्धन जरूर था पर उसके ब्राह्मणत्व को कोई ठेस पहुँचाए यह उसे मंजूर न था। उसने चिढ़कर उत्तर दिया–'आप हमारे अतिथि हैं अन्यथा ब्राह्मण ऐसे शब्द नहीं सुन सकते।' अतिथि ने अपनी भूल स्वीकार की तो शिशुपाल ने उसे एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया। उसकी तर्कपूर्ण युक्तियुक्त बातें सुनकर चकित हुआ कि छोटे से गाँव में भी

नोट

एक साधारण-सा आदमी इतनी विद्वतापूर्ण बातें कर रहा है। परदेसी ने शिशुपाल से कहा कि यदि सम्राट अशोक को पता लग जाए तो आपको अवश्य अपने शासन में किसी अच्छे पद पर नियुक्त कर दें।

क्या आप जानते हैं 'न्याय मंत्री' कहानी की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। कहानी में इतिहास प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट अशोक के शासन काल का समय दिखाया गया है।

शिशुपाल ने अतिथि की बात सुनकर कहा कि आजकल तो इंसाफ रहा ही नहीं जिधर देखो अन्याय ही अन्याय है। उसकी बात सुनकर अतिथि ने कहा कि दूसरों में दोष ढूँढ़ना बहुत आसान है लेकिन यदि खुद करना पड़ जाए तो बड़ा कठिन है। अतिथि की यह बात सुनकर शिशुपाल ने आवेश में कहा कि यदि अवसर मिले तो करके दिखा दूँगा कि न्याय किसे कहते हैं?

परदेसी चला गया। दूसरे दिन शिशुपाल को राजा अशोक के दरबार में हाजिर होने का हुक्म मिला। इस बुलावे पर शिशुपाल बड़ी कशमकश में पड़ा। उसके मन में बहुत से अच्छे-बुरे ख्याल आए और आखिरकार वह 'सम्राट' अशोक के दरबार में पहुँचा। लेकिन शिशुपाल राजा को देखकर दंग रह गया कि ये तो वही परदेसी है।

राजा अशोक ने शिशुपाल से कहा कि ब्राह्मण मैं तुम्हारी कही गयी बात की परीक्षा लेना चाहता हूँ कि यदि तुम्हें अवसर दिया जाए तो तुम न्याय का डंका बजा दोगे। शिशुपाल तैयार हो गया। राजा ने उसे एक अंगूठी दी जो उसके पास न्याय मंत्री होने का सबूत रहे। इस प्रकार कुछ ही दिन बीतने के पश्चात् राज्य में शिशुपाल के न्याय की धूम मच गयी।

एक दिन एक व्यक्ति ने आधी रात को किसी स्त्री के दरवाजे पर जाकर दरवाजा खटखटाया। स्त्री ने अनजान व्यक्ति को देखकर दरवाजा नहीं खोला। उस व्यक्ति ने जब अशिष्टता दिखाई तो एक पहरेदार ने आकर उसे रोकने की कोशिश की। दोनों ने तलवार निकाल ली। पहरेदार नया था, एक ही वार में गिर गया। पहरेदार की मृत्यु से वह व्यक्ति डर गया क्योंकि वह उसे केवल डराना चाहता था।

अगले दिन प्रात:काल यह घटना पूरे नगर में फैल गयी। लोग आश्चर्यचकित थे कि शिशुपाल के शासन में ऐसी घटना हुई। न्याय मंत्री शिशुपाल ने इस घटना की गहन जाँच कराई और दोषी को दण्ड देने का निश्चय किया। राजा अशोक ने चुनौती दी कि न्याय मंत्री को दोषी को पकड़कर दरबार में दण्डित करना होगा।

आखिरकार दरबार लगा और सभी लोग एकत्र हुए। स्त्री ने दरबार में राजा अशोक को देखा तो पहचान गई और धीरे से इसकी सूचना उसने न्याय मंत्री को दी, न्यायमंत्री ने इसी आधार पर राजा अशोक को गिरफ्तार कर दण्डित करने का निर्णय सुनाया। न्यायमंत्री का निर्णय सुन प्रजा जयजयकार करने लगी।

टास्क सुदर्शन की किसी अन्य महत्वपूर्ण कहानी का उल्लेख कीजिए।

12.2 पात्र एवं चरित्र–चित्रण

न्याय मंत्री 'शिशुपाल'

न्यायमंत्री के रूप में ब्राह्मण शिशुपाल कहानी का मुख्य पात्र है। सुदर्शन की कहानियाँ आदर्शवाद से प्रेरित हैं। किसी-न-किसी रूप में आदर्शवाद की स्थापना उनका मुख्य लक्ष्य दिखाई पड़ता है। शिशुपाल ब्राह्मण का चरित्र भी किसी-न-किसी रूप में आदर्श की भावभूमि पर गढ़ा गया है। शिशुपाल गरीब ब्राह्मण जरूर है किंतु वह ब्राह्मण का न केवल कर्तव्य बल्कि ब्राह्मण होने के अपने महत्त्व को भी समझता है। इसका परिचय इस बात से मिल जाता

नोट

है कि जब राजा अशोक परदेसी के रूप में उसके घर ठहरता है और शिशुपाल की अतिथि सत्कार की भावना से अभिभूत होकर कहता है–"आपका पुत्र बड़े काम का आदमी है, उसका सेवा-भाव देखकर जी खुश हो गया।" शिशुपाल इस बात पर तुनक जाता है जैसे किसी ने उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाई। तुरंत उत्तर देता है–"आप हमारे अतिथि हैं, अन्यथा ब्राह्मण ऐसे शब्द नहीं सुन सकते।"

शिशुपाल को अपने ब्राह्मण के रूप में श्रेष्ठ होने पर गर्व है और वह अपने इसी ब्राह्मण-धर्म को निभाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है। शिशुपाल एक निर्धन ब्राह्मण से जब न्याय मंत्री बनता है तो उसका मुख्य चरित्र उभरकर हमारे सामने आता है। न्यायमंत्री के रूप में उसकी भूमिका पूरी कहानी का मूल है। न्यायमंत्री जैसे उच्च पद पर आसीन होकर शिशुपाल न केवल अपने पद की गरिमा बनाए रखता है बल्कि ब्राह्मण-धर्म भी निभाता है। लोभ लालच तथा भय के भाव उसे छू कर नहीं जाते। राजा के दोषी पाए जाने पर वह बिना विचलित हुए साहस के साथ भरी सभा में अपना निर्णय सुनाता है और उसका यही निर्णय कहानी का उत्स भी है और आदर्श भी।

नोट्स सुदर्शन की कहानियों की भाषा सरल, स्वाभाविक प्रभावोत्पादक और मुहावरेदार है।

12.3 महत्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

1. शिशुपाल ने एक लंबी-चौड़ी वक्तृता आरंभ कर दी, जिसको सुनकर परदेसी दंग रह गया। उसकी बातें ऐसी युक्तियुक्त और प्रभावशाली थीं कि परदेशी उन पर मुग्ध हो गया। इस छोटे से गाँव में ऐसा विद्वान, ऐसा तत्वदर्शी पंडित हो सकता है, इसकी उसे कल्पना भी न थी। उसने शिशुपाल का युक्तियुक्त तर्क और शासन पद्धति का इतना विशाल ज्ञान देखकर कहा–मुझे ख्याल न था कि यहाँ गोबर में फूल खिला हुआ है। महाराज अशोक को पता लग जाए तो आपको किसी ऊँचे पद पर नियुक्त कर दें।

शब्दार्थ–**वक्तृता** = वक्ता होने का भाव। **युक्ति-युक्त** = उचित, चतुर, प्रमाणित। **तत्त्वदर्शी** = बात के मूल का पता लगाने वाली दृष्टि, दिव्यदृष्टि।

व्याख्या–ब्राह्मण शिशुपाल अपने घर आए अतिथि को ब्राह्मण तथा क्षत्रिय धर्म, न्याय, शासन-व्यवस्था आदि पर लंबा-चौड़ा व्याख्यान देता है। अतिथि उसकी बातें सुनकर चकित रह जाता है कि एक छोटे-से गाँव में रहने वाला व्यक्ति भी इतना ज्ञानी और विद्वान हो सकता है। उसके इस ज्ञान पर वह टिप्पणी करता है कि यदि राजा अशोक को पता चल जाए कि उसके राज्य में इतने ज्ञानी लोग भी हैं तो वह निश्चय ही आपको शासन के किसी उच्च पद पर नियुक्त कर देंगे।

विशेष–1. लेखक ने शिशुपाल के पांडित्य से यह बताने का प्रयास किया है कि केवल नगरीय परिवेश में ही ज्ञान नहीं है बल्कि बुद्धि और ज्ञान मनुष्य की विरासत है जो वह किसी भी स्थिति में रहकर सिद्ध कर सकता है।

2. 'गोबर में फूल खिलना' मुहावरे का उपयुक्त प्रयोग किया गया है।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने ☑ अथवा गलत का निशान ☒ लगाइए–

1. न्याय मंत्री कहानी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। ☐
2. कहानी का प्रमुख पात्र शिशुपाल इतिहास प्रसिद्ध चरित्र है। ☐
3. न्याय मंत्री कहानी यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखी गई कहानी है। ☐
4. कहानी के माध्यम से लेखक ने आदर्शवाद की स्थापना की है। ☐

नोट

2. एक मास व्यतीत हो गया। न्याय मंत्री के न्याय और सुप्रबन्ध की चारों ओर धूम मच गई। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शिशुपाल ने नगर पर जादू डाल दिया है। उन्होंने चारों ओर डाकुओं को उस प्रकार वश में कर लिया था, जैसे सर्प को बीन बजाकर सपेरा वश में कर लेता है। उन दिनों यह अवस्था थी कि लोग दरवाजे तक खुले छोड़ जाते थे, परंतु किसी को अंदर झांकने का साहस न होता था। शिशुपाल का न्याय अंधा और बहरा था, जो सूरत न देखता था और दण्ड भी देता था शिक्षा-प्रद। नगर की दशा में आकाश पाताल का अंतर पड़ गया।

व्याख्या–शिशुपाल के न्याय मंत्री बनने के पश्चात् एक माह का समय गुजर गया। उस एक माह के अन्दर शासन-व्यवस्था में आए परिवर्तन का वर्णन है कि कैसे शिशुपाल के सुप्रबन्ध के कारण राज्य में न्याय और शान्ति बनी हुई है। व्यवस्था में लोगों का इतना अटूट विश्वास हो गया कि लोग अपने घर के दरवाजे खुले छोड़ देते थे। अराजकता नाम को न थी। नगर की स्थिति में होने वाले परिवर्तन के कारण लोग बहुत प्रसन्न थे। पहले की तुलना में नगर इतना बदल चुका था जैसे आकाश-पाताल का फर्क हो।

विशेष–1. साँप को बीन बजाकर वश में करने वाले उदाहरण में उपमा अलंकार है।

12.4 शब्दकोश

- **इंसाफ–**न्याय।
- **कशमकश–**खींचा-तानी, आंतरिक संघर्ष, सोच-विचार।

12.5 अभ्यास-प्रश्न

1. 'न्याय मंत्री' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
2. कहानी के प्रमुख पात्र शिशुपाल के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. ☑ 2. ☒ 3. ☒ 4. ☑

12.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *सजीव कहानियाँ–* डॉ. लक्ष्मीदास खुराना, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
2. *हिंदी साहित्य का इतिहास–* डॉ. नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा (यू.पी.)।
3. *हिंदी कहानी का विकास–* मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–13: सभ्य–असभ्य– कथासार, चरित्र-चित्रण, सप्रसंग व्याख्या

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

13.1 सभ्य-असभ्य– कथासार

13.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

13.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

13.4 अभ्यास-प्रश्न

13.5 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे।

- उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी सभ्य-असभ्य के कथ्य एवं उसके प्रमुख पात्रों को समझ सकेंगे।
- कहानी के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

प्रस्तावना

उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियाँ यथार्थवादी भावभूमि पर प्रतिष्ठित हैं। कहानियों के मूल में व्यंग्य और अनुभूति की गम्भीरता है। प्रस्तुत कहानी सभ्य-असभ्य मध्य तथा निम्नवर्ग से संबंधित है। वातावरण सजीव एवं संवाद पात्रानुकूल हैं तथा पीड़ितों के प्रति लेखक की संवेदनशीलता भी साफ झलकती है।

13.1 सभ्य-असभ्य– कथासार

मध्यवर्गीय वातावरण पर आधारित इस कहानी में निम्न वर्गीय पात्र भी जुड़ते हैं, जो कहानी को और सजीव बनाते हैं तथा कथानक के विस्तार में महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। जाड़ों की रात, संतानहीन पति-पत्नी की जिंदगी एक बने-बनाए ढर्रे पर व्यतीत हो रही है। घर में सन्नाटा पसरा रहता है। सुबह सवेरे जमादारिन का इंतजार कि वह समय पर आकर काम निपटा जाए और फिर इसके साथ प्रतिदिन की दिनचर्या की शुरूआत हो। इससे अलग हटकर कभी-कभी पत्नी सुलेखा उदास हो जाती। ऐसा न था कि यह कमी केवल सुलेखा को ही महसूस होती थी बल्कि उसके डॉक्टर पति भी इसे अच्छी तरह महसूस करते थे। लेकिन मर्द का हृदय सब कुछ जग जाहिर नहीं होने देता। सोचकर रह जाते कि भाग्य से तो नही लड़ा जा सकता।

एक दिन सुबह जब जमादारिन सुलेखा के घर आयी तो उसकी आँखें सूजी हुई थीं। पूछने पर उसने बताया कि उसकी जेठानी बहुत बीमार है और उसी की देख-रेख के कारण रात भर वह सो भी नहीं पाई है। जमादारिन ने डॉक्टर से आग्रह किया कि वह चलकर उसकी बीमार जेठानी को देख ले। इच्छा न होने पर भी डॉक्टर तैयार होकर उसके साथ चल पड़े।

नोट

घर पहुँचने के पश्चात् जमादारिन की जेठानी अपनी अंतिम सांस ले चुकी थी। जमादारिन तो डॉक्टर को पलटकर न देख सकीं लेकिन जमादार ने जब डॉक्टर साहब को देखा तो आदरवश आ खड़ा हुआ। जमादार ने डॉक्टर को बताया कि मेरा भाई मुझे अपना दुश्मन समझता है जबकि आड़े वक्त पर भाई के सिवा कौन काम आता है।

नोट्स उपेन्द्रनाथ 'अश्क' यथार्थवादी कथाकार हैं। उनकी कहानियों में व्यंग्य और संवेदना का गुण विशेष है। पीड़ित के प्रति उनकी संवेदना हर जगह व्यक्त होती है।

डॉक्टर ने घर आकर पत्नी को बातें बताईं। इसी बीच पत्नी ने बताया कि उसके भाई के ससुराली रिश्तेदार की मृत्यु हो गई है और कल उसका चौथा है। पत्नी ने पति से उस गरीब आदमी के चौथे पर जाने का भी आग्रह किया। डॉक्टर साहब पत्नी की बात टाल न सके और अगले दिन वहाँ पहुँचे। सब हाल चाल पूछा। मृतक के भाई ने बताया कि मेरी पत्नी बीमार रहती है और इस वजह से अपने बच्चों को भी ठीक से नहीं देख पाती।

कुछ समय बीत गया। एक दिन डिस्पेंसरी में केन्द्रीय अनाथलय के व्यवस्थापक पहुँचे और उन्होंने डॉक्टर से अनाथालय चलने के लिए निवेदन किया कि चलकर वे कुछ बीमार बच्चों को देख लें। डॉक्टर ने अनाथालय पहुँचकर कर बच्चों को देखा और दवाइयां लिख दीं। इतने में कुछ नए बच्चों पर नजर पड़ी तो डॉक्टर ने उनके बाद में पूछा तो पता चला कि इन बच्चों के पिता मकान से गिरकर मर गए और अब ताऊ देखते थे। लेकिन पत्नी की बीमारी की वजह से यहाँ छोड़ गए हैं।

डॉक्टर साहब घर पहुँचे तो पत्नी ने बताया कि हमारी जमादारिन अपने जेठ के सब बच्चों को अपने घर लाई है। उसके घर में जगह नहीं है पर जमादार कहता है कि वह बच्चों को यूँ दर-दर भटकने के लिए नहीं छोड़ सकता।

कहानी जिस यथार्थ के धरातल से शुरू होती है उसका अंत भी उसी प्रकार होता है। लेखक कहानी के माध्यम से एक शिक्षित परिवर के असंवेदनशीलता पर व्यंग्य करता है जबकि उसकी दृष्टि में गरीब अशिक्षित व्यक्ति अपने रिश्तों के प्रति कहीं अधिक जिम्मेदार और संवेदनशील है।

क्या आप जानते हैं सभ्य-असभ्य कहानी में 'अश्क' जी ने तथाकथित सभ्यों और असभ्यों में अंतर पर मार्मिक व्यंग्य किया है।

13.2 पात्र एवं चरित्र-चित्रण

डॉक्टर

'सभ्य-असभ्य' कहानी डॉक्टर के माध्यम से कही गई है। डॉक्टर ही कहानी का मुख्य वक्ता है। लेखक ने कहानी में व्यंग्य को संवेदनशील ढंग से डॉक्टर के माध्यम से प्रस्तुत किया है। डॉक्टर जिस मध्यवर्ग से संबंध रखता है उस मध्यवर्ग की कई बिडंबनाएँ हैं। डॉक्टर उसी मध्यवर्ग में होने के बावजूद डॉक्टर का संवेदनशील मन इस बात को अच्छी तरह महसूस करता है कि मध्यवर्ग कई बार अपने स्वार्थों से ऊपर नहीं उठ पाता। जबकि निम्न वर्ग गरीब है अशिक्षित है इसके बावजूद रिश्तों की गर्माहट उनमें कहीं न कहीं बनी हुई है। डॉक्टर के माध्यम से 'अश्क' ने मध्यवर्ग की इन्हीं बिडंबनाओं को अभिव्यक्ति दी है। डॉक्टर के माध्यम से लेखक ने दोनों वर्गों के बीच के फर्क को अभिव्यक्ति देने में सफलता हासिल की है।

नोट

कहानी के केन्द्र में लेखक की दृष्टि चरित्र निर्माण की ओर न होकर कथ्य पर केन्द्रित है। यहां लेखक को यह अभीष्ट नहीं कि डॉक्टर का चरित्र कैसा है बल्कि यह कि डॉक्टर के माध्यम से वह क्या कुछ वह कहना चाहता है। यही कारण है कि मध्यवर्ग से ही संबंध रखने वाला डॉक्टर मध्यवर्ग की संवेदनशीलता की ओर इशारा करता हुआ दिखाई पड़ता है। आज का मध्यवर्ग स्वयं को बहुत समझदार समझने की ग़लतफ़हमी में जीता है। जबकि कयी बार वह अपने स्वार्थों से ऊपर उठने का कष्ट भी नहीं उठा पाता। उसकी तुलना में निम्नवर्ग बिना मानवता का पाठ पढ़े ही उस बोझ को सहन करने का साहस जुटा लेता है। कहानी इस अंतर को बड़े सीधे-सादे ढंग से स्पष्ट कर देती है।

टास्क सभ्य-असभ्य कहानी के माध्यम से मध्यवर्ग के चरित्र पर टिप्पणी कीजिए।

स्व-मूल्यांकन

रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

1. कहानी में डॉक्टर की संवेदना ..... के प्रति दिखाई गई है।
2. डॉक्टर की पत्नी का नाम ..... है।
3. डॉक्टर ..... के साथ उसकी बीमार जेठानी को देखने के लिए जाता है।
4. सभ्य-असभ्य कहानी मध्यवर्ग की ..... पर व्यंग्य करती है।

13.3 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

उन बेचारे अनाथ बच्चों का, लंबी बीमारी के पश्चात् मरने वाली उनकी माँ का, देखते-देखते मृत्यु की गोद में सो जाने वाले उनके पिता और उन अनाथ बच्चों के अंधकारमय भविष्य का जिक्र करके सुलेखा कयी बार आँखों में आँसू ला चुकी थी–"भगवान की यह कैसी माया है। जहाँ बच्चे हैं वहाँ पालने वाला कोई नहीं और जहाँ पालने वाले हैं, वहाँ बच्चों की कमी है।" मैं उसे समझा-समझा कर हार गया था कि पाल न सकने से तो अच्छा है कि बच्चे हों ही नहीं। कौन जानता है कि यदि हमारे बच्चा होता तो उसके पालन-पोषण के लिए हम जीवित भी रहते या नहीं। परंतु इन युक्तियों से जब मेरी ही तसल्ली न होती तो उसे कैसे संतोष मिलता।

व्याख्या–प्रस्तुत प्रसंग में सुलेखा उन अनाथ बच्चों के भविष्य की चिंता व्यक्त करती है जिनके माता-पिता दोनों ही उन्हें छोड़कर इस दुनिया से विदा हो चुके हैं। यथार्थवादी धरातल पर लिखी गई इस कहानी में लेखक नियति और भाग्य से भी साक्षात्कार कराता है। डॉक्टर की पत्नी सुलेखा संतानहीन होने के अपने दुर्भाग्य को भगवान की माया का खेल समझती है। भविष्य में अनाथ बच्चों की दुर्दशा को सोचकर वह कहती है कि यह भगवान की लीला ही है कि हम नि:संतान हैं और जहाँ बच्चे हैं वहाँ उनके माता-पिता उनके लिए जीवित नहीं हैं।

पत्नी के इन दु:खद भावों पर उसे तसल्ली देते डॉक्टर के विचार कि यदि हमारे भी बच्चा होता तो पता नहीं हम भी इस दुनिया में होते या नहीं, कौन जानता है? सांत्वना के यह शब्द कहते हुए डॉक्टर स्वयं के मन को भी टटोलता है कि क्या वह स्वयं अपनी बातों एवं विचारों से संतुष्ट है?

विशेष–लेखक ने जीवन की सच्चाइयों के साथ भगवान, भाग्य और नियति के सामने मनुष्य की विवशता को उजागर किया है।

नोट

13.4 अभ्यास प्रश्न

1. सभ्य-असभ्य कहानी में व्यक्त संवेदना एवं व्यंग्य पर प्रकाश डालिए।
2. सभ्य-असभ्य कहानी के मुख्य पात्र डॉक्टर के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
3. मध्यवर्गीय चरित्र पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. निम्न वर्ग
2. सुलेखा
3. जमादारिन
4. संवेदनहीनता

13.5 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *सजीव कहानियाँ*– डॉ. लक्ष्मीदास खुराना, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
2. *हिंदी साहित्य का इतिहास*– डॉ. नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा (यू.पी.)।
3. *हिंदी कहानी का विकास*– मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–14: लिपि– अर्थ एवं महत्त्व

अनुक्रमणिका

उद्देश्य
प्रस्तावना
14.1 लिपि का अर्थ
14.2 लिपि का महत्त्व
14.3 सारांश
14.4 शब्दकोश
14.5 अभ्यास प्रश्न
14.6 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- लिपि के अर्थ एवं महत्त्व से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

मनुष्य ने बोलना सीखा, फिर भाषा का विकास किया, तदनन्तर उसे लिखित रूप दे दिया। उसने व्यवहार को सुरक्षित करने तथा विचारों व भावों को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए, ऐसे चिह्नों की तलाश कर ली जो उसे भावी पीढ़ियों के लिए स्मृति का विषय बना सकें। यदि अभिव्यक्ति के ये चिह्न न खोजे जाते तो मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह विस्मृति के गर्भ में खो जाता। भाषा को स्थूल रूप देने और अभिव्यक्ति को टिकाऊ बनाने का यह प्रयास लिपि के रूप में प्रकट हुआ।

14.1 लिपि का अर्थ

लिप् धातु का अर्थ है लीपना, पोतना, ढकना। इसी धातु का संज्ञा पद है लिपि। लिपि मनुष्य की वाणी को रंगों में पोत देती है। और उसे अदृश्य से दृष्टि का विषय बनाती है। मनुष्य जो कुछ बोलता है, उसे रंगों में स्थूल रूप देकर ऐसी आकृति प्रदान करता है। कि कालान्तर में भी उसे ग्रहण कर सके। लिपि के सहारे वह अपनी भाषा के रूप को चिरस्थायी बनाने का प्रयास करता रहा, अन्यथा हर पीढ़ी को भाषा की परम्परा जीवित रखने के लिए नए सिरे से खोज करनी पड़ती। प्रारंभ में शब्दों के उच्चारण करने पर भी मानव को ध्वनि इकाइयों का बोध न था, इसलिए उसने लिपि का आधार शब्दात्मक वाक्य बनाए। उसने जिन वस्तुओं, कार्यों, भावों और विचारों को शब्दात्मक वाक्य बनाए उसने जिन वस्तुओं, कार्यों, भावों और विचारों को शब्दमयी वाणी दी, सब कुछ वस्तु रूप में चित्रित कर दिया। प्राचीन गुफाओं में बनाए गए चित्र इस बात के गवाह हैं कि आदि मानव ने चूना, खड़िया तथा अन्य पदार्थों से भित्तियों पर टेढी-मेढ़ी रेखाएँ खींच कर आकृतियों को रूप दिया जिन्हें वह बुद्धिगत कर सका, भले ही वे आकृतियाँ तथा वस्तुओं का हू-ब-हू चित्रण करने में समर्थ न हों। ज्यों-ज्यों बुद्धि का विकास हुआ, लेखन की पद्धति में सुधार होता गया और हजारों वर्ष के प्रयास से मनुष्य ने वाणी का विश्लेषण करके, ध्वनिगत ज्ञान की खोज कर ली। इसी खोज के परिणामस्वरूप ध्वनि प्रतीकों को रंगों के माध्यम से आकार प्रदान होने लगा। ध्वनि प्रतीकों की यह लिखित अभिव्यक्ति बाद में हुई।

नोट

उच्चरित ध्वनियों को लिखित रूप देने का कार्य भी यादृच्छिक था। किसी ध्वनि के लिए, लिखित रूप देने का न तो कोई नियम पहले था और न आज है। मनुष्य ने किसी भी ध्वनि के लिए जो चिह्न या आकृति दी, प्रचलित होने पर वह आकृति उस ध्वनि के लिखित रूप में आरूढ़ हो गई। प्रारम्भ में ध्वनि इकाइयों की पहचान और उन्हें लिखित रूप में स्थिर करने हेतु किए गए प्रयास, विभिन्न समुदायों में अलग-अलग ढंग से हुए। यही कारण है कि आज संसार में लिपि के अनेक रूप मिलते हैं और उनमें ध्वनि इकाइयों और लेखिमों की संख्या में भी अन्तर पाया जाता है। अपनी-अपनी परिधि में, विभिन्न भाषाओं की अपनी ध्वनि इकाइयाँ हैं और उनके लिए लेखिमों के आकार भी उनकी अपनी शैली में अंकित हैं।

स्व-मूल्यांकन

रिक्त स्थान की पूर्ति करें:–

1. भाषा की अभिव्यक्ति को लिखित रूप देने के लिए ..... का विकास हुआ।
2. लिपि यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की मनमानी ..... व्यवस्था है।
3. भाषा के मौलिक रूप में ..... ध्वनि के संकेत रहते हैं।

इस प्रकार लिपि मानव-निर्मित वस्तु है। इसके लेखिमों का आकार स्वैच्छिक है। विभिन्न भाषाओं की लिपि अपने-अपने स्तर पर विकसित हुई। लिपि के विकास में सहसा किसी वर्णमाला का आविर्भाव नहीं हुआ। क्रमिक विकास और परिथितियाँ इसके आविष्कार में मुख्य तत्त्व रहे होंगे। बाद में किसी मेधा सम्पन्न व्यक्ति ने प्रचलित लेखिमों को व्यवस्थित रूप देकर किसी लिपि की वर्णमाला की घोषणा की होगी। अत: लिपि यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की मनमानी लिखित व्यवस्था है।

भाषागत अभिव्यक्ति के दो रूप हैं– मौखिक और लिखित। भाषा के मौखिक रूप में उच्चरित ध्वनि संकेत रहते हैं जबकि लिखित रूप में ध्वनि संकेतों को आकार प्रदान कर दिया जाता है। मौखिक ध्वनि संकेत तो उच्चरित होने के बाद विलीन हो जाते हैं, परन्तु लिखित ध्वनि संकेत, चिरकाल तक अभिव्यक्ति के प्रमाणभूत अभिलेख बने रहते हैं। मानव द्वारा संचित ज्ञानराशि की सुरक्षा एवं भावी-पीढ़ियों तक सम्प्रेषण की व्यवस्था, भाषा के लिखित रूप द्वारा ही संभव है। यदि लिपि न होते तो युग्मों के चिन्तन और अनुसन्धान की धरोहर हमारे पास न होती। कहने और सुनने तक की सीमाओं में बँधी हुई भाषा, सामान्य व्यवहार के लिए काम चलाऊ तो सिद्ध हो सकती है, परन्तु ज्ञान-विज्ञान के विकास की आकांक्षाओं की पूर्ति लिखित भाषा पर ही निर्भर है और लिखित भाषा का आधार है लिपि। इसलिए लिपि का आविष्कार सभ्यता के विकास की नींव का पत्थर है। फिर भी लिखित भाषा की अपनी सीमाएँ हैं। भाषा के मौखिक रूप में सुर, बलाघात आदि द्वारा, अभिव्यक्ति में जो सौन्दर्य और प्रभाव परिलक्षित होता है, वह लिखित रूप में प्राप्त नहीं होता। भाषा का लिखित रूप तो पाठ्य है, उससे अभिव्यक्ति द्वारा, कथित विषय के ज्ञान की उपलब्धि होती है, परन्तु मौखिक रूप से मन में जो हिल्लोल उत्पन्न की जा सकती है, वह लिखित रूप में नहीं है। भाषा का मौखिक रूप अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्प्रेषण है, किन्तु भाषा का लिखित रूप उसकी परोक्ष अनुभूति कराता है। इस परोक्ष अनुभूति से मनुष्य अपने अतीत की धुँधली स्मृतियों का साक्षात्कार करता है। सच तो यह है कि लिपि मानव की सोच को कालजयी बना देती है। इस प्रकार भाषा के ये दोनों पहलू, सम्प्रेषण के अनेक स्तरों का उद्घाटन करते हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। लिपि भाषा का शरीर है और उच्चरित ध्वनि संकेत इसके प्राण। चैतन्य के बिना शरीर अचेत है और शरीर के बिना चैतन्य वायवीय। दोनों मिलकर एक ऐसा संगीत उत्पन्न कर देते हैं जो मानव के विकास की कहानी युगों तक सुनाता रहता है।

नोट्स भाषा का मौलिक रूप अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष संप्रेषण है।

नोट

14.2 लिपि का महत्त्व

लिपि की उपयोगिता और उसकी शक्ति– लिपि का कार्य भावों का अंकन है। अपने इस कार्य में जो लिपि जितनी ही सफल होगी, उसे उतनी ही शक्तिसम्पन्न तथा उपयोगी कहा जायगा। रज्जु लिपि तथा भावमूलक लिपि की अपनी सीमाएँ हैं; अत: ध्वनिमूलक लिपि की तुलना में उन्हें उपयोगी नहीं कहा जा सकता। ध्वनिमूलक लिपि में भी, वर्णात्मक लिपि (alphabetical script) अक्षरात्मक लिपि (syllabic script) की तुलना में अधिक वैज्ञानिक तथा उपयोगी हैं, क्योंकि उसके द्वारा ध्वनियों का अंकन अधिक स्पष्ट तथा वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। इस श्रेणी की लिपि केवल रोमन तथा कुछ अन्य लिपियाँ हैं। इन लिपियों में भी अभी सुधार के लिए स्थान है। आशा है, भावी भाषा तत्वविज्ञ इसे अधिक पूर्ण बनायेंगे, साथ ही विश्व की अन्य अपूर्ण तथा अपंग लिपियों को भी पूर्ण तथा वैज्ञानिक बनाने का प्रयास करेंगे।

आधुनिक काल में लिपियों के अध्ययन पर भी पर्याप्त बल दिया गया है। इस दृष्टि से (क) लिपियों के सामान्य विकास, (ख) लिपि-विकास की विभिन्न सीढ़ियाँ, (ग) लिपियों के वर्गीकरण, (घ) वर्णमाला की उत्पत्ति और उनके नाम के आधार, (ङ) विभिन्न देशों, संस्कृतियों और भाषाओं की लिपियों की उत्पत्ति, उनके प्राचीन रूप में प्राप्त लेखों को पढ़ने, उनके विकास, उनकी कमियों तथा सुधार एवं परिवर्तन आदि पर महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं।

14.3 सारांश

मनुष्य ने बोलना सीखा, फिर भाषा का विकास किया, तदनन्तर उसे लिखित रूप दे दिया। उसने व्यवहार को सुरक्षित करने तथा विचारों व भावों को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए, ऐसे चिह्नों की तलाश कर ली जो उसे भावी पीढ़ियों के लिए स्मृति का विषय बना सकें। यदि अभिव्यक्ति के ये चिह्न न खोजे जाते तो मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह विस्मृति के गर्भ में खो जाता। भाषा को स्थूल रूप देने और अभिव्यक्ति को टिकाऊ बनाने का यह प्रयास लिपि के रूप में प्रकट हुआ।

लिप् धातु का अर्थ है लीपना, पोतना, ढकना। इसी धातु का संज्ञा पद है लिपि। लिपि मनुष्य की वाणी को रंगों में पोत देती है। और उसे अदृश्य से दृष्टि का विषय बनाती है। मनुष्य जो कुछ बोलता है, उसे रंगों में स्थूल रूप देकर ऐसी आकृति प्रदान करता है। कि कालान्तर में भी उसे ग्रहण कर सके। लिपि के सहारे वह अपनी भाषा के रूप को चिरस्थायी बनाने का प्रयास करता रहा, अन्यथा हर पीढ़ी को भाषा की परम्परा जीवित रखने के लिए नए सिरे से खोज करनी पड़ती।

भाषागत अभिव्यक्ति के दो रूप हैं– मौखिक और लिखित। भाषा के मौखिक रूप में उच्चरित ध्वनि संकेत रहते हैं जबकि लिखित रूप में ध्वनि संकेतों को आकार प्रदान कर दिया जाता है। मौखिक ध्वनि संकेत तो उच्चरित होने के बाद विलीन हो जाते हैं, परन्तु लिखित ध्वनि संकेत, चिरकाल तक अभिव्यक्ति के प्रमाणभूत अभिलेख बने रहते हैं। मानव द्वारा संचित ज्ञानराशि की सुरक्षा एवं भावी-पीढ़ियों तक सम्प्रेषण की व्यवस्था, भाषा के लिखित रूप द्वारा ही संभव है।

लिपि की उपयोगिता और उसकी शक्ति– लिपि का कार्य भावों का अंकन है। अपने इस कार्य में जो लिपि जितनी ही सफल होगी, उसे उतनी ही शक्तिसम्पन्न तथा उपयोगी कहा जायगा।

आधुनिक काल में लिपियों के अध्ययन पर भी पर्याप्त बल दिया गया है। इस दृष्टि से (क) लिपियों के सामान्य विकास, (ख) लिपि-विकास की विभिन्न सीढ़ियाँ, (ग) लिपियों के वर्गीकरण, (घ) वर्णमाला की उत्पत्ति और उनके नाम के आधार, (ङ) विभिन्न देशों, संस्कृतियों और भाषाओं की लिपियों की उत्पत्ति, उनके प्राचीन रूप में प्राप्त लेखों को पढ़ने, उनके विकास, उनकी कमियों तथा सुधार एवं परिवर्तन आदि पर महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं।

नोट

14.4 शब्दकोश

1. **विस्मृति–** भूल जाना
2. **यादृच्छिक–** स्वतंत्र, ऐच्छिक, अप्रत्याशित

14.5 अभ्यास प्रश्न

1. लिपि का अर्थ बताते हुए उसका महत्त्व समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. लिपि
2. लिखित
3. उच्चरित

14.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *भाषा विज्ञान–* डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, दिल्ली।

नोट

इकाई–15: देवनागरी लिपि का नामकरण एवं विशेषताएँ

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

15.1 देवनागरी लिपि का नामकरण

15.2 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

15.2.1 चिह्न संख्या

15.2.2 आदर्श वर्गीकरण

15.2.3 लिपि-चिह्न– नाम तथा ध्वनि अनुरूपता

15.2.4 एक ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न

15.2.5 एक लिपि-चिह्न के लिए एक ध्वनि

15.2.6 व्यंजन की आक्षरिकता

15.2.7 मात्रा का प्रयोग

15.2.8 ह्रस्व-दीर्घ स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न

15.2.9 पर्याप्त लिपि-चिह्न

15.3 सारांश

15.4 शब्दकोश

15.5 अभ्यास-प्रश्न

15.6 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी सक्षम होंगे–

- देवनागरी लिपि के नामकरण से संबंधित जानकारी प्राप्त करने में।
- देवनागरी लिपि की विशेषताओं को समझने में।

प्रस्तावना

प्राचीन नागरी लिपि का प्रचार उत्तर भारत में नवीं सदी के अंतिम चरण से मिलता है, यह मूलतः उत्तरी लिपि है, पर दक्षिण भारत में भी कुछ स्थानों पर आठवीं सदी से यह मिलती है। दक्षिण में इसका नाम नागरी न होकर नंद नागरी है। आधुनिक काल की नागरी या देवनागरी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी तथा महाराष्ट्री आदि लिपियाँ इस प्राचीन नागरी के ही पश्चिमी रूप से विकसित हुई हैं और इसके पूर्वी रूप से कैथी, मैथिली तथा बांग्ला आदि लिपियों का विकास हुआ है। इसका प्रचार सोलहवीं सदी तक मिलता है। नागरी लिपि को नागरी या देवनागरी लिपि भी कहते हैं।

नोट

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिंदी की लिपि देव नागरी है। संवैधानिक रूप में नागरी को राजलिपि का पद प्राप्त है। विश्व की कोई भी वर्णमाला नागरी के समान सर्वांगीण और वैज्ञानिक नहीं है। माना सभी को अन्य वस्तुओं की भाँति अपनी भाषा तथा लिपि ही अच्छी लगती है, किंतु नागरी की वैज्ञानिकता को कोई विद्वान अस्वीकार नहीं कर सकता है। यदि भारतवर्ष की सभी भाषाओं को नागरी लिपि में भी लिखा जाए, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाएगी। देवनागरी संपर्क लिपि बन जाएगी और भारतवर्ष के समस्त भाषाभाषियों में भावादान-प्रदान सरल हो जाएगा। इससे राष्ट्रीय एकता को आकर्षक परिवेश मिलेगा।

15.1 देवनागरी लिपि का नामकरण

नागरी लिपि के आठवीं, नौवीं शताब्दी के रूप को 'प्राचीन नागरी' नाम दिया गया है। दक्षिण भारत के विजय नगर के राजाओं के दान-पात्रों पर लिखी हुई नागरी लिपि का नाम 'नंदिनागरी' दिया गया है।

भाषाविज्ञानियों द्वारा देवनागरी लिपि के नामकरण के निम्नलिखित मत सामने आते हैं–

1. **डॉ. धीरेंद्र वर्मा** के मतानुसार मध्ययुग में स्थापत्य कला की एक शैली थी–नागर। इसमें सभी चिह्न किसी न किसी रूप में चतुर्भुज से मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार के प, म, ग, भ, झ आदि चिह्नों की शैली विशेष 'नागर' आधार पर इसे नागरी नाम दिया गया है।
2. **डॉ. वर्मा** के द्वितीय मतानुसार प्राचीन समय में उत्तर भारत की विभिन्न राजधानियों में 'नगर' किसी प्रसिद्ध राजधानी का नाम रहा होगा और इसी राजधानी के आधार पर इस लिपि का नाम 'नागरी' पड़ा है।

   डॉ. वर्मा जी का प्रथम मत जहाँ कुछ ही चिह्नों पर आधारित है तो दूसरा मत पूर्ण काल्पनिक होने से स्वीकार्य नहीं है।
3. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीनकाल में काशी को 'देव नगर' नाम से जाना जाता था। इस नगर में इस लिपि के उद्‌भव होने से इसे देवनागरी कहा गया है।

   यह मत तर्कसंगत नही लगता, क्योंकि काशी के निकट से प्राप्त प्रमाणों से प्राचीन प्रमाण अन्यत्र से मिले हैं। भारत के विभिन्न स्थानों से इस लिपि के प्रयोग के प्रमाण मिलने से यह मत भी वैज्ञानिक नहीं सिद्ध होता है।
4. विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि शिक्षा का केंद्र 'नगर' रहा है। इसलिए लिपि का उद्‌भव नगर में हुआ। 'नगर' में उद्‌भव होने के कारण इसका नाम 'नागरी' लिपि पड़ा है।

   इस मत को भी पूर्णत: तर्कसंगत नहीं मान सकते हैं। क्योंकि प्राचीनकाल में, भारतवर्ष में गुरुकुलीय शिक्षा का प्रचलन था, जिसका केंद्र प्राय: नगर से दूर वनस्थली में होता था। नगरों में शिक्षा केंद्र होने से भी इसे आधार नहीं बना सकते हैं।
5. संस्कृत भाषा को 'देववाणी' भी कहते हैं। संस्कृत भी नागरी में लिखी जाती है। इसलिए नागरी में 'देव' जोड़ कर 'देवनागरी' नाम दिया गया है।
6. कुछ भाषाविद् बुद्ध के 'ललित विस्तर' में आए नाम 'नागलिपि' से संबंधित बतलाते हुए नागरी नामकरण स्वीकार करते हैं।
7. विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि बिहार में स्थित पटना का नाम कुछ समय पूर्व पाटलिपुत्र और प्रचीन समय में 'नगर' था वहाँ के राजा चंद्रगुप्त को आदर से 'देव' नाम से पुकारा जाता था। गुप्त काल में पटना में इस लिपि के प्रचलन के आधार पर चंद्रगुप्त नाम 'देव' और पटना नाम 'नगर' के संयुक्त नाम देवनगर से देवनागरी नाम बताया गया है।

नोट

प्राचीनकाल में नागरी के प्रयोग का केंद्र पटना ही रहा हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है। यह नामकरण कुछ तर्कपूर्ण लगता है, किंतु वैज्ञानिकता सिद्ध नहीं होती है।

8. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस लिपि को प्रारंभिक प्रयोग गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा किया गया है, जिसके नाम-आधार पर नागरी नाम दिया गया है।

   कल्पना-आधार पर नाम विश्लेषण वैज्ञानिक नहीं है।

9. कुछ विद्वानों द्वारा इसे 'हिंदी लिपि' नाम दिया जाता है। यह नाम पूर्ण भ्रामक है, क्योंकि नागरी मात्र हिंदी की ही लिपि नहीं है वरन् संस्कृत, मराठी और नेपाली आदि भाषाओं की भी लिपि है। हिंदी भाषा और देवनागरी का पारस्परिक संबंध है, किंतु दोनों एक नहीं हैं। यह नाम पूर्णत: अवैज्ञानिक है।

10. श्री आर. शाम शास्त्री के मतानुसार भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। देवों के इन प्रतीक समूह को एकत्र कर देने पर 'देवनगर' की संज्ञा दी जाती थी। इसी आधार पर चिह्नों का चयन कर विकसित लिपि का नाम 'देवनागरी' रखा गया है।

अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का नामकरण किस प्रकार हुआ, यह अनिर्णीत है। आचार्य विनोबा भावे ने नागरी के लिए 'लोक नागरी' नाम दिया है। आचार्य ने इस लिपि को विशेष महत्त्व देने के लिए यह नाम दिया है। उनकी मान्यता रही है, "यह लिपि किसी जाति संप्रदाय वर्ग या धर्म-विशेष की नहीं वरन् समस्त भारतीयों की लिपि है। उन्होंने इसे राष्ट्र लिपि के रूप में स्वीकार कर कहा था कि विभिन्न भाषा-भाषियों को अपनी लिपि के साथ नागरी लिपि का भी प्रयोग करना चाहिए।"

वर्तमान समय में देश के विभिन्न क्षेत्रों, धार्मिकों, प्रांतवासियों आदि के द्वारा यदि यह लिपि अपना ली जाए, तो संपर्क लिपि के रूप में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाएगी। यह नाम तर्क-संगत है, किंतु इसे पूर्णरूपेण अपनाया नहीं गया है।

नोट्स भारत में जब मूर्तिकला और चित्रकला का विकास नहीं हुआ था, तब यहाँ विभिन्न प्रतीकों के आधार पर विभिन्न देवी-देवताओं का ध्यान किया जाता रहा है। ऐसे में गोले, त्रिभुज, चतुर्भुज आदि विभिन्न चिह्न का उपयोग किया जाता था।

भाषा-विकास में मानव और देश की उन्नति निहित है। लिपि को पाकर भाषा में स्थायित्व विकसित होता है। भारतीय परिवेश में सुसभ्य अनुकूल विचार वाले व्यक्ति को 'नागर' कहते हैं। भाषा के सुंदर-अनुकूल प्रयोक्ता और उसे स्थायित्व प्रदान करने से प्रयत्नशील 'नागर' (सुसभ्य व्यक्ति) के आधार पर इसका नाम 'नागरी' रखा गया है। संस्कृत को 'देव भाषा' कहते हैं। संस्कृत की भी लिपि नागरी है। इसलिए इसे 'देवनागरी' नाम भी दिया गया है।

15.2 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

15.2.1 चिह्न संख्या

कहा जाता है कि नागरी में चिह्नों की संख्या बहुत अधिक है, रोमन में मात्र 26 चिह्न है। विचार करने पर नागरी में स्वर-लगभग 10, मात्रा-लगभग-9, व्यंजन-33 अर्थात लगभग 52 चिह्न हैं। अंग्रेजी में छोटे + बड़े अक्षर अर्थात 26 + 26 = 52 चिह्न हैं। इस प्रकार नागरी के चिह्नों को अधिक कहना तर्क संगत नहीं है। इनकी संख्या अनुकूल और उपयोगी है।

नोट

क्या आप जानते हैं नागरी लिपि में सभी व्यंजनों के साथ स्वर 'अ' जुड़ा हुआ होता है जैसे– क्+अ, ख्+अ ग्+अ आदि।

15.2.2 आदर्श वर्गीकरण

नागरी वर्णमाला का वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक है। नागरी वर्णमाला को मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया गया है–स्वर तथा व्यंजन। स्वर को प्रारंभ में तथा व्यंजन को बाद में स्थान दिया गया है।

स्वर–जिन वर्णों का उच्चारण किसी अन्य ध्वनि की सहायता के बिना किया जा सके और मुख-विवर से हवा अबाध गति से बाहर निकले, उन्हें स्वर की संज्ञा दी जाती है; यथा–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ आदि।

व्यंजन–जिन वर्णों का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना न किया जा सके तथा उच्चारण-अवधि सीमित और क्षणिक हो, ऐसी ध्वनि के उच्चारण के समय हवा घर्षण करती हुई संकीर्ण मार्ग से निकलती है। इस प्रकार मार्ग में वायु का पूर्ण या अपूर्ण अवरोध होता है, ऐसे वर्णों को व्यंजन की संज्ञा दी जाती है; यथा–क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ आदि।

(क) स्वर वर्गीकरण

स्वर वर्णों की व्यवस्था अपने में पर्याप्त वैज्ञानिक है।

(i) मात्रानुसार–नागरी के स्वरों में ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत रूपों की व्यवस्था द्रष्टव्य है–

(क) ह्रस्व–जिन स्वरों के उच्चारण में अपेक्षाकृत सीमित अर्थात चुटकी बजाने का समय लगता है; जैसे–अ, इ, उ।

(ख) दीर्घ–जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व से लगभग दुगना समय लगता है; जैसे–आ, ई, ऊ।

(ग) प्लुत–जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वर से भी अधिक समय लगता है, ह्रस्व से लगभग तीन गुना समय लगे; जैसे–ओउम् में ओउ।

(ii) संरचना के अनुसार–स्वरों की आकृति के अनुसार की गई व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है।

(क) मूल स्वर–जिन संकेतों में मात्र एक स्वर होता है; यथा–अ, इ, उ।

(ख) संयुक्त स्वर–जिन संकेतों में एक से अधिक स्वर हो; यथा–
ए = अ + इ, ऐ = अ + ई, ओ = अ + ऊ।

(ख) व्यंजन-वर्गीकरण

(i) वर्ग-विभाजन–नागरी में 5-5 व्यंजनों के वर्गों की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था है–कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग में क्रमश: कंठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दंत्य तथा ओष्ठ्य लिपि चिह्न हैं।

(क) कवर्ग–इस वर्ग के व्यंजन वर्ण जीभ के पश्च भाग से उच्चारित होते हैं। इसलिए इन्हें कंठ्य कहते हैं; यथा–क, ख, ग, आदि।

(ख) चवर्ग–इस (तालव्य) वर्ग के व्यंजन-वर्णों का उच्चारण जीभ की नोक से कठोर तालु पर झटके से मिलने से होता है; यथा–च, छ आदि।

(ग) टवर्ग–इस (मूर्द्धन्य) वर्ग के व्यंजन-चिह्नों का उच्चारण मूर्द्धा और जीभ की सहायता से होता है; यथा–ट, ठ, ड, ढ, ण।

नोट

(घ) तवर्ग–इस (दंत्य) वर्ग के व्यंजन-चिह्नों का उच्चारण दाँत के साथ जीभ की नोक के मिलने से होता है; यथा–त, थ, द आदि।

(च) पवर्ग–इस (ओष्ठ्य) वर्ग के व्यंजन चिह्नों का उच्चारण दोनों ओठों की सहायता से होता है; उदाहरणार्थ–प, फ, ब, भ, म।

(ii) प्राणत्व-आधार–व्यंजन-वर्णों के उच्चारण-संदर्भ में निकलने वाली हवा को ध्यान में रखकर की गई लिपि-चिह्नों की दो वर्गों की व्यवस्था उत्तम कोटि की है।

(क) महाप्राण–जिन व्यंजनो के उच्चारण में हवा का प्रवाह तीव्र हो तथा हकारत्व विद्यमान हो। प्रत्येक वर्ग के द्वितीय तथा चतुर्थ व्यंजन वर्ण महाप्राण हैं–

कवर्ग–ख, (kh), घ (gh) चवर्ग–छ (chh) झ (jh)

टवर्ग–ठ (Th), ढ (Dh) तवर्ग–थ (Th) ध (Dh)

पवर्ग–फ (Ph), भ (Bh)

(ख) अल्पप्राण–जिन व्यंजन वर्णों के उच्चारण में हवा का प्रवाह मंद हो तथा हकारत्व का अंश न हो। प्रत्येक वर्ग के प्रथम, तृतीय तथा पंचम व्यंजन वर्ण, अल्पप्राण हैं–

कवर्ग–क, ग, ङ चवर्ग–च, ज, ञ

टवर्ग–ट, ड, ण तवर्ग–त, द, न

पवर्ग–प, ब, म

(iii) नासिक्य-आधार–जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा मुख्यत: नाक से निकले, उन्हें नासिक्य व्यंजन कहते हैं। नागरी लिपि के प्रत्येक व्यंजन वर्ग में अनुनासिक व्यंजन को अंत में पाँचवे स्थान पर व्यवस्थित किया गया है; यथा–क, च, ट, त और पवर्ग के क्रमश: नासिक्य चिह्न हैं–ङ, ञ, ण, न, म।

(iv) संरचनानुसार–नागरी वर्णमाला में सामान्य रूप से मूल व्यंजनों को स्थान दिया गया है–संयुक्त व्यंजन वर्णमाला में नहीं हैं। प्रयोग आवश्यक होने पर संयुक्त और द्वित्व रूप बना लेते हैं; यथा–

(क) मूल व्यंजन–क, ख, च, त आदि।

(ख) संयुक्त व्यंजन–क्ष (क्ष), त्र (त्र), ज्ञ (ज्ञ)।

(ग) द्वित्व व्यंजन-क्क, त्त, द्द, (पक्का, रत्ती, भद्दा) आदि।

15.2.3 लिपि-चिह्न नाम तथा ध्वनि अनुरूपता

नागरी लिपि के वर्णों की यह प्रमुख विशेषता है कि वर्णों के नाम के ही अनुरूप शब्दों में भी उनका उच्चारण होता है; यथा–क-कमल, त-तमाल आदि।

इस प्रकार नागरी वर्ण-ज्ञान होने पर किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण संभव और सरल है। रोमन लिपि में यह गुण नहीं है। रोमन के संकेतों की ध्वनियाँ शब्दों से प्रयुक्त होकर कुछ से कुछ हो जाती हैं। प्रत्येक लिपि-संकेत के साथ शब्दों से प्रयुक्त होने वाली उनकी ध्वनि को याद करना पड़ता है। रोमन में इस संदर्भ की अनेकरूपता दिखाई देती है–

(क) अंग्रेजी के कुछ शब्दों के उच्चारण में कुछ लिपि-संकेतों के नाम की मात्र प्रथम ध्वनि का प्रयोग होता है; यथा–B (बी) 'ब'-Bag (बैग), D (डी) 'ड'-Date (डेट), K (के) 'क'-Kite (काइट)।

(ख) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि-संकेतों के नाम की दूसरी ध्वनि का प्रयोग किया जाता है; यथा– F (एफ) 'फ'-Fan (फैन), L (एल) 'ल'-Lame (लेम), M (एम) 'म'-Man (मैन)।

नोट

(ग) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि-संकेतों के लिए किसी भी ध्वनि का प्रयोग नहीं होता है, इनके स्थान पर पूर्ण भिन्न ध्वनि का प्रयोग किया जाता है; यथा–C (सी) 'क'-Cat (कैट), H (एच) 'ह'-House (हाउस), H (एच) 'अ'-Hour (आवर)।

15.2.4 एक ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न

नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है कि लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए एक संकेत का प्रयोग होता है। रोमन में यह गुण अपेक्षाकृत न्यून है। इसमें एक ध्वनि के लिए एक से अधिक संकेतों के प्रयोग होते हैं; यथा–

क > K (के)-Kite काइट (पतंग)
> Ch (सी एच)-Chemistry कैमिस्ट्रि (रसायन विज्ञान)
> C (सी)-Coat कोट (कोट)
> Ck (सी के)-Back बैक (पीछे)
> Que (क्यू-यू-ई)-Cheque चेक (चेक)
> X (एक्स)-Fox फॉक्स (लोमड़ी)

इस प्रकार 'फ' के लिए F (Fan), Ph (Photo), Gh (Rough) के प्रयोग मिलते हैं, तो 'इ' के लिए i (Tin)] O (Women), Y (System) आदि संकेत प्रयुक्त होते हैं।

15.2.5 एक लिपि-चिह्न के लिए एक ध्वनि

एक लिपि चिह्न के लिए एक ध्वनि का होना वैज्ञानिकता है। नागरी लिपि के किसी वर्ण को शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत कहीं भी प्रयोग करें, ध्वनि एक ही होती है। हिंदी में कुछ एक अपवाद मिल सकते हैं, तो रोमन लिपि में यह कमी बहुत खटकती है–

A (ए) अ > Affirm (अफ्फर्म)–निश्चय पूर्वक कहना
आ > Car (कार)–कार
ए > Rate (रेट)–नियत मूल्य
ऐ > At (ऐट)–पर

इसी प्रकार U (यू) का उच्चारण अ (Cut) उ (Put) यू (Unit) आदि रूपों में होता है।

15.2.6 व्यंजन की आक्षरिकता

नागरी लिपि के सभी व्यंजनों के साथ स्वर अ का उच्चारण होता है। यह गुण व्यंजनों की आक्षरिकता कहलाती है। च > च्. अ, त > त्. अ आदि। वह लिपि श्रेष्ठ मानी जाती जिसमें कम समय, कम स्थान और कम खर्च के साथ स्पष्ट और अनुकूल अभिव्यक्ति हो।

इस प्रकार नागरी के आक्षरिक रूप के लेखन में त्वरा आती है, साथ ही समय तथा स्थान की भी बचत होती है।

रोमन लिपि के वर्णों में यह गुण अपेक्षाकृत कम है, जिसके कारण समय स्थान और शक्ति अपेक्षाकृत अधिक लगती है; यथा–

कमल KAMAL, रमन RAMANA, चम-चम CHAMA CHAMA, छम-छम CHHAMA CHHAMA.

नोट

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए–

1. मध्यकाल में स्थापत्य कला की एक शैली थी–
   (क) नागर शैली (ख) राजपूत शैली (ग) मुगल शैली
2. राजभाषा हिंदी लिखी जाती है–
   (क) खरोष्ठी लिपि में (ख) रोमन लिपि में (ग) देवनागरी लिपि में
3. विश्व में सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि मानी जाती है।
   (क) फारसी (ख) देवनागरी (ग) रोमन
4. एक ही ध्वनि के लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है–
   (क) रोमन में (ख) फारसी में (ग) अरबी में
5. हिंदी के संयुक्त व्यंजन हैं–
   (क) ङ, ञ, ण, न, म (ख) क्ष, चा, ज्ञ, श्र (ग) क ख च त

15.2.7 मात्रा का प्रयोग

नागरी लिपि के स्वरों का कभी स्वतंत्र रूप में प्रयोग होता है, तो कभी उनके मात्रा संकेतों का। स्वरों के स्वतंत्र प्रयोग में किसी अन्य लिपि-संकेतों का सहारा नहीं लेना पड़ता है; यथा–

अ–अपनी, इ–इधर आदि।

जब स्वर के स्थान पर उनकी मात्राओं का प्रयोग किया जाता है, तो लेखन का मूलाधार व्यंजन होता है; यथा–

आ > ा–माता, इ > ि–लिपि, उ > ु–कुछ, ऊ > ू–मूल आदि।

यदि मात्रा प्रयोग की व्यवस्था न होती तो स्थान शक्ति एवं समय अधिक लगने से लेखन में त्वरा गुण संभव न होता। ऐसे में लेखन का रूप इस प्रकार होता; यथा–माता = म् आ त् आ, लिपि = ल् इ प् इ, कुछ = क् उ छ् अ।

ऐसी वैज्ञानिकता रोमन लिपि में नहीं है। स्वरों के मात्रा रूप के अभाव में उनका स्वतंत्र रूप ही प्रयुक्त होता है; यथा–पतन = PATANA, कमल KAMALA आदि।

15.2.8 ह्रस्व-दीर्घ स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न

यह नागरी की प्रमुख वैज्ञानिकता है। रोमन लिपि में यह गुण आंशिक रूप में भी नहीं है। नागरी लिपि में स्वर के दो रूप हैं-ह्रस्व तथा दीर्घ; यथा–

ह्रास्व स्वर-अ, इ, उ आदि।

दीर्घ स्वर-आ, ई, ऊ आदि।

इस प्रकार स्वर के ह्रस्व तथा दीर्घ, दो रूपों से ध्वनियों का अधिक शुद्ध उच्चारण और लिपिबद्ध करना संभव है; यथा–रम, रमा, राम, रामा।

लत, लता, लात, लाता।

ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर ध्वनियों के दो रूपों से उक्त लेखन संभव है, अन्यथा रम, रमा, राम, रामा के लिए एक ही रूप होता। रोमन में 'अ' तथा 'आ' स्वर ध्वनियों के लिए सामान्यत: 'A' का वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही स्थिति होती है; यथा–

नोट

RAMA = रम, रमा, राम, रामा।

LATA = लत, लता, लात, लाता।

15.2.9 पर्याप्त लिपि-चिह्न

वैज्ञानिक लिपि में संबंधित भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त चिह्नों का होना आवश्यक होता है। नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है। रोमन लिपि द्वारा अंग्रेजी की भी सभी ध्वनियों को स्पष्ट रूप में लिपिबद्ध करना अत्यंत कठिन है। रोमन लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतंत्र लिपि चिह्न नहीं है। इनको लिपिबद्ध करने के लिए अल्पप्राण ध्वनि के साथ 'H' का प्रयोग किया जाता है; यथा–

ख KH, घ GH, ठ TH, फ PH ।

अंग्रेजी में लिपि-सकेंतों की अपर्याप्तता के कारण पढ़ने में आने वाली समस्याएँ द्रष्टव्य हैं–

AGHAN > अगहन, अघन; PATH– पथ, पठ आदि।

इसके अतिरिक्त सुपाठ्यता और लेखन-सारलता नागरी लिपि की विशेषताएँ है, जिनसे इसकी वैज्ञानिकता और पुष्ट होती है। इन विशेषताओं को देखते हुए नागरी लिपि को संपर्क लिपि के रूप में प्रयोग करन चाहिए, इससे राष्ट्रीय एकता भी सुदृढ़ होगी।

15.3 सारांश

प्राचीन नागरी लिपि का प्रचार उत्तर भारत में नवीं सदी के अंतिम चरण से मिलता है, यह मूलत: उत्तरी लिपि है, पर दक्षिण भारत में भी कुछ स्थानों पर आठवीं सदी से यह मिलती है। दक्षिण में इसका नाम नागरी न होकर नंद नागरी है। नागरी लिपि को नागरी या देवनागरी लिपि भी कहते हैं। नागरी लिपि के आठवीं, नौवीं शताब्दी के रूप को 'प्राचीन नागरी' नाम दिया गया है। दक्षिण भारत के विजय नगर के राजाओं के दान-पात्रों पर लिखी हुई नागरी लिपि का नाम 'नंदिनागरी' दिया गया है।

भाषाविज्ञानियों द्वारा देवनागरी लिपि के नामकरण के निम्नलिखित मत सामने आते हैं–

डॉ. धीरेंद्र वर्मा के मतानुसार मध्ययुग में स्थापत्य कला की एक शैली थी–नागर। इसमें सभी चिह्न किसी न किसी रूप में चतुर्भुज से मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार के प, म, ग, भ, झ आदि चिह्नों की शैली विशेष 'नागर' आधार पर इसे नागरी नाम दिया गया है।

डॉ. वर्मा के द्वितीय मतानुसार प्राचीन समय में उत्तर भारत की विभिन्न राजधानियों में 'नगर' किसी प्रसिद्ध राजधानी का नाम रहा होगा और इसी राजधानी के आधार पर इस लिपि का नाम 'नागरी' पड़ा है।

डॉ. वर्मा जी का प्रथम मत जहाँ कुछ ही चिह्नों पर आधारित है तो दूसरा मत पूर्ण काल्पनिक होने से स्वीकार्य नहीं है।

एक अन्य मत के अनुसार–संस्कृत भाषा को 'देववाणी' भी कहते हैं। संस्कृत भी नागरी में लिखी जाती है। इसलिए नागरी में 'देव' जोड़ कर 'देवनागरी' नाम दिया गया है।

भाषा-विकास में मानव और देश की उन्नति निहित है। लिपि को पाकर भाषा में स्थायित्व विकसित होता है। भारतीय परिवेश में सुसभ्य अनुकूल विचार वाले व्यक्ति को 'नागर' कहते हैं। भाषा के सुदंर-अनुकूल प्रयोक्ता और उसे स्थायित्व प्रदान करने से प्रयत्नशील 'नागर' (सुसभ्य व्यक्ति) के आधार पर इसका नाम 'नागरी' रखा गया है। संस्कृत को 'देव भाषा' कहते हैं। संस्कृत की भी लिपि नागरी है। इसलिए इसे 'देवनागरी' नाम भी दिया गया है।

नोट

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिंदी की लिपि नागरी है। संवैधानिक रूप में नागरी को राजलिपि का पद प्राप्त है। विश्व की कोई भी वर्णमाला नागरी के समान सर्वांगीण और वैज्ञानिक नहीं है। माना सभी को अन्य वस्तुओं की भाँति अपनी भाषा तथा लिपि ही अच्छी लगती है, किंतु नागरी की वैज्ञानिकता को कोई विद्वान अस्वीकार नहीं कर सकता है। यदि भारतवर्ष की सभी भाषाओं को नागरी लिपि में भी लिखा जाए, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाएगी। देवनागरी संपर्क लिपि बन जाएगी और भारतवर्ष के समस्त भाषाभाषियों में भावादान-प्रदान सरल हो जाएगा।

देवनागरी लिपि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

चिह्न संख्या– नागरी में चिह्नों की संख्या अनुकूल और उपयोगी है।

आदर्श वर्गीकरण– नागरी वर्णमाला का वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक है। नागरी वर्णमाला को मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया गया है–स्वर तथा व्यंजन। स्वर को प्रारंभ में तथा व्यंजन को बाद में स्थान दिया गया है।

स्वर वर्णों की व्यवस्था अपने में पर्याप्त वैज्ञानिक है। स्वरों की आकृति के अनुसार की गई व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है।

नागरी में 5-5 व्यंजनों के वर्गों की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था है–कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग में क्रमश: कंठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दंत्य तथा ओष्ठ्य लिपि चिह्न हैं।

व्यंजन-वर्णों के उच्चारण-संदर्भ में निकलने वाली हवा को ध्यान में रखकर की गई लिपि-चिह्नों की दो वर्गों की व्यवस्था उत्तम कोटि की है।

लिपि-चिह्न नाम तथा ध्वनि अनुरूपता– नागरी लिपि के वर्णों की यह प्रमुख विशेषता है कि वर्णों के नाम के ही अनुरूप शब्दों में भी उनका उच्चारण होता है; यथा–क-कमल, त-तमाल आदि। इस प्रकार नागरी वर्ण-ज्ञान होने पर किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण संभव और सरल है। रोमन लिपि में यह गुण नहीं है। रोमन के संकेतों की ध्वनियाँ शब्दों से प्रयुक्त होकर कुछ से कुछ हो जाती हैं।

एक ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न– नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है कि लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए एक संकेत का प्रयोग होता है। रोमन में यह गुण अपेक्षाकृत न्यून है। इसमें एक ध्वनि के लिए एक से अधिक संकेतों के प्रयोग होते हैं; यथा–

क > K (के)-Kite काइट (पतंग)

एक लिपि-चिह्न के लिए एक ध्वनि– एक लिपि चिह्न के लिए एक ध्वनि का होना वैज्ञानिकता है। नागरी लिपि के किसी वर्ण को शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत कहीं भी प्रयोग करें, ध्वनि एक ही होती है। हिंदी में कुछ एक अपवाद मिल सकते हैं।

व्यंजन की आक्षरिकता

मात्रा का प्रयोग

ह्रस्व-दीर्घ स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न– यह नागरी की प्रमुख वैज्ञानिकता है। रोमन लिपि में यह गुण आंशिक रूप में भी नहीं है।

पर्याप्त लिपि-चिह्न– वैज्ञानिक लिपि में संबंधित भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त चिह्नों का होना आवश्यक होता है। नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है।

इसके अतिरिक्त सुपाठ्यता और लेखन-सारलता नागरी लिपि की विशेषताएँ है, जिनसे इसकी वैजानिकता और पुष्ट होती है। इन विशेषताओं को देखते हुए नागरी लिपि को संपर्क लिपि के रूप में प्रयोग करन चाहिए, इससे राष्ट्रीय एकता भी सुदृढ़ होगी।

नोट

15.4 शब्दकोश

1. **आक्षरिकता–** अक्षर या अक्षरों का।
2. **कंठ्य–** गले का, कंठ से बोला जाने वाला (अक्षर)।

15.5 अभ्यास प्रश्न

1. देवनागरी के नामकरण पर प्रकाश डालिए।
2. देवनागरी लिपि के नामकरण संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत का उल्लेख कीजिए।
3. देवनागरी लिपि की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता पर विचार कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. (क) 2. (ग) 3. (ख) 4. (क) 5. (ख)

15.6 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा–* नरेश मिश्र, संजय प्रकाशन, दिल्ली।

नोट

इकाई–16: वाक्यांश के लिए एक शब्द

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

16.1 वाक्यांश के लिए एक शब्द

16.2 शब्दकोश

16.3 अभ्यास-प्रश्न

16.4 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- वाक्यांश के लिए एक शब्द के प्रयोग से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

भाषा की सुदृढ़ता भावों की गम्भीरता और चुस्त शैली के लिए यह आवश्यक है कि लेखक शब्दों (पदों) के प्रयोग में संयम से काम ले, ताकि वह विस्तृत विचारों या भावों को थोड़े-से-थोड़े शब्दों में व्यक्त कर सके। 'गागर में सागर भरना' कहावत यहीं चरितार्थ होती है। समास, तद्धित और कृदन्त वाक्यांश या वाक्य एक शब्द या पद के रूप में संक्षिप्त किये जा सकते हैं। ऐसी हालत में मूल वाक्यांश या वाक्य के शब्दों के अनुसार ही एक शब्द या पद का निर्माण होना चाहिए। दूसरी बात यह कि वाक्यांश को संक्षेप मे सामासिक पद का भी रूप दिया जाता है। कुछ ऐसे लाक्षणिक पद या शब्द भी हैं, जो अपने में पूरे एक वाक्य या वाक्यांश का अर्थ रखते हैं। निम्नलिखित वाक्य खण्डों के संक्षिप्त शब्दरूपों को याद रखना चाहिए, तभी हम थोड़े में अधिक-से-अधिक लिखने मे समर्थ हो सकेंगे। अभ्यास के लिए कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं–

16.1 वाक्यांश के लिए एक शब्द

वाक्यखण्ड	एक शब्द
जिसके पाणि (हाथ) में चक्र है	चक्रपाणि (विष्णु)
जिसके पाणि में वज्र है	वज्रपाणि (इन्द्र)
जिसके पाणि में वीणा है	वीणापाणि (सरस्वती)
जिसके चार भुजाएँ हैं	चतुर्भुज
जिसके दस आनन हैं	दशानन (रावण)
जिसके आने की तिथि (मालूम) न हो	अतिथि
जिसके शेखर पर चन्द्र हो	चन्द्रशेखर (शिव)

नोट

जिसके समान द्वितीय नही है	अद्वितीय
जिसके पार देखा जा सके	पारदर्शक
जिसके पार देखा न जा सके	अपारदर्शक
जिसके हृदय में ममता नहीं है	निर्मम
जिसके हृदय में दया नहीं है	निर्दय
जानने की इच्छा	जिज्ञासा
जिसकी ग्रीवा सुन्दर हो	भूधर
जिसके दो पद (पैर) हैं	द्विपद
जो सर्वशक्तिसम्पन्न है	सर्वशक्तिमान्
जिसके चार पद हैं	चतुष्पद
जिसका कोई नाथ न हो	अनाथ
जिसे भय नहीं है	निर्भीक, निर्भय
जिसे ईश्वर या वेद में विश्वास नहीं है	नास्तिक
जिसे ईश्वर या वेद में विश्वास है	आस्तिक
दो बार जन्म लेनेवाला	द्विज
जिसका कोई शत्रु नहीं जनमा है	अजातशत्रु
जिसका पति (धव) मर गया है	विधवा
जिसका पति जीवित (साथ) है	सधवा
जल में जनमनेवाला	जलज
अण्डे से जनमनेवाला	अण्डज
जिसका जन्म अनु (पीछे) हुआ हो	अनुज
जिसका जन्म अग्र (पहले) हुआ हो	अग्रज
जिसका कारण पृथ्वी है या जो पृथ्वी से संबद्ध है	पार्थिव
जिसका निवारण नहीं किया जा सके	अनिवार्य
साहित्य-रचना या साहित्य-सेवा से समबद्ध	साहित्यिक
जिसकी उपमा न हो	अनुपम
अनुचित बात के लिए आग्रह	दुराग्रह
जो कहा न जा सके	अकथनीय
जिसकी चिन्ता नहीं हो सकती	अचिन्तनीय, अचिन्त्य
यशवाला	यशस्वी
जो सब-कुछ जानता है	सर्वज्ञ
जो अल्प (कम) जानता है	अल्पज्ञ

नोट

जो बहुत जानता है	बहुज्ञ
जो कुछ नहीं जानता	अज्ञ
जो अग्र (आगे) की बात सोचता है	अग्रशोची
जो नया आया हुआ हो	नवागंतुक
जो भू के गर्भ (भीतर) का हाल जानता हो	भूगर्भवेत्ता
बीता हुआ	अतीत
स्वेद से उत्पन्न होनेवाला	स्वेदज
जो किये गये उपकारों को मानता है	कृतज्ञ
जो किये गये उपकारो को नहीं मानता है	कृतघ्न
नहीं मरने वाला	अमर
विष्णु का उपासक या विष्णु से सम्बद्ध	वैष्णव
शक्ति का उपासक या शक्ति से सम्बद्ध	शाक्त
शिव का उपासक या शिव से सम्बद्ध	शैव
जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है	कुलीन
जो सबमें व्याप्त है	सर्वव्यापी
जो किसी की ओर (प्रति) से है	प्रतिनिधि
गिरा हुआ	पतित
जो बहुत बोलता है	वाचाल
इन्द्रियों को जीतनेवाला	जितेन्द्रिय
अवश्य होनेवाला	अवश्यम्भावी
जो स्त्री के वशीभूत या उसके स्वभाव का है	स्त्रैण
जो युद्ध में स्थिर रहता है	युधिष्ठिर
जो कर्त्तव्य से च्युत हो गया है	कर्त्तव्यच्युत
जो क्षमा पाने लायक है	क्षम्य
जो (बात) वर्णन के अतीत (बाहर) है	वर्णनातीत
जो स्त्री सूर्य भी न देख सके	असूर्यम्पश्या
जो अत्यन्त कष्ट से निवारित किया जा सके	दुर्निवार
(विदेश में) प्रवास करनेवाला	प्रवासी
जो देखा नहीं जा सकता	अदृश्य, अलक्ष्य
जो वचन से परे हो	वचनातीत
जो कहा गया है	कथित
भविष्य में होनेवाला	भावी

नोट

जो सरों में जनमता है	सरसिज
अतिशय या अति बढ़ा-चढ़ाकर कहना	अतिशयोक्ति, अत्युक्ति
जो नहीं हो सकता	असम्भव
मिष्ट या मधुर भाषण करनेवाला	मिष्टभाषी, मधुरभाषी
जो मुकदमा लड़ता रहता है	मुकदमेबाज
जो आमिष (मांस) नहीं खाता	निरामिष
जो देने योग्य है	देय
जो अक्षर (पढ़ना-लिखना) जानता है	साक्षर
जो पहरा देता है	प्रहारी
बुरा (दुर) आग्रह	दुराग्रह
जो आग्रह सत्य हो	सत्याग्रह
जो पर (दूसरों का) अर्थी (भला चाहनेवाला) है	परार्थी
जो स्व (खुद) का अर्थी (भला चाहनेवाला) है	स्वार्थी
जो अल्प (कम) बोलनेवाला है	अल्पभाषी
जो मुकदमा दायर करता है	वादी, मुद्दई
जो अश्व (घोड़े) का आरोही (सवार) है	अश्वारोही
पथ का प्रदर्शन करनेवाला	पथप्रदर्शक
आशा से अतीत (अधिक)	आशातीत
जो संगीत जानता है	संगीतज्ञ
जो कला जानता है या कला की रचना करता है	कलाविद्, कलाकार
जो पर के अधीन है	पराधीन
जो देखने में प्रिय लगता है	प्रियदर्शी
आया हुआ	आगत
लौटकर आया हुआ	प्रत्यागत
जो जन्म से अन्धा है	जन्मान्ध
जो पोत (जहाज) युद्ध का है	युद्धपोत
जो चक्र धारण करता है	चक्रधर
जो नष्ट होनेवाला है	नश्वर
जो बहुत कठिनाई से मिलता है	दुर्लभ, दुष्प्राप्य
लोक का	लौकिक
परलोक का	पारलौकिक
आँखों के सामने	प्रत्यक्ष

नोट

आखों से परे	परोक्ष
अपने परिवार के साथ	सपरिवार
जो स्त्री कविता रचती है	कवयित्री
जो पुरुष कविता रचता है	कवि
जो स्त्री अभिनय करे	अभिनेत्री
जो पुरुष अभिनय करे	अभिनेता
जो दूसरे से ईर्ष्या करता है	ईर्ष्यालु
जो शत्रु की हत्या करता है	शत्रुघ्न
जो मांस आहार करता है	मांसाहारी
जो शाक आहार करता है	शाकाहारी
जो फल आहार करता है	फलाहारी
जो पिता की हत्या कर चुका	पितृहन्ता
जो माता की हत्या कर चुका	मातृहन्ता
जो अपनी हत्या करता है	आत्मघाती
निशा मे विचरण करनेवाला	निशाचर
जो नभ या ख (आकाश) में चलता है	नभचर, ख चर
गृह बसाकर रहनेवाला	गृहस्थ
कार्य करनेवाला	कार्यकर्त्ता
जो विज्ञान जानता है	वैज्ञानिक
हत्या करनेवाला	हत्यारा
जो द्वार का पालन (रक्षा) करता है	द्वारपाल
जो शास्त्र जानता है	शास्त्रज्ञ
जो कोई वस्तु वहन करता है	वाहक
बिना वेतन के	अवैतनिक
बिना अंकुश का	निरंकुश
जो व्याकरण जानता है	वैयाकरण
बिक्री करनेवाला	विक्रेता
हृदय का विदारण करनेवाला (दृश्य)	हृदयविदारक
झूठ बोलनेवाला	झूठा
धन देनेवाला (व्यक्ति या देवता)	धनद, कुबेर
किसी विषय को विशेषरूप से जाननेवाला	विशेषज्ञ
आकाश या गगन चूमनेवाला	आकाशचुम्बी, गगनचुम्बी

नोट

आलोचना करनेवाला	आलोचक
जानने की इच्छा रखनेवाला	जिज्ञासु
जो विधि या कानून के विरुद्ध है	अवैध, गैरकानूनी
वह स्थान, जहाँ मुर्दे जलाए जाते है	श्मशान
(वह पुरुष) जिसकी पत्नी साथ है	सपत्नीक
(वह स्त्री) जिसे पति छोड़ दे	परित्यक्ता
जो लोक में सम्भव न हो	अलौकिक
जो मन को हर ले	मनोहर
पाद (पैर) से सस्तक (सिर) तक	आपादमस्तक
शक्ति के अनुसार	यथाशक्ति
सबसे प्रिय	प्रियतम
क्षण भर में भंग (नष्ट) होनेवाला	क्षणभंगुर
जिसपर विश्वास किया गया है	विश्वस्त
ग्राम का	ग्रामीण
नगर का	नागरिक
याचना करनेवाला	याचक
देखने योग्य	दर्शनीय, द्रष्टव्य
पूछने योग्य	प्रष्टव्य
करने योग्य	करणीय, कर्तव्य
पूजने योग्य	पूजनीय, पूज्य
सुनने योग्य	श्रवणीय, श्रव्य
विधि (कानून) द्वारा प्रदत्त (प्राप्त)	विधिप्रदत्त
तर्क के द्वारा जो सम्मत (माना जा चुका) है	तर्कसम्मत
पढ़ने योग्य	पठनीय, पाठ्य
आलोचना के योग्य	आलोच्य
जिसे नहीं जीता जा सके	अजेय
खाने योग्य	खाद्य
नहीं खाने योग्य	अखाद्य
विश्वास के योग्य	विश्वसनीय
जो अनुकरण करने योग्य हो	अनुकरणीय
आदि से अन्त तक	आद्योपान्त
दाव (जंगल) का अनल (आग)	दावानल

नोट

टास्क पाठ से उतर कुछ नए वाक्यांश तथा उनके लिए एक शब्द दीजिए।

जो राजगद्दी का अधिकारी हो	युवराज
पर्ण (पत्ते) की बनी हुई कुटी	पर्णकुटी
बिना आयास (परिश्रम) के	अनायास
जो दायर मुकदमे का प्रतिवाद (बचाव या काट) करे	प्रतिवादी
नव (अभी-अभी) जनमा हुआ	नवजात
रात औश्र सन्ध्या के बीच की वेला	गोधूलि
जहाँ तक सध सके	यथासाध्य
वृष्टि का अभाव	अनावृष्टि
अत्यधिक वृष्टि	अतिवृष्टि
पुत्र की वधू	पुत्रवधू
पुत्र का पुत्र	पौत्र
दिन पर दिन	दिनानुदिन
जहाँ खाना मुफ्त मिलता है	सदाव्रत
जहाँ औषधि दानस्वरूप मिलती है	दातव्य औषधालय
जो धर्माचरण करता है	धर्मात्मा
जो पुस्तकों की आलोचना या समीक्षा करता है	आलोचक, समीक्षक
जो व्याख्या करता है	व्याख्याता
मन की वृत्ति (अवस्था)	मनोवृत्ति
जो साँप पकड़ता और उसका खेल करता है	सँपेरा
क्षुधा से आतुर	क्षुधातुर
जो पांचाल देश की है	पांचाली
द्रुपद की पुत्री	द्रौपदी
जो यान (सवारी) जल में चलता है	जलयान
जो पुरुष लोहे की तरह बलिष्ठ है	लौहपुरुष
युग का निर्माण करनेवाला	युगनिर्माता
यात्रा करनेवाला	यात्री
जहाँ लोगों का मिलन हो	सम्मेलन
जहाँ नदियों का संगम (मिलन) हो	संगम
सुख देनेवाला	सुखद

नोट

शयन का आगार (कमरा)	शयनागार
जिसका उदर लम्बा हो	लम्बोदर
दु:ख देनेवाला	दु:खद
द्रुत गमन करनेवाला	द्रुतगामी
प्रकृति सम्बन्धी	प्राकृतिक
जिसे या जिसका मूल नहीं है	निर्मूल
जो स्मरण रखने योग्य है	स्मरणीय
सुन्दर हृदयवाला	सुहृद
जो मोक्ष चाहता हो	मुमुक्षु
जिसकी मति प्रत्युत्पन्न (झट सोचनेवाली) है	प्रत्युत्पन्नमति
जिसकी बुद्धि कुश के अग्र (नोक) की तरह पैनी हो	कुशाग्रबुद्धि
वह जिसकी दृष्टि दूर तक जाए	दूरदर्शी, दूरन्देश, अग्रशोची
जो सबको समान भाव से देखे	समदर्शी
वह मनुष्य जिसकी स्त्री मर गई है, अर्थात जिसके परिवार की गाड़ी पत्नीरूपी 'धुर' या धुरे से विरहित है	विधुर
एक ही समय में वर्तमान	समसामयिक
वह जिसकी प्रतिज्ञा दृढ़ हो	दृढ़प्रतिज्ञ
जिसने चित्त किसी विषय में दिया (लगाया) है	दत्तचित
मित (कम) बोलनेवाला	मितभाषी
जिसकी बाहुएँ दीर्घ हैं	दीर्घबाहु
जिसका तेज निकल गया है	निस्तेज
जो भेदा या तोड़ा न जा सके	अभेद्य
जो कठिनाई (दुर) से भेदा या तोड़ा जा सके	दुर्भेद्य
जिसकी आशा न की गई हो	अप्रत्याशित
जो मापा न जा सके	अपरिमेय, अपरिमित
जो प्रमेय (प्रमाण से सिद्ध) न हो	अप्रमेय
जो इच्छा के अधीन है	इच्छाधीन, ऐच्छिक
जो दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से काम करे	स्थानापन्न
जो पीने योग्य हो	पेय
एक स्थान से दूसरे स्थान को हटाया हुआ	स्थानान्तरित
जीतने की इच्छा	जिगीषी
लाभ की इच्छा	लिप्सा

नोट

खाने की इच्छा	बुभुक्षा
मरण तक	आमरण
जीवन-भर	आजीवन
बिना पलक या निमिष गिराये	निर्निमेष, अपलक, एकटक
किसी काम में दूसरे से बढ़ने की इच्छा या उद्योग	स्पर्द्धा
क्रम के अनुसार	यथाक्रम
जो सव्य (बायें) हाथ से सधा हुआ है	सव्यसाची
मेघ की तरह नाद करनेवाला	मेघनाद
जिस स्त्री को कोई सन्तान न हो	वन्ध्या, बाँझ
समान (एक ही) उदर से जन्म लेनेवाला	सहोदर

16.2 शब्दकोश

1. **प्रक्षिप्तांश–** मिलाया हुआ अंश, व्यर्थ जुड़ी हुआ अंश
2. **पच्चीकारी–** नगीने जड़ने आदि की प्रक्रिया
3. **प्रेमाम्बुधि–** प्रेम का सागर

उत्तर: स्व-मूल्यांकन

1. ✓ 2. X 3. X 4. ✓

16.3 अभ्यास-प्रश्न

1. वाक्यांश के लिए एक शब्द का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति में किस प्रकार सहायक है?

16.4 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना–* डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती–* प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–17: सन्धि–विच्छेद

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

17.1 सन्धि-विच्छेद

17.1.1 स्वर-सन्धि

17.1.2 व्यंजन-सन्धि

17.2 शब्दकोश

17.3 अभ्यास-प्रश्न

17.4 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- संधि-विच्छेद के नियमों से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

दो वर्णों के मेल होने से जो विकार उत्पन्न होता है, उसे सन्धि कहते हैं। दो शब्द जब पास-पास होते हैं तो उच्चारण की सुविधा के लिए पहले शब्द के अन्त वाले और दूसरे शब्द के शुरूवाले वर्णों में मेल होता है। उनके मेल से विकार उत्पन्न होता है। यह विकार कहीं एक ही वर्ण में और कहीं दोनों वर्णों में होता है। कहीं-कहीं दोनों वर्णों का स्थान एक तीसरा वर्ण ले लेता है।

17.1 संधि-विच्छेद

'संयोग और सन्धि' एक ही चीज नहीं है। संयोग केवल हल व्यंजनों में ही होता है और वे ज्यों-के त्यों रह जाते हैं, अर्थात् उनमें कोई विकार नहीं होता; जैसे– त् + न = त्न, तत + त्व = तत्व; किन्तु संधि व्यंजनों के अतिरिक्त स्वरों में भी होती है और उनमें विकार उत्पन्न होता है। जैसे–उत् + नति = उन्नति।

संधि के तीन भेद हैं–स्वर सन्धि, व्यंजन सन्धि, विसर्ग सन्धि।

17.1.1 स्वर–सन्धि

स्वर के साथ स्वर के मेल से जो विकार होता है, उसे स्वर–सन्धि कहते हैं।

इसके पाँच भेद हैं–दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण् और अयादि।

1. दीर्घ सन्धि- यदि ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद क्रमशः ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ हो तो दोनों मिलकर उसी क्रम से आ, ई, ऊ, ऋ हो जाते हैं। जैसे–

नोट

परम + अर्थ – परम् (अ) + (अ) र्थ – परम् (आ) + र्थ = परमार्थ

महा + इन्द्र – मह (ई) + (इ) – न्द्र = मह + (ई) + न्द्र = महीन्द्र।

अ + आ = आ; असुर + अरि = असुरारि।

अ + आ = आ; देव + आलय = देवालय।

आ + आ = आ; शिक्षा + अर्थी = शिक्षार्थी।

इ + इ = ई; गिरि + इन्द्र = गिरीन्द्र।

इ + इ = ई; गिरि + ईश = गिरीश।

उ + ऊ = ऊ; लघु + ऊर्मी = लघूर्मि।

ऊ + उ = ऊ; वधू + उत्सव = बधूत्सव।

2. गुण सन्धि- यदि 'अ' या 'आ' के बाद ह्रस्व या दीर्घ इ, ऋ रहे, तो ह्रस्व या दीर्घ अ – इ मिलकर 'ए' अ – उ मिलकर 'ओ' और अ – ऋ मिलकर 'अर्' हो जाता है। जैसे–

देव + इन्द्र – देव् (अ) + (इ) न्द्र = देवेन्द्र।

महा + ऋषि – मह (आ) + (ऋ) षि – मह + (अर्) + षि = महर्षि।

अ + ई = ए; नर + ईश = नरेश।

अ + इ = ए; नर + इन्द्र = नरेन्द्र।

आ + ई = ए; रमा + ईश = रमेश।

अ + उ = ओ; सूर्य + उदय = सूर्योदय।

अ + ऊ = ओ; नद + उर्मि = नदोर्मि।

आ + उ = ओ; महा + उदय = महोदय।

3. वृद्धि सन्धि- यदि 'अ' या 'आ' के बाद 'ए' या 'ऐ' हो, तो दोनों मिलकर 'ऐ' तथा 'ओ' या 'औ' हो, तो दोनों मिलकर 'औ' हो जाता है। जैसे–

एक + एक – एक् (आ) + (ए) + क – एक् (ऐ) + क = एकैक।

परम + औषध – परम् (अ) + (औ) षध – परम् + औषध = परमौषध।

अ + ए = ऐ; एक + = एकैक। अ + ऐ = ऐ; विचार + ऐक्य = विचारैक्य।

आ + ए = ऐ; तथा + एव = तथैव। आ + ऐ = ऐ, कहा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य।

आ + ओ = औ, जल + ओघ = जलौघ।

अ + औ = औ, जल + ओध = जलौध।

अ + औ = औ, भव + औषध = भवौषध।

4. यण सन्धि- यदि ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ के बाद कोई भिन्न स्वर हो, तो इ, ई का 'य', उ, ऊ, का 'व', ऋ का 'र' हो जाता है। जैसे–अनु + अय – अन् (उ) + अय – अन् + (व) अय – अन्व् + अय = अन्वय। अति + आचार – अत् (इ) + आचार – अत् + (य) + आचार – अत्य + आचार – अत्याचार।

इ के परे अ – गति + अवरोध = गत्यवरोध।

ई के परे अ – गोपी + अर्थ = गोप्यर्थ।

इ के परे आ – इति + आदि = इत्यादि।

ई के परे आ – नदी + आगम = नद्यागम।

इ के परे उ – अभि + उदय = अभ्युदय।

ई के परे उ – देवी + उक्त = देव्युक्त।

नोट

टास्क यण संधि के कुछ उदाहरण दीजिए।

5. आयादि सन्धि- यदि ए, ऐ ओ, औ के बाद कोई स्वर हो, तो 'ए' का 'अय' 'ऐ' का 'आय्' 'ओ' का 'अव्' और 'औ' का 'आव्' होता है। जैसे–

ने + अन – (ए) + अन – न् (अय) + अन – नय् + अन = नयन।

पौ + अक – प् (औ) + अक – प् (आव्) + अक – पाव + अक = पावक।

शे + अन = शयन; चे + अन = चयन;। नै + अक = नायक;

गै + अक = गायक; पो + अन = पवन; गो + ईश = गवीश;

पो + इत्र = पवित्र; भौ + उक = भावुक; नौ + इक = नाविक;

पौ + अन = पावन; पौ + अक = पावक; श्रौ + अन = श्रावन;

17.1.2 व्यंजन सन्धि

व्यंजन के साथ स्वर या व्यंजन के मेल से जो विकार होता है उसे व्यंजन सन्धि कहते हैं।

संस्कृत में व्यंजन सन्धि के बहुत-से नियम हैं। यहाँ उन्हीं नियमों का वर्णन किया जा रहा है, जो हिन्दी के लिए आवश्यक हैं।

नियम-1. यदि क्, च्, द्, त्, प् के बाद किसी वर्ग का तृतीय या चतुर्थ वर्ण हो, या य, र, ल, ब हो या कोई स्वर हो, तो क्, च्, ट्, त्, प् के स्थान पर क्रमशः ग्, ज्, ड्, द्, ब् (तृतीय वर्ण) हो जाता है। जैसे–

दिक् + गज = दिग्गज। षट् + दर्शन = षड्दर्शन।

अच् + अन्त = अजन्त। सत् + विचार = सदविचार।

नियम-2. यदि क्, च्, ट्, त्, प् के बाद 'न' या 'म' हो, तो क्, च्, ट्, त्, प् की जगह उसी वर्ण का पंचम वर्ण हो जाता है। जैसे–

वाक् + मय = वाङ्मय । चित् + मय = चिन्मय। मृत् + मय = मृण्मय।

षट् + मार्ग = षण्मार्ग। जगत् + नाथ = नगन्नाथ। अप् + मय = अम्मय।

नियम-3. यदि 'म' के बाद कोई स्पर्श वर्ण हो 'म' का अनुस्वार या बाद वाले वर्ण के वर्ग का पंचम वर्ण हो जाता है। जैसे–

अहम् + कार = अहंकार। सम् + गम = संगम। सम् + चय = संचय।

सम् + ताप = संताप। सम् + कल्प = संकल्प। सम् + पूर्ण = सम्पूर्ण।

नियम-4. यदि 'म' के बाद अन्तस्थ या ऊष्म वर्ण हो, तो 'म' का केवल अनुस्वार (पंचम वर्ण) होता है। जैसे–

सम् + योग = संयोग। सम् + वाद = संवाद। सम् + हार = संहार।

सम् + सार = संसार। सम् + रक्षक = संरक्षक।

नियम-5. यदि 'त्' के बाद ग, घ, द, ध, ब, भ, य, र, व या स्वर हो, तो त् का द् होता है। जैसे–

सत् + गति = सद्गति। उत् + घोष = उद्घोष। उत् + दण्ड = उद्दण्ड।

सत् + धर्म = सद्धर्म। जगत् + बन्धु = जगद्बन्धु।

भगवत् + भक्ति = भगवद्भक्ति। उत् + योग = उद्योग।

तत् + रूप = तद्रूप। भविष्यत् + वाणी = भविष्याद्वाणी।

उत् + अय = उदय। जगत् + इन्द्र = जगदिन्द्र। जगत् + ईश = जगदीश।

नोट

नियम–6. यदि त् या द के बाद च या छ हो, तो त या द् का च, ज या झ हो तो ज्; ट या ठ हो, तो ट, और ड या ढ हो तो ड् हो जाता है। जैसे–

उत् + चारण = उच्चारण। उत् + छिन्न = उच्छिन्न।

शरद् + चन्द्र = शरचन्द्र। शरद् + छवि = उच्छवि।

नियम–7. यदि त् या द के बाद 'ल' हो, तो त् या द के स्थान में 'ल्' होता है। जैसे–

तत् + लीन = तल्लीन। उत् + लेख = उल्लेख।

उत् + लंघन = उल्लंघन।

नियम–8. यदि त् या द् के बाद 'शर' हो, तो त् या द् का च् और 'श' का 'छ' होता है। जैसे–

उत् + शिष्ट = उच्छिष्ट। सत् + शास्त्री = सच्छास्त्री।

श्रीमत् + शरच्चन्द्र = श्रीमच्छरच्चन्द्र।

नियम–9. यदि त् या द् के बाद 'ह' हो तो त् या द् का द् और ह का 'य' होता है। जैसे–

तत् + हित = तद्धित। उत् + हत = उद्हत। उत् + हरण = उद्धरण, उत् + हार = उद्धार।

नियम–10. यदि ह्रस्व स्वर के बाद 'छ' हो तो 'छ' के पूर्व 'च' होता है और यदि दीर्घ स्वर के बाद 'छ' हो, तो च् विकल्प से आता है। जैसे–

वि + छेद = विच्छेद। परि + छेद = परिच्छेद। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीछाया या लक्ष्मीच्छाया।

नियम–11. यदि च् या ज् के बाद 'न' हो तो न का 'ञ' हो जाता है। जैसे–

याच् + ना = याञ्चा। यज् + न = यज्ञ।

नियम–12. यदि किसी शब्द में 'स' हो और उसके पूर्व स्वर हो (अ, आ को छोड़ कर) तो 'स' का 'ष' होता है। जैसे–

वि + सम = विषम। वि + साद = विषाद। नि + साद = निषाद।

सु + समा = सुषमा। अभि + सेक = अभिषेक।

नियम–13. यदि ष् के बाद त हो, तो त का ट और ष् हो तो थ का ठ हो जाता है। जैसे–

पुष् + त = पुष्ट। दुष + त = दुष्ट। कष् + त = कष्ट।

द्रष् + ता = द्रष्टा। स्रष् + ता = स्रष्टा।

आकृष् + त = आकृष्ट। उत्कृष् + त = उत्कृष्ट। वृष् + ति = वृष्टि। पृष + थ = पृष्ट।

षष् + ठ = षष्ठ। ओष् + ठ = ओष्ठ।

3. विसर्ग सन्धि

स्वर या व्यंजन के साथ विसर्ग के मेल से जो विकार होता है, उसे विसर्ग-सन्धि कहते हैं।

नियम–1. यदि विसर्ग के पहजे 'अ' हो और उसके बाद किसी वर्ग का तृतीय, चतुर्थ या पंचम वर्ण हो, अथवा य, र, ल, व, ह हो, तो विसर्ग सहित 'अ' का 'अ:' हो जाता है। जैसे–

मन: + हर = मन (अ:) + हर = मन + (ओ) हर = मनोहर।

सर: + ज = सरोज। मन: + नयन = मनोनयन। यश: + दा = यशोदा।

यश: + धरा = यशोधरा। पय: + द = पयोद। पुर: + हित = पुरोहित।

नियम–2. यदि विसर्ग के पहले 'अ' हो और उसके बाद क, ख, प, फ, में से कोई हो, तो विसर्ग ज्यों-का-त्यों रहता है। जैसे–

प्रात: + काल = प्रात:काल। रज:+ कण = रज:कण।

नोट

दुः + ख = दुःख। पयः + पान = पयःपान।

अपवादः + मनः + कामना = मनस्कामना या मनोकामना।

नमः + कार = नमस्कार।

पुरः + कार = पुरस्कार।

नियम-3. यदि विसर्ग के पहले 'अ' को छोड़कर कोई अन्य स्वर हो और विसर्ग के बाद कोई भी स्वर हो, या किसी वर्ग का तृतीय वर्ग का तृतीय, चतुर्थ या पंचम वर्ण अथवा य, र, ल, व, ह हों तो विसर्ग का 'र' हो जाता है। जैसे–

निः + आधार = निराधार। निः + औषध = निरौषध।

निः + उपाय = निरुपाय। निः + झर = निर्झर।

बहिः + गत = वहिर्गत। दुः + यश = दुर्यश।

दुः + लक्ष्य = दुर्लक्ष्य। दुः + वचन = दुर्वचन।

दुः + वह = दुर्वह।

अपवादः पुनः + अपि – पुन् (अः) + अपि = पुनरपि।

नियम-4. यदि विसर्ग के पहले 'इ' या 'उ' हो, और आगे क, ख, प या पु हो, तो विसर्ग का 'ष' होता है। जैसे–

निः + कपट = निष्कपट। निः + पाप = निष्पाप।

आविः + कार = आविष्कार। निः + फल = निष्फल।

दुः + कर = दुष्कर। दुः + प्रज्ञ = दुष्प्रज्ञ।

नियम-5. यदि विसर्ग के बाद 'च' या 'छ' हो, तो विसर्ग का 'श', 'ट' या 'ठ' हो, तो और 'त' या 'थ' हो, तो 'स' होता है। जैसे–

निः + चय = निश्चय। निः + चल = निश्चल।

धनुः + टंकार = धनुष्टंकार। ततः + ठकार = तटष्ठकार।

नियम-6. यदि विसर्ग के बाद 'श', 'ष' या 'स' हो, तो विसर्ग का क्रमशः 'श', 'ष', होता है या ज्यों-का-त्यों रहता है। जैसे–

दुः + शासन = दुश्शासन, दुःशासन।

वहिः + षट् = वहिष्षट्, वहिःषट।

निः + सार = निस्सार, निःसार।

स्व-मूल्यांकन

सही विकल्प चुनिए–

1. स्वर संधि के कितने भेद होते हैं?
   (क) पाँच (ख) तीन (ग) सात
2. 'सद्गति का सही' संधि विच्छेद क्या है?
   (क) सद्+गति (ख) स+गति (ग) सत्+गति
3. 'सदैव' का सही संधि विच्छेद क्या है?
   (क) सद्+ऐव (ख) सदा+एव (ग) सत्+ऐव
4. दिक्+गज का सही संधि शब्द कौन-सा है।
   (क) दिनकर (ख) दिगज (ग) दिग्गज

नोट

नियम-7. यदि 'इ' या 'उ' के बाद विसर्ग हो और उसके बाद 'र', हो, तो 'इ' का 'ई', 'उ' का 'ऊ' होता है, तथा विसर्ग लुप्त हो जाता है। जैसे–

निः + रोग = नीरोग। निः + ख = नीख। निः + रस = नीरस।

दुः + राज = दूराज।

नियम-8. यदि विसर्ग के पहले 'अ' हो और उसके बाद कोई अन्य स्वर हो, तो विसर्ग लोप हो जाता है। जैसे–

यशः + इच्छा = यशइच्छा। अतः + एव = अतएव।

1. यदि + अपि = यद्यपि
2. अति + आवश्यक = अत्यावश्यक
3. प्रति + एक = प्रत्येक
4. प्रति + अक्ष = प्रत्यक्ष
5. अति + उत्तम = अत्युत्तम
6. अति + अन्त = अत्यन्त
7. वि + उत्पत्ति = व्युत्पत्ति
8. अति + अधिक = अत्यधिक
9. अति + आचार = अत्याचार
10. अति + उक्ति = अत्युक्ति
11. इति + आदि = इत्यादि
12. वि + अर्थ = व्यर्थ
13. वि + आपक = व्यापक
14. वि + अतीत = व्यतीत
15. वि + आयाम = व्यायाम
16. परि + आप्त = पर्याप्त
17. सु + आगत = स्वागत
18. मनु + अन्तर = मन्वन्तर
19. पित् + आदेश = पित्रादेश
20. मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा
21. देव + इन्द्र = देवेन्द्र
22. द्विज + इन्द्र = द्विजेन्द्र
23. राज + इन्द्र = राजेन्द्र
24. गज + इन्द्र = गजेन्द्र
25. अति + अल्प = अत्यल्प
26. नि + ऊन = न्यून
27. रमा + ईश = रामेश
28. महा + ईश = महेश
29. महा + इन्द्र = महेन्द्र
30. सुर + ईश = सुरेश
31. खग + ईश = खगेश
32. स्व + इच्छा = स्वेच्छा
33. हित + उपदेश = हितोपदेश
34. चन्द्र + उदय = चन्द्रोदय
35. सूर्य + उदय = सूर्योदय
36. लोक + उत्तर = लोकोत्तर
37. प्रेम + उपहार = प्रेमोपहार
38. खग + ईश = खगेश
39. अभि + उदय = अभ्युदय
40. अभि + अस्त = अभ्यस्त
41. अभि + आगत = अभ्यागत
42. वि + आख्या = व्याख्या
43. वि + आख्यान = व्याख्यान
44. वि + आप्त = व्याप्त
45. वि + ऊह = व्यूह
46. गति + अवरोध = गत्यावरोध
47. सति + आनन्द = सत्यानन्द
48. देवी + आगम = देव्यागम
49. नदी + ऊर्मि = नधूर्मि
50. अनु + अय = अन्वय
51. अनु + एषण = अन्वेषण
52. अनु + इत = अन्वित
53. कृत + अन्त = कृतान्त
54. ग्राम + उद्धार = ग्रामोद्धार

नोट

55. सर्व + उदय = सर्वोदय
56. सप्त + ऋषि = सप्तर्षि
57. महा + ऋषि = महार्षि
58. एक + एक = एकैक
59. सदा + एव = सदैव
60. तथा + एव = तथैव
61. तथा + अस्तु = तथास्तू
62. सत्य + आग्रह = सत्याग्रह
63. परम + अर्थ = परमार्थ
64. महा + आशय = महाशय
65. रत्न + आकर = रत्नाकर
66. रवि + इन्द्र = रवीन्द्र
67. परि + इक्षक = परीक्षक
68. महि + इन्द्र = महेन्द्र
69. मर्म + आत = मर्माहत
70. प्रभा + आकर = प्रभाकर
71. गिरि + इन्द्र = गिरीन्द्र
72. परि + इक्षा = परीक्षा
73. सर्व + उत्तम = सर्वोत्तम
74. महा + उत्सव = महोत्सव
75. गंगा + उदय = गंगोदय
76. गंगा + ऊर्मि = गंगोर्मि
77. जित + इन्द्रिय = जितेन्द्रिय
78. भारत + इन्दु = भारतेन्दु
79. पूर्ण + इन्दु = पूर्णेन्दु
80. परम + औषधि = परमौषधि
81. महा + औषधि = महौषधि
82. प्र + आरम्भ = प्रारम्भ
83. अधिक + अंश = अधिकांश
84. राम + अयन = रामायण
85. विद्या + अर्थी = विद्यार्थी
86. स + अवधान = सावधान
87. भानु + उदय = भानुदय
88. शे + अन = शयन
89. नै + अक = नायक
90. गै + अक = गायक
91. विनै + अक = विनायक
92. पो + अन = पवन
93. पो + इत्र = पवित्र
94. भो + अन = भवन
95. पै + अल = पायल
96. ने + अन = नयन
97. चे + अन = चयन
98. गै + अन = गायन
99. राजा + ईश = राजेश
100. नै + इका = नायिका
101. पौ + अक = पावक
102. सत् + गुण = सद्गुण
103. उत् + भिज = उद्भिज
104. सत् + आचार = सदाचार
105. सत् + चेष्टा = सच्चेष्टा
106. उत् + छिन्न = उच्छिन्न
107. उत् + श्वास = उच्छवास
108. सत् + गति = सद्गति
109. उत् + घाटन = उद्घाटन
110. सत्+चित्+आनन्द = सच्चिदानन्द
111. भानु + उदय = भानुदय
112. उत् + शृंखल = उच्छृंखल
113. उत् + शिष्ट = उच्छिष्ट
114. सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र
115. उत् + छेद = उच्छेद
116. शरत् + चन्द्र = शरच्चन्द्र
117. उत् + गम = उद्गम
118. सत् + गुरु = सद्गुरू
119. तत् + जीवन = तज्जीवन
120. वि + छेद = विच्छेद

नोट

121. कृत् + अन्त = कृदन्त
122. जगत् + ईश = जगदीश
123. उत् + योग = उद्योग
124. आ + छेद = आच्छेद
125. दिक् + अम्बर = दिगम्बर
126. उत् + हरण = उद्धरण
127. उत् + लेख = उल्लेख
128. उत् + नायक = उन्नायक
129. चित् + मय = चिन्मय
130. उत् + नत = उन्नत
131. उत् + नति = उन्नति
132. सत् + मार्ग = सन्मार्ग
133. सम् + कार = संस्कार
134. सम् + कृति = संस्कृति
135. यज् + न = यज्ञ
136. सम् + वत् = संवत
137. किम् + वा = किंवा
138. सत् + जन = सज्जन
139. दिक् + गज = दिग्गज
140. वाक् + ईश = वागीश
141. दिक् + अन्त = दिगन्त
142. वाक् + दान = वाग्दान
143. अच् + अन्त = अजन्त
144. उत् + हार = उद्धार
145. उत् + लास = उल्लास
146. प्राक् + मुख = प्राङ्मुख
147. षट् + आनन = षडानन
148. परि + छेद = परिच्छेद
149. सम् + तोष = संतोष
150. सम् + गठन = संगठन
151. तत् + हित = तद्धित
152. जगत् + नाथ = जगन्नाथ
153. उत् + मूलन = उन्मूलन
154. सम् + स् + कृत = संस्कृत
155. सम् + यम = संयम
156. सम् + ताप = संताप
157. सम् + कल्प = संकल्प
158. सम् + धि = संधि
159. वि + सम = विषम
160. युधि + स्थिर = युधिष्ठिर
161. दु + कर = दुष्कर
162. निः + फल = निष्फल
163. दुः + कृत = दुष्कृत
164. निः + चल = निश्चल
165. दुः + प्राप्य = दुष्प्राप्य
166. वहिः + कृत = वहिष्कृत
167. निः + छल = निश्छल
168. पुरः + कार = पुरस्कार
169. दुः + साहस = दुस्साहस
170. मनः + रथ = मनोरथ
171. मनः + योग = मनोयोग
172. सरः + ज = सरोज
173. पयः + द = पयोद
174. पयः + धर = पयोधर
175. पुरः + हित = पुरोहित
176. तपः + वन = तपोवन
177. यशः + धरा = यशोधरा
178. पुनः + जन्म = पुनर्जन्म
179. निः + पाप = निष्पाप
180. आविः + कृत = आविष्कृत
181. तिरः + कार = तिरस्कार
182. मनः + ज = मनोज
183. सरः + वर = सरोवर
184. वाचः + पति = वाचस्पति

नोट

185. पयः + द = पयोद
186. यशः + दा = यशोदा
187. अधः + गति = अधोगति
188. मनः + हर = मनोहर
189. निः + जल = निर्जल
190. दुः + दिन = दुर्दिन
191. निः + धन = निर्धन
192. निः + झर = निर्झर
193. दुः + नीति = दुर्नीति
194. वहिः + मुख = वहिर्मुख
195. निः + उक्त = निरूक्त
196. निः + ख = नीख
197. निः + रोग = नीरोग
198. निः + गुण = निर्गुण
199. सुर + इन्द्र = सुरेन्द्र
200. भव + ईश = भवेश

17.2 शब्दकोश

1. **विकार–** रूप, धर्म आदि में होने वाला स्वाभाविक परिवर्तन
2. **संधि–** दो अक्षरों के मिल जाने से होने वाला वर्ण विकार
3. **संताप–** दुःख, कलेश, ज्वर, ताप, बुखार

17.3 अभ्यास-प्रश्न

1. सन्धि किसे कहते हैं? उदाहरण देकर समझाइए।
2. सन्धि के कितने भेद हैं? प्रत्येक भेद के पाँच-पाँच उदाहरण लिखिये।
3. स्वर सन्धि, व्यंजन सन्धि एवं विसर्ग सन्धि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. स्वर सन्धि के कितने भेद होते हैं? वृद्धि सन्धि का नियम बताते हुए चार उदाहरण भी लिखिये।
5. विसर्ग सन्धि के चार नियमों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
6. महाप्राणीकरण का नियम स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित में सन्धि कीजिए–

   जब + ही, वहा + ही, किस + ही, कवि + ओं, नदी + ओ, आम + चूर, बहू + एँ, लड़का + पन, पोत + दार, पानी + घाट, घोड़ा + दौड़।
7. (क) निम्नलिखित में सन्धि कीजिए एवं नियम स्पष्ट कीजिए–

   सत् + गति, षट् + दर्शन, जगत् + नाथ, अनु + छेद, सत् + चरित्र।

   (ख) सन्धि-विच्छेद कीजिए एवं नियम स्पष्ट कीजिए–

   उन्नति, सज्जन, उच्छिष्ट, उच्छिष्ट, विषम।
8. विसर्ग सन्धि को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित में सन्धि कीजिए एवं नियम बताइए–

   यशः + दा, मनः + अनुकूल, निः + रोग, दु + कर।
9. लोप और आगम से तुम क्या समझते हो? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
10. हिन्दी में सन्धि से तुम क्या समझते हो? हिन्दी में सन्धि संस्कृत से किस प्रकार भिन्न है। चार उदाहरण देकर समझाओ।

नोट

उत्तरः स्व-मूल्यांकन

1. (क) 2. (ग) 3. (ख) 4. (ग)

17.4 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना*– डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती*– प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–18: अशुद्धि संशोधन

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

18.1 अशुद्धियों के कारण

18.2 'अशुद्धि' के प्रकार

18.3 अशुद्धियों का निराकरण

18.4 सारांश

18.5 शब्दकोश

18.6 अभ्यास-प्रश्न

18.7 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- वाक्य-रचना की अशुद्धियों से परिचित होंगे।
- वाक्य-रचना की अशुद्धियों के निराकरण से अवगत होंगे।

प्रस्तावना

भाषा का एकमात्र प्रयोजन और प्रकार्य संप्रेषण (Communication) है।

संप्रेषण की सार्थकता वक्ता-श्रोता (लेखक-पाठक या सम्बोधक-सम्बोधित) के ऐसे संलाप में निहित है जिसे वे भली-भाँति समझकर उसका तात्पर्य ग्रहण कर सकें। यह तभी सम्भव है, जब भाषा का प्रयोग व्यवस्थाबद्ध, व्याकरणिक नियमानुकूल तथा परम्परा में बहुप्रचलित एवं प्रायः सर्वमान्य रूप में हो। भाषिक संरचना की अपनी एक व्यवस्था है। उस व्यवस्था के अनुकूल भाषिक प्रयोग ही संगत, साभिप्राय अथवा शुद्ध माने जा सकते हैं। **'बालक-टूटना-का-रोना-का खिलौना'** आदि शब्दों के उच्चारण या इन्हें लिपिबद्ध कर देने मात्र से, इनके प्रयोग का प्रयोजन (तात्पर्य–अर्थ-संप्रेषण) पूर्ण नहीं हो पाएगा; क्योंकि इन भाषिक ध्वनियों अथवा उनसे संरचित शब्दों में संरचनात्मक व्यवस्था का अभाव है। **'खिलौने टूट जाने के कारण बालक रोने लगा'** प्रयोग इसीलिए स्वीकार्य (शुद्ध) है क्योंकि इसमें भाषिक संरचना-व्यवस्था का निर्वाह सही रूप में हुआ है। इन्हीं शब्दों के आधार पर की गई निम्नलिखित प्रकार की वाक्य-संरचना में भी अशुद्धियाँ हैं–

(क) बालक टूटने के कारण खिलौना रोने लगा। (शब्द-सह प्रयोग की असंगति)

(ख) बालक टूटने लगा रोने कारण के खिलौने। (वाक्य-संरचना की व्याकरणिक व्यवस्था का क्रम-भंग)

(ग) खिलौना टूटने के कारण बालक रौने लगा। (वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ)

नोट

18.1 अशुद्धियों के कारण

भाषा के अशुद्धिपरक असामान्य प्रयोग कई कारणों से होते हैं। यथा–

(1) भाषिक संरचना के नियमों की अवहेलना,

(2) व्याकरणिक व्यवस्था का भंग,

(3) अर्थबोध में असंगति,

(4) परम्परा में मान्य प्रयोगों से भिन्नता,

(5) उच्चारण अथवा लेखन में ध्वनियों के सही रूप की अप्रस्तुति।

क्या आप जानते हैं 'भाषा की व्याकरणिक तथा संरचनात्मक व्यवस्था से हटकर असंगत या अनुचित अर्थ प्रकट करने वाले असामान्य प्रयोग 'अशुद्ध' कहलाते हैं।'

18.2 'अशुद्धि' के प्रकार

असामान्य भाषिक प्रयोग की अशुद्धियाँ मूलत: दो प्रकार की हो सकती हैं–(1) अव्यवस्थित प्रयोग पर आधारित अशुद्धियाँ, (2) व्यवस्थापरक अशुद्धियाँ।

(1) **अव्यवस्थित प्रयोग पर आधारित अशुद्धियाँ** वे हैं जिनमें भाषिक व्यवस्था के क्रम एवं नियम आदि की अवहेलना दिखायी देती है। यथा–

'हम तब तक उधर नहीं जाएगा जब तक मेरे को मेरी रुपया वापस नहीं मिल जाती'।

इस वाक्य में वचन और लिंग-सम्बन्धी व्याकरणिक व्यवस्था की अवहेलना हुई है। कर्त्ता (हम) बहुवचन है किन्तु क्रिया (जाएगा) एकवचन; इसी प्रकार रुपया (विशेष्य) पुल्लिग है किन्तु इसका विशेषण 'मेरी' और इसकी क्रिया 'मिल जाती' स्त्रीलिंग है। 'मेरे को' भी असंगत प्रयोग है। मानक हिन्दी की व्याकरणिक व्यवस्था के अनुसार 'मैं' सर्वनाम का कर्म-कारक एकवचन में 'मुझे' रूप मान्य है।

(2) **व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियाँ** वे हैं, जिनमें व्याकरणिक व्यवस्था का ठीक-ठीक निर्वाह होने पर भी अन्य किसी कारण से अर्थबोध में अनौचित्य, असंगति या बाधा प्रतीत होती है। यथा–

(क) **'दूध का एक गर्म प्याला ले आओ।'**

(ख) 'इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी कठोर है कि उसे पचाना बहुत सरल है।'

व्याकरणिक व्यवस्थाबद्धता की दृष्टि से इन वाक्यों में कोई असंगति दिखाई नहीं देती। कर्त्ता-कर्म-क्रिया का क्रम सही है। लिंग-वचन-कारक का प्रयोग तथा वाक्य-विन्यास भी नियमानुकूल है; फिर भी अर्थ-बोध (तात्पर्य, सम्प्रेषण, प्रयोजन) स्पष्ट नहीं होता। प्रथम वाक्य में गर्म 'विशेषण' प्याले की अपेक्षा 'दूध के साथ प्रयुक्त होना चाहिए (गर्म दूध का एक प्याला लाओ)। दूसरे वाक्य में प्रयुक्तिपरक अशुद्धि है। 'कठोर' कोई धातु या पदार्थ (किसी का हृदय भी) हो सकता है, 'कथावस्तु' जटिल, अस्वाभाविक, अरोचक आदि हो सकती है। उसे (कथावस्तु को) 'पचाना' प्रयोग भी असंगत है। 'समझना' उचित होता। फिर, 'कठोर' और 'सरल' विरोधी प्रयोग हैं जिन्हें एक ही वस्तु (कथा) से जोड़ना असंगत है। वाक्य यों होना चाहिए–'इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी अस्वाभाविक है कि उसे समझ पाना बहुत कठिन है।' अथवा 'इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी स्वाभाविक (रोचक) है कि उसे समझना बहुत सरल है।'

स्पष्ट है कि यहाँ वाक्य-संरचना व्यवस्थित होते हुए भी अर्थ और प्रयोग के स्तर पर भाषा के असामान्य प्रयोग 'अशुद्धियों' के अन्तर्गत आ जाते हैं।

नोट

व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियों के प्रकार

सरंचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ–भाषा जहाँ एक व्यवस्था है, वहीं उसका स्वरूप संघटनात्मक भी है। उसकी यह संघटना उसकी विभिन्न इकाइयों के संरचनात्मक गुच्छ के रूप में साकार होती है। भाषा ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है; अत: संरचना के स्तर पर उसकी लघुतम इकाई ध्वनि (लिपि में वर्ण) है। ये ध्वनियाँ जब शब्द-संरचना में प्रवृत्त होती हैं, तभी भाषा अर्थवाहिनी बनती है। अभिप्राय यह है कि अर्थ के स्तर पर भाषा की मूल इकाई शब्द हो सकता है, मात्र ध्वनि नहीं। शब्द अपने-आप में किसी वस्तुमात्र का संकेत या अर्थ-बोध करा सकता है, उसमें हमारे मन्तव्य (प्रयोजन, कथ्य) को पूर्णत: सम्प्रेषित करने की क्षमता नहीं। यह क्षमता विभिन्न सार्थक शब्दों के व्यवस्थित समूह के रूप में संरचित वाक्य में ही सम्भव है। कई बार तो एक ही वाक्य द्वारा हमारे तात्पर्य का सम्प्रेषण हो जाता है, कई बार एक से अधिक वाक्य हमारे कथ्य को श्रोता, पाठक आदि तक सम्प्रेषित करते हैं। ध्वनि से लेकर वाक्य या वाक्य-समूह (कथन या प्रोक्ति) तक की यह भाषा-संघटना उसकी संरचना है। इनमें से किसी भी स्तर पर दिखायी देने वाली अशुद्धि 'संरचनात्मक अशुद्धि' कहलाएगी। अर्थात् यदि ध्वनियों (वाक्-प्रतीकों या वर्णों), ध्वनि-गुच्छों (शब्दों) अथवा शब्द-समूहों अर्थात् वाक्यों की संरचनात्मक व्यवस्था में यदि कोई ऐसी शिथिलता, त्रुटि या असंगति है, जो संप्रेषण में बाधक है तो वह 'संरचनात्मक अशुद्धि' होगी। इस प्रकार, सरंचना की दृष्टि से तीन प्रकार की अशुद्धियाँ हो सकती हैं–

(1) ध्वनि-संरचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ

(2) शब्दगत (शब्द-संरचना या रूप-संरचना) संबंधी अशुद्धियाँ

(3) वाक्य-संरचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अर्थपरक अशुद्धियाँ

कई बार यह संरचना सुव्यस्थित होने पर भी अर्थबोध में व्यक्तिक्रम या व्यवधान प्रतीत होता है। 'कमल' छह ध्वनियों की सरंचना से निर्मित शब्द है। आकाश, उद्यान, सरोवर भी इसी प्रकार के सार्थक शब्द हैं। इनसे कई प्रकार के वाक्यों की संरचना सम्भव है–

(1) उसने आकाश में कमल देखे।

(2) आकाश में एक उद्यान था।

(3) सरोवर और उद्यान मिलकर आकाश बनता है।

इन तीनों वाक्यों का संरचनात्मक ढाँचा तो सही है, क्योंकि भाषिक व्यवस्था में कोई गड़बड़ नहीं; किन्तु अर्थ-स्तर पर ये प्रयोग अशुद्ध हैं। इसका तात्पर्य यह है कि व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियों में दूसरा प्रकार 'अर्थपरक अशुद्धियों' का है।

वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

संरचना अथवा अर्थ-स्तर पर होने वाली अशुद्धियों के दो अन्य भिन्न-भिन्न सन्दर्भ यहाँ उल्लेखनीय हैं–एक, उच्चरित अर्थात् मौखिक और दूसरा, लिखित अर्थात् लिपिबद्ध। ऊपर दिया गया कथन सुधार कर यदि यों कर दिया जाये–**'उसने सरोवर में कमल देखे। मानो कमलों का पूरा उद्यान था। साथ ही सरोवर में पड़ता हुआ आकाश का प्रतिबिम्ब उस दृश्य को और भी मनोहर बना रहा था।'** तो अर्थपरक अशुद्धि दूर हो जाएगी। किन्तु इसकी अशुद्धता केवल मौखिक स्तर तक ही सीमित होगी। जब इसी कथन को लिपिबद्ध करते समय कोई इस प्रकार लिख दे–

'उसने स्त्रोवर में कमल देखे, मानौ कमलों का पुरा उदिआन था। साथ ही स्त्रोवर में पड़ता हूवा अकास का पतिंबिम्ब उस द्रिष्य को और भि मनौहर बना रिहा था।'

तो मौखिक रूप में अर्थ-स्तर पर यह कथन शुद्ध प्रतीत होते हुए भी, लिखित रूप लेते ही 'अशुद्ध' माना जाएगा। इस प्रकार की–ध्वनि-चिह्नों (वर्णों) को उच्चारण-अनुसार सही न लिखने की–अशुद्धि **'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धि' कहलाएगी।**

नोट

इस विवेचन से स्पष्ट है कि व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियाँ मुख्यत: तीन प्रकार की हैं–

(क) संरचनात्मक अशुद्धियाँ;

(ख) अर्थपरक अशुद्धियाँ;

(ग) वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

संरचनात्मक अशुद्धियाँ–पीछे स्पष्ट किया जा चका है कि **'भाषिक संरचना की व्यवस्था को भंग करने वाले असामान्य प्रयोग संरचनात्मक अशुद्धियों के अन्तर्गत आते है।'** संरचना के चार प्रमुख स्तर हैं–ध्वनि (वर्ण), शब्द, पद और वाक्य। इनमें से किसी भी स्तर पर यदि संरचना की व्यवस्था की अवहेलना की जाती है तो वह संरचनात्मक अशुद्धि होगी।

ध्वनिगत अशुद्धियाँ–ध्वनि के स्तर पर होने वाली अधिकांश अशुद्धियाँ भाषा के लिखित (लिपिबद्ध) रूप में दिखायी देती हैं (जिनका अलग से विशद् विवेचन आगे 'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है) क्योंकि मुख से सही उच्चारण करते हुए भी लिखते समय वर्णों की आकृति के अन्तर (क्ष को ज्ञ, ज्ञ को क्ष), ह्रस्व-दीर्घ स्वरों (मात्राओं) के विपर्यय (कीसि (किसी), मैरा (मेरा), सून्दर (सुन्दर), आदि), तथा द्वित्व (द्द-द्व-द्व) या संयुक्त अक्षरों के लिप्यंकन में भूलें हो जाती हैं। फिर भी कई बार मौखिक प्रयोग में भी दोषपूर्ण ध्वनि-संरचना अथवा उच्चारण सुनने में आता है। जैसे–स्कूल, स्टेशन, स्त्री को इस्कूल, इस्टेशन, इस्त्री बोलना, 'श' का 'स'; 'व-ब, ब-व' अथवा हलन्त अक्षर का सस्वर उच्चारण ('बल्कि' को 'बलिक', 'तादात्मय' को बोलना आदि)।

शब्दगत अशुद्धियाँ–शब्द और पद के स्तर पर संरचनात्मक अशुद्धियाँ प्राय: अधिक देखी जाती हैं। हिन्दी में अधिकांशत: शब्द और पद-रचना विभिन्न उपसर्गों के संयोग से होती हैं। कई बार मूल शब्द (प्रकृति या धातु) के अन्य शब्दों के साथ सहप्रयोग के समय, उसमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। जैसे–

उपसर्ग से–अ–असमर्थ,

प्रत्यय से–समाज + इक–सामाजिक,

परसर्ग–में–मुझे, मैंने, मुझसे।

मूल शब्द (प्रकृति) में परिवर्तन–लड़का, लड़के (ने), लड़कों (ने, को, से)।

धातु-रूप में परिवर्तन–खेल-खेलना, खेलता-खेलते-खेलती, खेला, खेली-खेले-खेलूँ, खेलेगा आदि।

जब कभी भाषा-प्रयोग में इन संरचनात्मक रूपों और इनके लिए निर्धारित नियमों की अवहेलना होगी, उसका परिणाम होगा–'संरचनात्मक अशुद्धि।' उदाहरणत:–

(1) माँ जी चाकू से फल **काटता हैं।** (कर्त्ता के अनुसार क्रिया का लिंग-वचन न होने से अशुद्धि)।

(2) माँजी चाकू से फल **काटी।** (सकर्मक क्रिया के भूतकालिक होने के कारण कर्त्ता के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग नहीं हुआ। 'काटी' भी अशुद्ध है, क्योंकि सकर्मक भूतकालिक क्रिया का लिंग कर्म के अनुसार होता है।)

(3) यह धावक तेज **दौड़ते है।** ('दौड़ते' अशुद्ध)

(4) भारत में **कितने नदियें हैं?** ('कितने', 'नदियें' अशुद्ध)

(5) यह क्लर्क तो बड़ा **झगड़ावान है।** (झगड़ा में 'वान' प्रत्यय अशुद्ध)

(6) तुम बहुत ही **चुस्तालु, चुस्तीमान हो।** (दोनों प्रत्ययों का असंगत प्रयोग)

(7) वह लड़का ने **तुम्हारे** को कितना सहायता किया? (भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्त्ता का सर्वनाम 'वह' अशुद्ध है, 'उस' शुद्ध। 'ने' परसर्ग के कारण 'लड़के' होना चाहिए। 'तुम' का कर्मकारक एकवचन में 'तुम्हें' रूप बनता है। विशेषण 'कितना' का लिंग विशेष्य 'सहायता' के अनुसार न होने से अशुद्धी है। इसी प्रकार भूतकालिक सकर्मक क्रिया कर्म के अनुसार न होने के कारण 'क्रिया' अशुद्ध है, 'की' शुद्ध।)

नोट

स्पष्ट है कि इन उदारहरणों में 'शब्द' या 'पद' के स्तर की संरचनात्मक अशुद्धियाँ हैं।

शब्दगत अशुद्धियों के विभिन्न उदाहरण–(शुद्ध रूप कोष्ठकों में हैं।)

1. जहाँ तक दृष्टि जाती थी, सब बर्फ ही बर्फ दिखाई देती थी।
   (सब के स्थान पर वहाँ तक होना चाहिए। अव्यय-सम्बन्धी अशुद्धि है।)
2. आपको वह इस कारण नहीं मिला ताकि आप समय पर नहीं पहुँचे।
   (ताकि की जगह क्योंकि शुद्ध। योजक अव्यय का गलत प्रयोग)
3. जो अपनी योग्यता के द्वारा कार्य करते हैं, वे अवश्य सफल होते हैं।
   (**'के द्वारा'** अशुद्ध प्रयोग है। **'योग्यता के अनुसार'** शुद्ध है। परसर्ग-सम्बन्धी अशुद्धि है।)
4. हम तुम्हारी बात मान लें **जबकि** तुम हठ छोड़ दो।
   (शुद्ध–**यदि** तुम हठ छोड़ दो तो हम तुम्हारी बात मान लें।)
5. अरबी घोड़े और घोड़ियों का मूल्य अधिक है।
   (अरबी घोड़ों और घोड़ियों का मूल्य अधिक है। बहुवचन के विकारी रूप की अशुद्धि)
6. चार-दो मिनट रुको, फिर चलेंगे।
   (दो-चार मिनट रुको...। शब्द-सहप्रयोग की अशुद्धि)
7. अतिथि का सत्कार-आदर तो करना ही चाहिए।
   (आदर-सत्कार शुद्ध)
8. साहित्य से ही किसी समाज के **सहन-रहन, पान-खान, विचार-आचार** का पता चलता है।
   (रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार शुद्ध)
9. ज़रा-सी बात पर **सफेद-पीला** होना ठीक नहीं।
   (लाल-पीला शुद्ध)
10. बन्दर ने मेरी पुस्तक चीर दी।
    (पुस्तक फाड़ दी शुद्ध है।)
11. काश्मीर की सौंदर्यता देखने योग्य है।
    ('सौंदर्यता' के स्थान पर 'सुन्दरता' होना चाहिए। 'सौन्दर्य' स्वयं भाववाचक संज्ञा है। 'सुन्दर' विशेषण में 'ता' प्रत्यय में सुन्दरता' शुद्ध है।)
12. आपने आपका परिचय नहीं दिया।
    ('अपना' परिचय शुद्ध)
13. तुम तुम्हारा काम करो, मैं मेरा काम करता हूँ।
    (तुम अपना काम करो, मैं अपना काम करता हूँ।)
14. बच्चे खिलौने पाकर **खुशी** होते हैं।
    (**'खुश'** विशेषण का प्रयोग होना चाहिए 'खुशी' भावावाची संज्ञा का प्रयोग यहाँ अशुद्ध है। **'खुशी अनुभव करते हैं'** प्रयोग ठीक है।)
15. इस काम में अनेक **क्लर्कें** लगे हुए हैं।
    (अनेक **क्लर्क** लगे हुए हैं।)
16. उसकी लिखावट में **अनेकों** त्रुटियाँ हैं।
    (**'अनेक'** शुद्ध है। यह स्वयं बहुवचन है, अत: 'ों' लगाकर बहुवचन बनाना अशुद्ध है।)

नोट

17. बच्चे की बात सुनकर मैं **विस्मय** हुआ
('विस्मित हुआ' शुद्ध है।)
18. इस बार इतनी वर्षा हुई जैसी पहले कभी नहीं हुई थी।
(इस बार **'ऐसी'** वर्षा...शुद्ध है। या–**'इतनी वर्षा** के बाद **'जितनी'** पहले कभी...शुद्ध होगा।)
19. राम के **'साथो-साथ'** लक्ष्मण भी बन को गया।
(राम के **'साथ-साथ'**...शुद्ध है।)
20. **तुमके** पास मेरी पुस्तक है।
('तुम्हारे पास...शुद्ध)
21. कोई भी आदमी को मत बताना।
(किसी भी आदमी को मत बताना।)
22. यहाँ नहीं बैठो।
(यहाँ मत बैठो।)
23. गुण-अगुण तो सब में होते हैं।
(गुण-अवगुण...शुद्ध है। 'उपसर्ग'-प्रयोग सम्बन्धी अशुद्धि है।)
24. आप किस दल का **परिचार** कर रहे हैं?
(**'प्रचार'** शुद्ध है।)
25. वह बहुत भागा, पर **अनसफल** रहा।
(**'अनसफल'** के स्थान पर **'असफल'** होना चाहिए।)
26. सपूत और दुपूत कर्मों से पहचाने जाते हैं।
(**'कपूत'** शुद्ध है, 'दुपुत' अशुद्ध)
27. मेरा सारा प्रयत्न **दुष्फल** रहा।
(**'निष्फल'** शुद्ध है।)
28. वह हमारे विरोध का **कुस्साहस** नहीं कर सकता।
(**'कुस्साहस'** अशुद्ध प्रयोग है, **'दुस्साहस'** शुद्ध है।)
29. वह अच्छा घुमक्कड़ भी है और अच्छा **खिलक्कड़** तथा **पढ़क्कर भी।**
(वह अच्छा घुमक्कड़ भी है और अच्छा **खिलाड़ी** तथा **पढ़ाकू भी।**)
30. आज आपने बड़ी **साहसता** दिखाई।
(**साहस** दिखाया।)
31. वह शर्मीला तो है, **झगड़ीला** नहीं।
(झगड़ालू नहीं।)
32. चमकालू काग़ज पर कलम नहीं चलती।
(चमकीले का काग़ज पर...)
33. वह उत्साही, साहसी और **कर्मठी** है।
(**कर्मठ** है)
34. **जातिक** और **राष्ट्रिक** हित वैयक्तिक हित से ऊँचा है।
(जातीय और राष्ट्रीय हित...शुद्ध)

नोट

35. **छोटे मंत्री बड़े मंत्री** के निर्देश पर काम करते हैं।
(**उपमंत्री मुख्यमंत्री** या (**प्रधानमंत्री**) के निर्देश पर काम करते हैं।)
36. **अर्थ के बिना** बातें का कोई लाभ नहीं।
(**निरर्थक** बातें करने का कोई लाभ नहीं।)
37. यद्यपि अन्न का उत्पादन बढ़ रहा है **किन्तु** किसान दु:खी हैं।
(यद्यपि अन्य का उत्पादन बढ़ रहा है **तथापि** किसान दु:खी हैं।)
38. आप अनाज के बदले घी दे दीजिए **तथा** रुपये अदा कर दीजिए।
(आप अनाज के बदले घी दे दीजिए **अथवा** रुपये अदा कर दीजिए।)
39. सैनिकों ने **गोलियाँ छोड़ीं** और **राकेटें** चलाई।
(सैनिकों ने गोलियाँ चलाईं और राकेट छोड़े।)

वाक्यगत अशुद्धियाँ–वाक्य स्तर पर संरचनात्मक अशुद्धियाँ भाषा के असामान्य प्रयोगों में पर्याप्त मिलती हैं। हिन्दी की वाक्य-संरचना की अपनी एक निजी व्यवस्था है। वाक्य में कर्त्ता का स्थान सबसे पहले और पूर्ण क्रिया (तथा सहायक क्रिया भी, जहाँ हो) का स्थान सबसे अन्त में होता है। अकर्मक क्रियाएँ कर्त्ता के लिंग और वचन के अनुसार बदलती हैं और सकर्मक क्रियाएँ (भूतकाल में) कर्म के अनुसार। इसी प्रकार काल, वाच्य आदि के अनुसार भी क्रियाओं में परिवर्तन के नियम निश्चित हैं। कर्तृवाच्य में कर्त्ता और क्रिया का जो रूप होगा, कर्म या भाववाच्य में वैसा नहीं होगा। कर्त्ता और कर्म का वाक्य मे। स्थान भी परिवर्तित हो जायेगा। जैसे–

कर्तृवाच्य–आपने ही तो यह पत्र भेजा था।

कर्मवाच्य–यह पत्र आपके द्वारा ही तो भेजा/भिजवाया गया था।

जिन वाक्यों में इस प्रकार के नियमों का उचित रूप से पालन या निर्वाह नहीं होगा वहाँ वाक्य-स्तर की संरचनात्मक अशुद्धि मानी जाएगी।

उदाहरण (शुद्ध रूप कोष्ठकों में है)–

(1) प्रधानमंत्री ने विदेश में अपनी अर्थ-नीति स्पष्ट **कर दी गयी थी।**
(...कर दी थी–या–प्रधानमंत्री द्वारा...कर दी गयी थी।)
(2) **मैं जो** कल तुम्हें पत्र दिया सों कहाँ है?
(मैंने कल तुम्हें जो पत्र दिया था वह कहाँ है?)
(3) **मैंने एक** किताबों वाली अलमारी खरीदनी होगी।
(मुझे किताबों वाली एक अलमारी खरीदनी होगी।
(4) तोबा-हाय मत करो, **सात-पाँच** मिनट शान्ति **द्वारा बैठ**, पहले मेरी बात सुन।
(बहुत हाय-तोबा मत मचा/मचाओ, पाँच-सात मिनट शान्ति से बैठ/बैठो, पहले मेरी बात सुन/सुनो।)
(5) वह कितनी भी **कूद-उछल** मचाए, मैंने उसका काम **करना** है नहीं।
(वह कितना भी उछल-कूद मचाए, मुझे उसका काम नहीं करना है।

वाक्यगत अर्थात् वाक्य-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियों के विभिन्न उदाहरण

(शुद्ध रूप कोष्ठकों में दिये गये हैं।)

1. कार्यकुशलता पर सफलता योजनाओं की निर्भर है।
(योजनाओं की सफलता कार्यकुशलता पर निर्भर है।)
2. नेहरू पंडित शान्ति के दूत थे।
(पंडित नेहरू शन्ति के दूत थे।)

नोट

3. कबीर संत और गांधी महात्मा के समान विनोबा भावे आचार्य अहिंसावादी था।
(संत कबीर और महात्मा गांधी के समान आचार्य विनोबा भावे अहिंसावादी थे।)
4. सुरेन्द्र, तुम और मैं साथ चलूँगा।
(...साथ चलेंगे।
5. राष्ट्रपति महोदय पधार चुका हैं।
(राष्ट्रपति महोदय पधार चुके हैं।)
6. लड़कों ने बताया कि हम दुर्घटना के समय वहाँ नहीं थे।
(लड़कों ने बताया कि वे दुर्घटना के समय वहाँ नहीं थे।)
7. आप चुपके-चुपके बोलिये।
(आप धीरे-धीरे बोलिये।)
8. रोगी को अधिक बोलना उचित नहीं।
(रोगी के लिए अधिक बोलना उचित नहीं।)
9. सरकार द्वारा पीड़ित लोगों को एक लाख रुपये की सहायता दी गई है।
(पीड़ित लोगों को सरकार द्वारा...।)
10. भारत ने बहुत-सा सोना विदेशियों के लिए बेच दिया है।
(भारत ने बहुत-सा सोना विदेशियों को बेच दिया है।)
11. मुहम्मद हुसैन सैयद कल आएँगे।
(सैयद मुहम्मद हुसैन कल आएँगे।)
13. जैलसिंह ज्ञानी भारत के राष्ट्रपति रह चुके हैं।
(ज्ञानी जैलसिंह...)
14. शर्मा श्री शंकरदयाल ने उपराष्ट्रपति का पद सँभाला।
(श्री शंकरदयाल शर्मा ने... ... ...।)
15. छोटे-से बालक का वाह! साहस तो देखो!
(वाह! छोटे-से बालक का साहस तो देखो!
16. मोहन, श्याम और वीरेन्द्र आज यहाँ आएगा।
(...आएँगे।)
17. छात्र सदा परिश्रमी सफल होते हैं।
(परिश्रमी छात्र सदा सफल होते हैं।)
18. आपकी माता जी यहाँ कब आ रहे हैं?
(...कब आ रही है?
19. प्रतिदिन में व्यायाम करना चाहिए।
(प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए।)
20. दरअसल में बात यह है।
(दरअसल बात यह है।)
21. वह मुझे अचानक से ही मिल गया।
(वह मुझे अचानक ही मिल गया।)

नोट

22. लड़का ने पत्र पढ़ा।
(लड़के ने पत्र पढ़ा।)
23. तेरे को अब कहाँ जाना है?
(तुझे अब कहाँ जाना है?)
24. अब आप यहीं आ के रहो।
(अब आप यहीं आकर रहो।)
25. तुम बीच में काहे को बोलते हो? (तुम बीच में क्यों बोलते हो?)
26. सड़क पर एक बूढ़ा और एक जवान लड़ रहा था।
(सड़क पर एक बूढ़ा और एक जवान लड़ रहे थे।)
27. सभी पुस्तकें और कापियाँ मेज़ पर रखे हैं। (रखी हैं।)
28. क्या आपको सभी मित्रों का नाम याद है?
(क्या आपको सभी मित्रों के नाम याद हैं?)
29. हम आपकी दुकान को कल आएगा।
(हम आपकी दुकान पर कल आएँगे।)
30. जो भी वचन दो, वह पूरा अवश्य करो।
(जो भी वचन दो, उसे पूरा अवश्य करो।)
31. आपने तो रात को खूब सोया। (आप तो रात को खूब सोये।)
32. आज उसने दफ्तर नहीं जाना। (आज उसे दफ्तर नहीं जाना।)
33. सभी उत्तीर्ण और सफल छात्रों को बधाई!
(सभी उत्तीर्ण (या सफल) छात्रों को बधाई!)
34. धोबी से कहो, ये कपड़े जल्दी प्रेस कर दो।
(धोबी से कहो, ये कपड़े जल्दी प्रेस कर दे।
35. हमारे कहे बिना ही छात्र पढ़ते जाते हैं। (पढ़ रहे हैं...।)
36. अब तो इसका सवाल ही नहीं उठने सकता। (...उठ सकता।)
37. किसानों ने इस बार सरसों ही बोया है। (...बोई है।)
38. मेरा मित्र कल को आएगा। (मेरा मित्र कल आएगा।)
39. प्रात:काल के समय व्यायाम करना चाहिए।
(प्रात:काल (या प्रात: के समय)...।)
40. कृपया किसी दिन मेरे घर पधारने की कृपा करें। (...पधारे।)
41. सबों ने मेरा समर्थन किया (सबने (सभी ने)...)
42. अभी-अभी यहाँ एक लड़का और एक लड़की खड़ी थी।
(...खड़े थे।)
43. एक चाय का गर्म प्याला भोजना।
(गर्म चाय का एक प्याला भेजना।)
44. कम रोशनी में पढ़ना मत चाहिए। (...पढ़ना नहीं चाहिए।)
45. उसे लहूलुहान देखकर मुझे घबराना पड़ा। (...मैं घबरा गया।)

नोट

46. वह तो लड़ने पर कमर कसा बैठा है। (...कमर कसे बैठा है।)
47. जो पहले आवेंगे, वही प्रवेश पावेंगे।
(जो पहले आएँगे, वही प्रवेश पाएँगे।)
48. नौकर को कहकर टैक्सी मँगा लो।
(नौकर से कहकर टैक्सी मँगवा लो।)
49. तुम्हें तो एक-एक पंक्ति समझाना पड़ती है।
(...समझानी पड़ती है।)
50. एक पुस्तकों का सूचीपत्र भिजवा दें।
(पुस्तकों का एक सूचीपत्र भिजवा दें।)
51. परीक्षा में केवल मात्र दो ही प्रश्नों के उत्तर लिखने होंगे।
(...केवल दो/या–मात्र दो/ या–दो ही प्रश्नों के उत्तर लिखने होंगे।)
52. निम्नलिखित व्याकरण-सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर लिखिये।
(व्याकरण-सम्बन्धी निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिये।

अर्थपरक अशुद्धियाँ–भाषा केवल ध्वनियों का शोर नहीं। प्रत्येक ध्वनि अन्य ध्वनियों के साथ संयोजित होकर कुछ ऐसे वाक्-गुच्छों की संरचना करती है जो किसी-न-किसी अर्थ का द्योतन करते हैं। अर्थहीन ध्वनि-समूह 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकते। भाषा का मूल प्रयोजन या प्रकार्य (Function) ही अर्थ-संचार है। कई बार विभिन्न ध्वनि-गुच्छ अर्थात् शब्द या पद अपने-आप में तो अर्थवान् होते हैं परन्तु उनके संयोग से संरचित वाक्य कोई स्पष्ट अभिप्राय सम्प्रेषित नहीं कर पाता। उदाहरणत:

'बन्दूक ने स्त्री चलाई'।

इस वाक्य के सभी पद अपने-आप में सार्थक हैं। कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम भी हिन्दी की वाक्य-संरचना-विधि के अनुकूल है। क्रिया सकर्मक और भूतकालिक है, अत: उसका लिंग-वचन कर्म के अनुसार है। तात्पर्य यह कि यहाँ संरचनात्मक अशुद्धि नहीं है–न शब्द या पद के स्तर पर, न वाक्य के स्तर पर, फिर भी यह स्पष्ट नहीं होता कि अभीष्ट अर्थ क्या है। इसे हम 'अर्थपरक अशुद्धि' कहेंगे।

अर्थपरक अशुद्धियों के कई रूप सम्भव हैं–बोधात्मक अशुद्धियाँ, तथ्यपरक अशुद्धियाँ, तर्कपरक अशुद्धियाँ, तात्पर्य अशुद्धियाँ, विशिष्ट प्रयोग अर्थात् प्रयुक्ति-संबंधि अशुद्धियाँ आदि।

सामान्यत: कथन के अर्थ-बोध में बाधा के कारण **बोधात्मक** अशुद्धि होगी। यथा–

'पहले उस रोगी ने आह मारी, फिर चीख भरी और उसके आँसू छूट पड़े।'

(शुद्ध–पहले उस रोगी ने आह भरी, फिर चीख मारी और उसके आँसू निकल आए।)

वाक्य-संरचना और उसके द्वारा संप्रेषित अर्थ-बोध में कोई व्यतिक्रम न होने पर भी कथन में तथ्य-सम्बन्धी भूल **'तथ्यात्मक अशुद्धि'** का कारण बनती है। जैसे–

'भारत के उत्तर में कन्याकुमारी और दक्षिण में काश्मीर, पूर्व में हिमालय और पश्चिम में आसाम–सभी प्रकृति के रमणीय स्थल हैं।'

इस कथन में तथ्यों की असंगति अर्थ को खंडित कर देती है। इसी प्रकार–

'तुलसी-रचित अभिज्ञान-शाकुंतल की दो प्रतियाँ लेते आना।'

अथवा 'रामधारी सिंह दिनकर की कामायनी पढ़कर मन झूम उठा'।

ये दोनों तथ्यात्मक अशुद्धियों के उदारहण हैं। (पहले वाक्य में 'तुलसी' के स्थान पर 'कालिदास', दूसरे में 'दिनकर' के स्थान पर 'प्रसाद' या 'कामायनी' के स्थान पर 'उर्वशी' होना चाहिए।)

नोट

तर्कपरक अशुद्धियाँ वहाँ होती हैं, जहाँ किसी कथन में तर्क-संगति न होने के कारण अर्थ-संप्रेषण बाधित हो। जैसे–

'इतनी गर्मी पड़ी कि दीवार पिघल गई।' ('दीवार का पिघलना' तर्क-संगत नहीं)

अथवा 'भीषण सर्दी के कारण मैं पसीना-पसीना हो गया।'

टास्क वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को उदाहरण के साथ समझाइए।

तात्पर्यपरक अशुद्धियाँ अच्छे पढ़े-लिखे भाषा-प्रयोक्ताओं से भी हो जाती हैं। ऐसी अशुद्धियाँ प्राय: भाषा-प्रयोगों में असावधानी के कारण होती हैं। भाषिक संरचना, व्याकरणिक नियमों एवं तथ्यों से अवगत होते हुए भी अनजाने में वाक्य-विन्यास कुछ ऐसा हो जाता है कि अभीष्ट तात्पर्य भली भाँति संप्रेषित नहीं हो पाता। उदाहरणत:

'तुम अच्छी तरह जानते थे कि वह शायद चला गया होगा, फिर भी मुझे उसके घर भेजने में शायद तुम नहीं चूके।'

यहाँ 'अच्छी तरह' से निश्चयात्मकता का बोध होता है किन्तु 'शायद' से 'अनिश्चयात्मकता' का। यही स्थिति 'चूके' और 'शायद' के प्रयोग में है। अत: यह 'तात्पर्यपरक' अशुद्धि है। इसी प्रकार–

'हम हैं निम्नलिखित कमलानगर के निवासी'

इस कथन में 'निवासी' का विशेषण निम्नलिखित 'कमलानगर' से पहले प्रयुक्त होने के कारण तात्पर्यपकर अशुद्धि मानी जाएगी।

विशिष्ट प्रयोग या प्रयुक्ति-सम्बन्धी अशुद्धियाँ–प्राय: तकनीकी या पारिभाषिक स्तर के कथनों में उन प्रयोक्ताओं द्वारा होने की सम्भावना रहती है जो उस क्षेत्र-विशेष या विषय-विशेष की शब्दावली से भली भाँति परिचित नहीं होते। उदाहरणत: 'स्पेस' शब्द विज्ञान में 'अन्तरिक्ष' तथा पत्रकारिता में 'अन्तराल' के अर्थ में प्रचलित है। अब यदि इन प्रयुक्तियों से अनभिज्ञ व्यक्ति मकान बनाने के लिए 'खाली प्लाट' खरीदकर 'स्पेस' शब्द का प्रयोग 'जगह' के अर्थ में करते हुए यह कहे कि 'आज मैंने बहुत महँगी स्पेस खरीदी है।' तो यह प्रयुक्तिपरक अशुद्धि होगी।

वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ–'वर्तनी'-सम्बन्धी अशुद्धियाँ, मूलत: संरचनात्मक (रूपात्मक) अशुद्धि का ही अंग हैं। किसी शब्द में प्रयुक्त ध्वनियों का गलत उच्चारण (शर्बत-सरबत, भाषण-भासन) अथवा किसी शब्द का उसके उच्चारित रूप से भिन्न रूप में लेखन 'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धि' के अन्तर्गत माना जाएगा। जैसे–सकूल (स्कूल), सवासथ्य (स्वास्थ्य), महिना (महीना), किरपा (कृपा), इत्यादि।

'वर्तनी' का अभिप्राय है–अक्षर-विन्यास। भाषा विभिन्न कथनों (प्रोक्तियों) का विशाल संग्रहालय है, वे कथन (प्रोक्तियाँ) असंख्य वाक्यों के संयोग से रूपायित हैं, वाक्य शब्दों से निर्मित हैं और शब्दों की संरचना अक्षर-विन्यास अर्थात् विभिन्न ध्वनियों वर्णों के समुचित संयोग पर निर्भर है। विभिन्न ध्वनियों के उपयुक्त संयोजन अथवा आवश्यकतानुरूप अर्थ-वाही अक्षर-विन्यास का ही अन्य पर्याय हैं–'वर्तनी'। इस प्रकार वर्तनी भाषिक संरचना की रीढ़ है जिसका स्वस्थ एवं सुदृढ़ (यथानुरूप व्यवस्थित और शुद्ध) होना भाषा की सम्यक् समृद्धि, बहु आयामी संचरणशीलता एंव मानकता-प्रक्रिया के लिए आवश्यक है। अत: भाषा के प्रत्येक प्रयोक्ता के लिए वर्तनी-सम्बन्धी, विभिन्न प्रकार की सम्भावित अशुद्धियों के प्रति (विशेषत: भाषा के लिखित प्रयोग में) सावधानी अपेक्षित है।

हिन्दी का ध्वनि-समूह प्रमुखतया 'स्वर' एवं 'व्यंजन' वर्गों में विभक्त है। स्वर-ध्वनियों को ('अ' को छोड़कर) व्यंजन-ध्वनियों से जोड़ने के लिए, उनके मात्रा-चिह्न निश्चित हैं। इनका उच्चारण के अनुरूप शुद्ध लिप्यंकन (लेखन) वांछनीय है। इसी प्रकार व्यंजनों में कुछ की उच्चरित ध्वनियाँ आपस में मिलती-जुलती हैं (श-ष-स, व-ब, न-ण, रि-ऋ, ह-: (विसर्ग) आदि। इनके सही प्रयोग का अभ्यास आवश्यक है।

यहाँ वर्तनी-सम्बन्धी कतिपय संभावित भूलों का निर्देश उपयुक्त होगा।

नोट

टास्क द्वित्व एवं संयुक्त व्यंजनों के लेखन में तो विशेष सजगता द्वारा ही संभावित अशुद्धियों से बचा जा सकता है।

1. स्वर एवं मात्रा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ: हिन्दी स्वर-ध्वनियाँ उच्चारण में लगने वाले समय के आधार पर ह्रस्व और दीर्घ वर्गों में विभाजित हैं। इनके विपर्यय के कारण जो अशुद्धियाँ होती, हैं उनके कथित (या लिखित) भाषिक रूप का अर्थ ही बदल जाता है। जैसे–

अचार (खाद्य पदार्थ), आचार (आचरण, चाल-चलन)।

उन (वह का बहुवचनीकृत रूपान्तर), ऊन (भेड़ आदि के बालों से तैयार गर्म धागा।)

इस दृष्टि से 'आचार-विचार में शुद्धता होनी चाहिए।' या 'ग्रामीण लोक आचार के साथ ही खा लेते हैं।' प्रयोग में वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धि के कारण अभीष्ट अर्थ-सिद्धि में व्याघात होगा। वर्तनी की अशुद्धि के कारण, यही स्थिति 'मैंने ऊन का सारा ऋण चुकता कर दिया है।' या 'गर्मियों में उनके वस्त्र सस्ते हो जाते हैं।' प्रयोगों में होगी।

मात्रा-प्रयोग में ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के विपर्यय के कारण विशेष रूप में बहुत अशुद्धियाँ संभावित हैं। 'दिन-दीन, सुत-सुत, मेल-मैल, शोक-शौक' आदि शब्दों के अर्थ सर्वथा भिन्न हैं। अत: 'चार दीन का मेहमान', 'वह दिन-हिन व्यक्ति किसी का क्या बिगाड़ेगा?,' 'गुजरात में सुत की कई मिलें हैं।', 'मैल-जोल से रहने में ही सूख है।', 'मुझे अपने मित्र की मृत्यु का बहुत शौक है।' आदि वाक्य प्रयोक्ता के लिए बड़ी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार की अशुद्धियाँ बहुवचन-निर्माण के इस नियम की अवहेलना के कारण भी होती हैं कि **एकवचन** में प्रयुक्त दीर्घ 'ई' और 'ऊ' बहुवचन में ह्रस्व हो जाते हैं।' यथा–नदी-नदियों, भालू-भालुओं आदि। नदीयों, भालुओं, चाबीयाँ आदि प्रयोग 'अशुद्ध' हैं। इसी प्रकार, 'इक' प्रत्यय वाले शब्दों का पहला स्वर प्राय: दीर्घ हो जाता है–सामाजिक, स्वाभाविक, आर्थिक आदि। सामाजिक, स्वाभाविक, आर्थिक प्रयोग अशुद्ध होंगे।

कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध**	**शुद्ध**
परिक्षा	परीक्षा	मालुम	मालूम
अभीमान	अभिमान	झाडु	झाड़ू
स्त्रि	स्त्री	कृपालू	कृपालु
पत्नि	पत्नी	ईर्ष्यालू	ईर्ष्यालू
त्रुटी	त्रुटि	झगड़ालू	झगड़ालू
मूर्ती	मूर्ति	मैथिलिशरण	मैथिलीशरण
मुक्ती	मुक्ति	कोशीश	कौशिश
लड़ाकु	लड़ाकू		

ऋ (हिन्दी में इस ध्वनि-चिह्न की गणना स्वरों में की जाती है) का मात्रा-चिह्न (ृ) है। यथा–कृपा, वृक्ष, तृण आदि। इसका उच्चारण 'रि' जैसा होने के कारण, लिखित रूप में भी क्रिया, व्रिक्ष, त्रिष्णा आदि रूप दिखाई देते हैं जो 'अशुद्ध' हैं।

इसी प्रकार विसर्ग (:) का उच्चारण हलन्त 'ह' जैसा है कि जिसके अनुकरण पर लिखित भाषा में प्रातह्, अन्तह् करण, स्वतह् आदि प्रयोग अशुद्ध होंगे–प्रात:, अन्त:करण, स्वत: शुद्ध रूप है।

इसी प्रकार, अन्य उदाहरण हैं–

नोट

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
द्रष्टि	दृष्टि	बृजभूषण	ब्रजभूषण
स्रष्टि	सृष्टि	भृष्ट	भ्रष्ट
प्रष्ठ	पृष्ठ	अनूग्रह	अनुग्रह
क्रत्रिम	कृत्रिम	संगृह	संग्रह
घ्रणा	घृणा	अनुग्रहीत	अनुगृहीत
संग्रहीत	संगृहीत		

ए-ऐ, ओ-औ की मात्राओं के प्रयोग में संभावित अशुद्धियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
एब	ऐब	अक्षोहीणी	अक्षोहिणी
चाहै	चाहे	कौना-कौना	कोना-कोना
कसेला	कसैला	ओरत	औरत
नैपथ्य	नेपथ्य	ओसान	औसान
एनक	ऐनक	कटोती	कटौती
टैलीफोन	टेलीफोन	कोन	कौन
इतिहासिक	ऐतिहासिक	ओने-पोने	औने-पौने
झैंपना	झेंपना	मोजूद	मौजूद
मेल	मैल	केद	कैद

अनुस्वार (ं) और अनुनासिक (ँ) के प्रयोग में कई प्रकार की अशुद्धियाँ हो जाती हैं। जैसे–

(1) दोनों का विपर्यय–कँठ (शुद्ध-कंठ), आंत (आँत) आदि।

(2) एक सर्वसामान्य प्रचलित नियम यह है कि व्यंजन-वर्गों के पंचम अक्षर (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) के स्थान पर अनुस्वर (ं) का प्रयोग होता है, अनुनासिक (ँ) का नहीं–अंक, पञ्जा–पंजा, कण्ठ–कंठ, सन्त–संत, सम्वाद–संवाद।

(3) एक अन्य प्रचलित नियम यह है कि प्रायः ह्रस्व वर्णों पर अनुस्वार (ं) और दीर्घ पर अनुनासिक (ँ) का प्रयोग होता है–अंध–आँधी, कंस–खाँसी, मंत्र–माँस, इत्यादि।

(4) इस सन्दर्भ में एक अन्य बहुसंभावित अशुद्धि भी उल्लेखनीय है। भाषा के लिखित प्रयोग में भूलवश अनुस्वार का चिह्न किस अक्षर पर लगना चाहिए उसके पूर्व या पश्चात् के अक्षर पर लग जाता है। जैसे–सतांन (शुद्ध–संतान), अनांद (अनांद), इत्यादि।

इसी प्रकार की अनेक अन्य अशुद्धियाँ संभव हैं। यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
हँस (पक्षी)	हंस	मांजना	माँजना
हंसी	हँसी	यहां	यहाँ
ससारं	संसार	औ ँधा	औंधा
उन्होंने	उन्होंने	सँत	संत
भाइयों	भाइयो	जाएं	जाएँ
मै	मैं	बोलेगें	बोलेंगे

नोट

शातं	शांत	आंएगे	आएँगे
वदंना	वंदना	अधंकार	अंधकार

2. व्यंजन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

'व्यंजन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ' अधिकांशतः अक्षर-विपर्यय के कारण होती हैं। मिलती-जुलती आकृति अथवा समान प्रतीत होने वाली ध्वनि के सूचक अक्षरों के प्रयोग में असावधानीवश विपर्यय हो जाता है, जो 'अशुद्धि' बन कर अर्थ-संचार को भी क्षति पहुँचा सकता है। उदाहरणतः क्ष-छ, क्ष-ज्ञ, ड-ड़, ढ-ढ़, न-ण, व-ब, आदि अक्षरों में परस्पर विपर्यय की आशंका है। परिणामतः प्रतीक्षा, रिक्षा, रज्ञा, आक्षा, लड़ना, डाकू, ढ़ाल, पढ़ाई, चड़ाई, कारन, आसण, वादल, वियोग आदि 'अशुद्ध' प्रयोग देखे जाते हैं, जिनके 'शुद्ध' रूप हैं–प्रतीक्षा, रिक्शा, रक्षा, आज्ञा, लड़ना, डाकू, ढाल, पढ़ाई, चढ़ाई, कारण, आसन, बादल, वियोग आदि। इसी प्रकार **श-ष का विपर्यय** एक आम बात है–दृष्य, मनुश्य, अभिलाशा, निश्फल, भाशण आदि। (शुद्ध रूप–दृश्य, मनुष्य, अभिलाषा, निष्फल, भाषण।)

अल्पप्राण और महाप्राण व्यंजन-ध्वनियों (विशेषतः ट-ठ) का विपर्यय भी अशुद्धि का कारण है। जैसे–अभीष्ठ, पृष्ट, रुष्ठ, कनिष्ट, क्लिष्ठ आदि। (शुद्ध–अभीष्ट, पृष्ट, रुष्ट, कनिष्ठ, क्लिष्ट)।

हिन्दी की व्यंजन-ध्वनियों में रेफ (र) के प्रयोग में पर्याप्त सावधानी अपेक्षित है, विशेषतया जब इसका प्रयोग अन्य व्यंजन-ध्वनियों के साथ संयुक्त रूप से हो। 'क्रम' और 'कर्म' के अर्थ में पर्याप्त अन्तर है। 'क्रम' की रूप-रचना इस प्रकार है–क् + र् + अ + म् + अ अर्थात् क् हलन्त और र पूर्णाक्षर है। दूसरा और 'कर्म' में 'र' हलन्त है। सामान्य नियम यह है कि 'र' से पूर्व यदि हलन्त अक्षर हो तो र उस अक्षर के नीचे (प्र, क्र, द्र) लगता है और यदि र् हलन्त हो तो उसका चिह्न आगामी अक्षर के ऊपर (र्) के रूप में प्रयुक्त होता है, (धर्म, दर्प, सर्व)। परकाश-पर्काश, करमसंख्या-कर्म-संख्या, कदर-कर्द आदि के स्थान पर क्रमशः प्रकाश, क्रम-संख्या कद्र शुद्ध वर्तनी रूप हैं।

हलन्त र् के प्रयोग में एक अन्य अशुद्धि प्रायः यह हो जाती है कि इसका अंकन उपयुक्त अक्षर के ऊपर न होकर, पूर्व या परवर्ती अक्षर पर कर दिया जाता है–अर्निवचनीय, सवार्त्मा, शबर्त, दुर्ष्कम, आदि। (शुद्ध रूप–अनिवर्चनीय, सर्वात्मा, शर्बत, दुष्कर्म)।

व्यंजन-सम्बन्धी सर्वाधिक सम्भावित अशुद्धियाँ द्वित्व और संयुक्त वर्णों में दिखायी देती हैं। 'द्द' के स्थान पर 'द्व' या 'द्व'; हलन्त के स्थान पर पूर्णाक्षर और पूर्णाक्षर के स्थान पर हलन्त व्यंजन का प्रयोग वर्तनी को अशुद्ध बना देता है। यथा–द्विवेदी, विद्दा, उद्वार, पुसतक, पर्मातमा, परसाद, पर्साद, आन्नद, अतिआचार, प्रशन, तदातम्य, विआखा आदि अशुद्धियाँ इसी प्रकार की हैं। (शुद्ध रूप–द्विवेदी, विदा-विद्या, उद्धार, पुस्तक, परमात्मा, प्रसाद, आनन्द, अत्याचार, प्रश्न, तादात्म्य, व्याख्या।

वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियों का अन्य प्रमुख क्षेत्र संधि-युक्त वर्ण हैं।

हिन्दी में स्वर, व्यंजन एवं विसर्ग-सम्बन्धी संधियों के विभिन्न नियम निर्धारित और प्रचलित हैं। उनकी अवहेलना अनेक अशुद्धियों का कारण बन जाती है। ये अशुद्धियों स्वर-संधि-युक्त शब्दों में अधिक दिखायी देती हैं। जैसे–अत्याधिक (शुद्ध–अत्याधिक)। 'अति + अधिक' में इ को यू हो जाने के बाद 'अधिक' का 'अ' उसी (य्) में मिलकर 'य' बन जाता है। इस अशुद्धि का कारण 'अत्याचार' (अति + आचार) का अनुकरण है। यहाँ 'आचार' में दीर्घ 'आ' है, इसलिए 'अति' की 'इ' को 'य्' हुआ तथा 'आचार' के 'आ' की दीर्घ मात्रा (ा) उसमें मिलने से 'अत्याचार' बन गया। इसी प्रकार 'संधि' से बनने वाले कुछ अन्य शब्दों का ध्यान रहना चाहिए–

अशुद्ध		शुद्ध
उद्वार	(उत् + हार)	उद्धार
उदघाटन	(उत् + घाटन)	उद्घाटन
भगवतगीता	(भगवत + गीता)	भगवद्गीता
अभिशेक	(अभि + सेक)	अभिषेक

नोट

निश्पाप	(निः + पाप)	निष्पाप
निश्कर्म	(निः + कर्म)	निष्कर्म
निष्चल	(निः + चल)	निश्चल
उपरियुक्त, उपरोक्त	(उपरि + उक्त)	उपर्युक्त
उज्जवल	(उत् + ज्वल)	उज्जवल
कवेन्द्र	(कवि + इन्द्र)	कवीन्द्र
गणीश	(गण + ईश)	गणेश
नाइक	(नै + अक)	नायक
नाइका	(नै + इका)	नायिका
सच्चदानंद	(सत् + चित् + आनंद)	सच्चिदानंद
सन्सार	(सम् + सार)	संसार
नमश्कार	(नमः + कार)	नमस्कार
पुनश्जन्म	(पुनः + जन्म)	पुनर्जन्म

इस प्रकार, भाषा-लेखन में कई स्तरों की अशुद्धियाँ सम्भव हैं, जिनसे बचना आवश्यक है।

स्व-मूल्यांकन

रिक्त स्थान की पूर्ति करें:–

1. ..... अशुद्धियाँ वे हैं जिनमें व्याकरणिक व्यवस्था का ठीक-ठीक निर्वाह होने पर भी अन्य किसी कारण से अर्थबोध में बाधा प्राप्त होती है।
2. ध्वनि के स्तर पर होने वाली अधिकांश अशुद्धियां भाषा के ..... रूप में दिखाई देती हैं।
3. हिंदी वाक्य रचना में ....., ..., ... का क्रम रहता है, उसी के अनुरूप वाक्य-रचना शुद्ध कहलाएगी।
4. हिंदी में संज्ञा या ..... शब्दों के बाद निभक्ति लगाने का नियम है।

18.3 अशुद्धियों का निराकरण

स्थूल रूप में वाक्य-प्रयोग के शब्द-चयन, शब्द-क्रम तथा अन्वय में गड़बड़ी वाक्य को अशुद्ध बना देती है। इससे वाक्य के अभिप्राय को समझने में दिक्कत होती है। इस तरह की अशुद्धियों से बचने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

1. **सही, सार्थक शब्द प्रयोग–**अपने प्रतिपाद्य के अनुरूप सही, सार्थक शब्दों का प्रयोग न होने पर वाक्य का अभिप्राय ठीक ढंग से बोधित नहीं होता; जैसे–'शोक है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया।' इस वाक्य में 'शोक' सही या सार्थक शब्द नहीं है, क्योंकि सामान्य कष्ट के लिए शोक शब्द का प्रयोग नहीं होता; अतः शुद्ध वाक्य होगा–

   'खेद है कि आपने मेरे पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया।'

2. **वाक्य रचना के नियमों का निर्वहन–**हिन्दी की वाक्य रचना में पद-क्रम के विशेष नियम हैं उनका निर्वहन अनिवार्य होता है; जैसे–हिन्दी वाक्य रचना में कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम रहता है, उसी के अनुरूप वाक्य रचना शुद्ध कहलायेगी। जैसे 'कृष्ण ने अर्जुन को गीता सुनाई'–यह शुद्ध वाक्य है, इसे 'गीता सुनाई कृष्ण ने अर्जुन को' लिखना अशुद्ध होगा। हर भाषा के अपने व्याकरणगत नियम होते हैं; जैसे–'अन्वय' है। वाक्य में सर्वनाम और संज्ञा, विशेषण और विशेष्य, कर्ता और क्रिया, कर्म और क्रिया तथा सम्बन्ध और

नोट

सम्बन्धी का विशेष अन्वय होता है, उसका निर्वाह करना अनिवार्य होता है। लिंग, वचन आदि के सम्बन्ध में होनेवाली अशुद्धियाँ इसके प्रति अज्ञान या असावधानी बरतने से ही होती हैं।

3. **परसर्ग अथवा विभाक्तियों का सही प्रयोग**–हिन्दी में संज्ञा या सर्वनाम शब्दों के बाद विभक्ति लगाने का नियम है और कौन-सी विभक्ति कब और कौन से शब्द के आगे या पीछे जुड़ती है, इसके भी नियम हैं जिसका अध्ययन कारकों में किया जाता है। विभक्तियों का प्रयोग सही और कारकों के अनुरूप ही होना चाहिए।

4. **विशेषण-विशेष्य आदि का ध्यान**–किसी संज्ञा के रूप-गुण या उसकी अच्छाई-बुराई आदि बताने वाले विशेषण का प्रयोग उस संज्ञा शब्द (जिसे विशेष्य कहते हैं, अर्थात् जिसकी विशेषता बताई जाए) से पहले किया जाता है; जैसे–'गर्म चाय का एक प्याला लाओ।' इस वाक्य को 'चाय का एक गर्म प्याला लाओ' इस रूप में प्रस्तुत करना अशुद्ध है, क्योंकि 'गर्म चाय का विशेषण होना चाहिए, प्याली का नहीं। इसी प्रकार क्रिया-विशेषण (धीरे, यहाँ, कब आदि) का प्रयोग उन क्रिया शब्दों से पूर्व किया जाता है, जिनकी कोई विशेषता (अर्थात् क्रिया कब, कहाँ, कैसे हुई, हो रही है या होगी) बताई जाए; जैसे–'आप बम्बई कब जायेंगे?' मैं तब जाऊँगा जब तुम यहाँ आ जाओगे।' 'तब तक तुम वहाँ रहें और मैं यहाँ रहूँगा।' अथवा 'खरगोश धीरे चलता है, किन्तु हिरण तेज दौड़ता है' इन्हीं वाक्यों को 'धीरे खरगोश चलता है' अथवा 'तब मैं जाऊँगा तुम जब जाओगे' आदि लिखना अशुद्ध होगा।

5. **वाक्य से अभिप्रेत अर्थ के अनुसार उसकी रचना**–अर्थ की दृष्टि से वाक्य कई प्रकार के होते है; जैसे–विध्यात्मक (मैं कल बम्बई जा रहा हूँ।), निषेधात्मक (मैं कल बम्बई नहीं जा रहा हूँ।), प्रश्नार्थक (आप कल बम्बई जा रहे हैं?), आज्ञा-वाचक (तुम कल बम्बई चले जाना।) आदि। वक्त या लेखक को अपने वास्तविक अभिप्राय के अनुरूप वाक्य-रचना करनी चाहिए।

6. **भाषा की प्रकृति के अनुकूल सुगठित वाक्य-रचना**–कभी-कभी दूसरी भाषा से प्रभावित होने के कारण लेखक या वक्त इस भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल और शिथिल वाक्य रचना कर जाते हैं; जैसे–'देहातों में हफ्ते में एक बार डाक बाँटना देशी भाषाओं को फैलाने में महान संकट है।' यह वाक्य हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है, साथ ही वाक्य रचना में वह गठन नहीं, जिससे सहज रूप में अर्थ बोध हो। शुद्ध वाक्य इस तरह होगा–'हफ्ते में एक बार डाक बाँटना देशी भाषाओं के पत्रों के प्रचार में बाधक है।'

7. **बोधगम्य वाक्य-रचना**–कभी-कभी असावधानी के कारण और कभी-कभी जान-बूझकर वाक्य इतने क्लिष्ट बनाए जाते हैं कि उनमें भ्रमाकता तथा जटिलता का दोष आ जाता है; जैसे–'रोता धोता विकल बनता, एक अमीर बूढ़ा, दीनों के बचन कहता पास अक्रूर के आ।' इस वाक्य के 'बनता' शब्द तो पढ़कर भ्रम होता है कि बूढ़ा, अमीर स्वयं दु:ख मग्न नहीं था, वरन् केवल दूसरों को दिखाने के लिए उसे 'विकल' बनना पड़ा है। इससे बढ़कर एक और वाक्य देखिए–'पानी से भी जो बदतर हो पैदा ऐसी आग न कर'। इसमें जटिलता की परिसीमा है। अप्रचलित शब्द प्रयोग, नवीनता के आग्रह के लिए प्रयुक्त दुरूह तथा असंगत विशेषण प्रयोग आदि से वाक्य बोधगम्यता खो जाती है।

8. **पुनरुक्ति से मुक्त वाक्य-रचना**–कभी-कभी शब्दों की निरर्थक पुनरावृत्ति की जाती है; जैसे–'चोरी के बाद केवल वस्त्र मात्र बचे हैं। यहाँ केवल-मात्र समानार्थी शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। शुद्ध वाक्य इस प्रकार होगा–'चोरी के बाद वस्त्र मात्र बचे हैं।'

9. **आकांक्षा की निवृत्ति**–आकांक्षा निवृत्ति से ही वाक्य पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। अत: वाक्य इस तरह होना चाहिए कि तथ्य को पूरी तरह से व्यक्त करें। जैसे 'दिन को सोता है' वाक्य से कथ्य स्पष्ट नहीं होता, लेकिन जब यह कहा जाए 'गार्ड दिन को सोता है।' तब कथ्य स्पष्ट होता है अर्थात् वाक्य में पूरा पद-बन्ध होना चाहिए।

नोट

18.4 सारांश

भाषा का एकमात्र प्रयोजन और प्रकार्य संप्रेषण (Communication) है।

संप्रेषण की सार्थकता वक्ता-श्रोता (लेखक-पाठक या सम्बोधक-सम्बोधित) के ऐसे संलाप में निहित है जिसे वे भली-भाँति समझकर उसका तात्पर्य ग्रहण कर सकें। यह तभी सम्भव है, जब भाषा का प्रयोग व्यवस्थाबद्ध, व्याकरणिक नियमानुकूल तथा परम्परा में बहुप्रचलित एवं प्रायः सर्वमान्य रूप में हो। भाषिक संरचना की अपनी एक व्यवस्था है। उस व्यवस्था के अनुकूल भाषिक प्रयोग ही संगत, साभिप्राय अथवा शुद्ध माने जा सकते हैं। **'बालक-टूटना-का-रोना-का खिलौना'** आदि शब्दों के उच्चारण या इन्हें लिपिबद्ध कर देने मात्र से, इनके प्रयोग का प्रयोजन (तात्पर्य–अर्थ-संप्रेषण) पूर्ण नहीं हो पाएगा; क्योंकि इन भाषिक ध्वनियों अथवा उनसे संरचित शब्दों में संरचनात्मक व्यवस्था का अभाव है। **'खिलौने टूट जाने के कारण बालक रोने लगा'** प्रयोग इसीलिए स्वीकार्य (शुद्ध) है क्योंकि इसमें भाषिक संरचना-व्यवस्था का निर्वाह सही रूप में हुआ है।

अशुद्धियों के कारणः भाषा के अशुद्धिपरक असामान्य प्रयोग कई कारणों से होते हैं। यथा–

(1) भाषिक संरचना के नियमों की अवहेलना,

(2) व्याकरणिक व्यवस्था का भंग,

(3) अर्थबोध में असंगति,

(4) परम्परा में मान्य प्रयोगों से भिन्नता,

(5) उच्चारण अथवा लेखन में ध्वनियों के सही रूप की अप्रस्तुति।

अशुद्धियों का निराकरणः स्थूल रूप में वाक्य-प्रयोग के शब्द-चयन, शब्द-क्रम तथा अन्वय में गड़बड़ी वाक्य को अशुद्ध बना देती है। इससे वाक्य के अभिप्राय को समझने में दिक्कत होती है। इस तरह की अशुद्धियों से बचने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

1. सही, सार्थक शब्द प्रयोग
2. वाक्य रचना के नियमों का निर्वहन
3. परसर्ग अथवा विभाक्तियों का सही प्रयोग
4. विशेषण-विशेष्य आदि का ध्यान
5. वाक्य से अभिप्रेत अर्थ के अनुसार उसकी रचना
6. भाषा की प्रकृति के अनुकूल सुगठित वाक्य-रचना
7. बोधगम्य वाक्य-रचना
8. पुनरुक्ति से मुक्त वाक्य-रचना
9. आकांक्षा की निवृत्ति

18.5 शब्दकोश

1. **अर्थवाहिनी–** अर्थों का वहन करने वाली
2. **व्यतिक्रम–** बाधा, रुकावट, उल्लंघन, रीतिभंग
3. **वांछनीय–** चाहने योग्य
4. **निवृत्ति–** वापस आना, लौटना

नोट

18.6 अभ्यास प्रश्न

1. भाषा की अशुद्धि के सामान्य कारण बताइए।
2. भाषा-अशुद्धि के प्रकारों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
3. भाषाा की अशुद्धियों के निराकरण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. व्यवस्थाबद्ध
2. लिखित
3. कर्त्ता, कर्म, क्रिया
4. सर्वनाम

18.7 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना*– डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती*– प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–19: विराम-चिह्न

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

19.1 विराम चिह्न

19.2 सारांश

19.3 अभ्यास-प्रश्न

19.4 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- विराम चिह्नों के प्रयोग से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

जीवन की दौड़ में मनुष्य को कहीं न कहीं रुकना या ठहरना भी पड़ता है। विराम की आवश्यकता हर व्यक्ति को होती है। जब हम काम करते-करते थक जाते हैं तब मन आराम करना चाहता है। यह आराम विराम का ही दूसरा नाम है। पहले विराम होता है, फिर आराम। स्पष्ट है कि साधारण जीवन में विराम की आवश्यकता है। लेखन मनुष्य के जीवन की एक विशेष मानसिक अवस्था है। लिखते समय लेखक यों ही नहीं दौड़ता, बल्कि कहीं थोड़ी देर के लिए रुकता है, ठहरता है और पूरा (पूर्ण) विराम लेता है। ऐसा इसलिए होता है कि हमारी मानसिक दशा की गति सदा एक-जैसी नहीं होती। यही कारण है कि लेखन कार्य में भी विराम चिह्नों का प्रयोग करना पड़ता है। यदि इन चिह्नों का उपयोग न किया जाय, तो भाव अथवा विचार की स्पष्टता में बाधा पड़ेगी और वाक्य एक-दूसरे से उलझ जायेंगे और तब पाठक को व्यर्थ की माथापच्ची करनी पड़ेगी।

19.1 विराम चिह्न

विराम का अर्थ है रुकना अथवा ठहराव। भाषा द्वारा जब हम अपने भावों को प्रकट करते हैं तो एक विचार के कुछ अंश को प्रकट करने के पश्चात् हम थोड़ा-सा रुकते हैं, इसे ही विराम कहते हैं। लिखते हुए 'विराम ' को प्रकट करने के लिए कुछ चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। प्रश्न, विस्मय, हर्ष आदि प्रकट करने के लिए भी वाक्यों या शब्दों के अन्त में चिह्न लगाये जाते हैं। यूँ सभी चिह्न विराम-चिह्न कहे जाते हैं। विराम-चिह्न को लगाने से वाक्य का आशय स्पष्ट हो जाता है। लेख की स्पष्टता और अर्थ-सौंदर्य के लिए विद्वानों ने कुछ विराम-चिह्न निश्चित किये हैं। हिंदी में इन विराम-चिह्नों का प्रयोग होता है–

1.	अल्पविराम	,	Comma
2.	अर्द्धविराम	;	Semicolon
3.	पूर्णविराम	।	Full Stop

नोट

4.	प्रश्नबोधक चिह्न	?	Sign of Interrogation
5.	विस्मयादिबोधक चिह्न	!	Note of Exclamation
6.	निर्देशक चिह्न	–	Dash
7.	योजक चिह्न	-	Hyphen
8.	कोष्ठक चिह्न	[]{}	Bracket
9.	उद्धरण चिह्न	." "	Inverted Commas
10.	इकहरे उद्धरण चिह्न	' '	Single Inverte Commas
11.	लाघव चिह्न	०	Abbreviation
12.	विवरण चिह्न	:—	Sign of Description
13.	लोप-निर्देशक चिह्न	...	Sign of disappearance

1. अल्प विराम– पढ़ते समय जिस स्थान पर थोड़ी देर ठहरना हो, वहाँ अल्प विराम का प्रयोग होता है।

(*i*) एक ही तरह के कई शब्द अथवा वाक्यांश जब साथ-साथ आ जाएँ और उनके बीच कोई सम्बन्धबोध (योजक) शब्द न हो तो प्रत्येक के आगे अल्प विराम लगाया जाता है। जैसे–युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँच भाई थे। खाना, पीना, सोना तो पशु भी जानते हैं।

(*ii*) जब परस्पर सम्बंध रखने वाले दो शब्दों के बीच में पद, वाक्यांश या खण्ड-वाक्य आकर उन्हें अलग-अलग कर दें तो उनके दोनों तरफ अल्प-विराम का प्रयोग होता है। जैसे श्याम, जिसके विषय में मैं तुमसे बातें कर रहा था, बड़े अच्छे अंकों से परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है।

(*iii*) नित्य-संबंधी शब्दों के जोड़ का दूसरा शब्द लुप्त रहे तो वहाँ भी अल्प विराम है। जैसे–वह जहाँ जाता है, (वहाँ) बैठ जाता है।

(*iv*) जहाँ 'यह' का लोप हुआ हो। जैसे–कब तक आएगा, कहा नहीं जा सकता। ने कहा, मैं आज अस्वस्थ हूँ, अत: विद्यालय नहीं आऊँगा।'

(*v*) किसी वाक्य को उद्वत करते समय उससे पहले अल्प विराम–लगता है। जैसे सुरेन्द्र ने कहा, मैं आज अस्वस्थ हूँ, अत: विद्यालय नहीं जाऊँगा।'

(*vi*) समीप बैठे व्यक्ति को साधारण रूप से अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उच्चारण किये गए उसके नाम के बाद अल्प-विराम लगा देते हैं।

टिप्पणी– 'और' से पहल अल्प-विराम का प्रयोग नहीं किया जाता। जैसे–रमा, कमला और विमला आ गई।

2. अर्द्ध विराम–अर्द्ध विराम का चिह्न वहाँ लगाया जाता है, जहाँ अल्पविराम की अपेक्षा कुछ अधिक ठहरना हो। जैसे–चन्द्र उदय हुआ; तारे चमकने लगे; लोग सोने की तैयारियाँ करने लगे। और मैं अपनी पुस्तक बन्द कर पलंग पर लेट गया।

यदि खंड वाक्य का आरम्भ वरन्, पर, परन्तु, किन्तु, क्योंकि, इसलिए, तो भी आदि शब्दों से ही तो उसके पहले अर्द्ध विराम आता है। जैसे–मैं आता तो सही; पर माताजी ने आने नहीं दिया।

3. पूर्ण विराम– जहाँ वाक्य पूरा होता है, वहाँ पूर्ण विराम का प्रयोग होता है। जैसे–हरि ने गीता समाप्त कर ली है।

4. प्रश्नबोधक– प्रश्नबोधक प्रश्न का बोध कराता है। इसका प्रयोग वाक्य के अन्त में होता है। जैसे–नरेन्द्र आजकल किस कक्षा में पढ़ता है?

नोट

5. विस्मयादिबोधक–विस्मय, हर्ष, शोक, आश्चर्य, घृणा आदि भावों को प्रकट करने के लिए जो शब्द आते हैं; उनके आगे यह (!) चिह्न लगाया जाता है। जैसे–हैं! धन्य धन्य! वाह वाह! हाय! पापी! अरे! हत्यारे! नीच! छि: छि:! आदि।

सम्बोधन के अन्त में भी इस चिह्न का प्रयोग होता है। जहाँ किसी को साधारण तौर पर बुलाना हो, वहाँ अल्प विराम (,) लगता है; परन्तु जहाँ किसी को दूर से या मनोविकार (क्रोध, आश्चर्य) प्रकट करते हुए बुलाना हो, वहाँ विस्मयादिबोधक (!) चिह्न लगाया जाता है। नाटकों में सम्बोधन के बाद प्राय: विस्मयादिबोधक चिह्न लगाया जाता है। जैसे–राम! इधर आओ।

टास्क दिए गए वाक्य में उचित विराम चिह्नों का प्रयोग कीजिए।
ओह मैं क्या करूँ?

6. निर्देशक चिह्न–इसका प्रयोग प्राय: निर्देश के लिए होता है।

(*i*) विषय–विभाग संबंधी प्रत्येक शीर्षक के आगे और जहाँ उद्धरण देना हो, वहाँ 'जैसे' या 'यथा' आदि शब्दों के आगे। जैसे–

(क) पशुपक्षी–गाय, भैंस, चिड़िया-कौवा-सभी व्याकुल थे।

(ख) निम्नलिखित के अर्थ लिखो–

(*ii*) वार्तालाप संबंधी लेखों में वक्ता के नाम के आगे या जहाँ किसी के कथन का आरम्भ हो, वहाँ कहाँ बोला, पूछा आदि शब्दों के आगे। जैसे–

(क) जयसिंह–द्वारपाल! दूत को अन्दर भेजो।

द्वारपाल–जो आज्ञा, स्वामिन्!

(ख) उसने पूछा–तुम कहाँ थे?

(ग) गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है–कर्म करो।

(*iii*) यदि वाक्य के बीच में कोई स्वतंत्र पद, वाक्यांश या वाक्य आ जाए तो उसके दोनों ओर भी इसका प्रयोग होता है। जैसे– मेरे मित्र ने-ईश्वर उसकी उन्नति करे– संकट में मेरी सहायता की।

(*iv*) वाक्य में किसी पद का अर्थ अधिक स्पष्ट करना हो या किसी बात को दुहराना हो तो भी इसका प्रयोग होता है। जैसे–यह उसके एक शब्द पर प्राण देने को तैयार है– केवल एक शब्द पर।

स्व-मुल्यांकन

विराम-चिह्नों की दृष्टि से कौन-सा विकल्प शुद्ध है? कोष्ठक में सही [✓] और गलत [X] का निशान लगाइए–

(क) दसपैसे–दस पैसों का समाहार ☐

(ख) रातदिन–रात और दिन ☐

(ग) चन्द्रभाल–चन्द्र के सदृश भाल वाला ☐

(घ) दशानन–दस हैं मुख जिनके ☐

7. योजक–समस्त (समास वाले) शब्दों में प्राय: इस चिह्न को लगाया जाता है।

नोट

यह चिह्न इस बात को बताता है कि इसके दोनों ओर के शब्द परस्पर मिले हुए हैं। जैसे–दस-पाँच, माता-पिता, संसार-सागर।

8. कोष्ठक चिह्न–किसी पद का अर्थ प्रकट करने के लिए अथवा नाटकों में पात्र के भाव व्यक्त करने के लिए कोष्ठक चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे–निरन्तर (लगातार) अध्ययन के विद्यार्थी व्याकरण को नहीं भूलता।

नाटक में–राम-(खिन्न होकर, माथे पर हाथ रखते हुए) ओ मेरे दुर्भाग्य! तूने मेरे साथ सीता को बांध कर उसे भी जीवन-भर दुखी रखा।

नोट्स लाघव चिह्न के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं– डॉक्टर के लिए डा॰, Please Turn over के लिए P.T.O. कुमारी के लिए कु॰ आदि

9. उद्धरण–दूसरे की उक्ति को जहाँ बिना किसी परिवर्तन के उतारा जाए, वहाँ " " चिह्न लगाया जाता है और इससे पूर्व अल्पविराम लगता है। जैसे–माताजी ने कहा था, "यदि ठीक समय पर न उठोगे तो तुमको मैं मिठाई नहीं दूंगी।"

10. इकहरे उद्धरण चिह्न–उद्धरण के अन्दर उद्धरण देना हो, तो इसका प्रयोग होता है।

कभी-कभी किसी विशेष शब्द को दूसरों से अलग दिखाने के लिए भी इकहरे उद्धरण चिह्न लगते हैं। जैसे–'अ' ह्रस्व भी है और दीर्घ भी, परन्तु 'क्' न तो ह्रस्व है और न दीर्घ।

11. लाघव चिह्न–जो शब्द बहुत प्रसिद्ध हो या उसके बार-बार लिखने की आवश्यकता पड़े, उसका पहला अक्षर लिखकर आगे लाघव चिह्न लगा देते हैं। जैसे–सम्बत्, मिति, तिथि आदि के स्थान पर सं॰; मि॰, ति॰; पंडित की जगह पं॰, जिला की जगह जि॰, और महात्मा के स्थान पर म॰ लिख देते हैं। अंग्रेजी के अनुकरण पर व्यक्तियों के नामों में भी लाघव चिह्न लगाया जाता है। जैसे–'श्री नागेश' की जगह 'एस॰ एन॰)

12. विवरण चिह्न–जब किसी पद की व्याख्या करनी हो या किसी के सम्बन्ध में विस्तार से कुछ कहना हो। जैसे–सर्वनाम के निम्नलिखित भेद हैं:–पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक; अनिश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक।

13. लोप-निर्देशक चिह्न–कभी-कभी वाक्य में कुछ अंश को छोड़ दिया जाता है। छोड़े गए स्थान पर इसका प्रयोग किया जाता है। जैसे–दीपों की माला पहनकर निशा हँस रही थी, और उसकी छवि...।

19.2 सारांश

जीवन की दौड़ में मनुष्य को कहीं न कहीं रुकना या ठहरना भी पड़ता है। विराम की आवश्यकता हर व्यक्ति को होती है। जब हम काम करते-करते थक जाते हैं तब मन आराम करना चाहता हैं यह आराम विराम का ही दूसरा नाम है। पहले विराम होता है, फिरने आराम। स्पष्ट है कि साधारण जीवन में विराम की आवश्यकता है।

विराम का अर्थ है रुकना अथवा ठहराव। भाषा द्वारा जब हम अपने भावों को प्रकट करते हैं तो एक विचार के कुछ अंश को प्रकट करने के पश्चात् हम थोड़ा-सा रुकते हैं, इसे ही विराम कहते हैं। लिखते हुए 'विराम ' को प्रकट करने के लिए कुछ चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। प्रश्न, विस्मय, हर्ष आदि प्रकट करने के लिए भी वाक्यों या शब्दों के अन्त में चिह्न लगाये जाते हैं। यूँ सभी चिह्न विराम-चिह्न कहे जाते हैं। विराम-चिह्न को लगाने से वाक्य का आशय स्पष्ट हो जाता है।

19.3 अभ्यास प्रश्न

नोट

1. विराम-चिह्न किसे कहते हैं? विराम-चिह्नों को लगाने की आवश्यकता क्यों होती है?
2. नीचे विराम-चिह्न के नाम और उनके चिह्न दिये गए हैं। शुद्ध के सामने [✓] का और अशुद्ध के सामने [X] का चिह्न लगाइए–

(क)	अल्पविराम	,	☐
(ख)	अर्द्धविराम	;	☐
(ग)	पूर्णविराम	।	☐
(घ)	प्रश्नबोधक चिह्न	?	☐
(ड.)	विस्मयादिबोधक चिह्न	!	☐
(च)	निर्देशक चिह्न	–	☐
(छ)	योजक चिह्न	-	☐
(ज)	कोष्ठक चिह्न	()	☐
(झ)	उद्धरण चिह्न	‘’	☐
(ञ)	इकहरे उद्धरण चिह्न	...	☐
(ट)	लाघव चिह्न	:–	☐
(ठ)	लोप-निर्देशक चिह्न	०	☐

3. निम्नलिखित वाक्यों में विराम-चिह्नों का उचित प्रयोग कीजिए–
   (क) अजी आप क्या करेंगे भला कदम तो उठायें फिर देखेंगे क्या होता है बच्चों की सी बातें।
   (ख) हम क्या हैं यह संसार को दिखला देंगे।
   (ग) यहाँ एक लाख पाकिस्तानी सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया।
4. निम्नांकित वाक्यों के सामने कोष्ठक में कुछ विराम-चिह्न दिये गए हैं, उनमें से सही विराम-चिह्न चुनकर प्रत्येक वाक्य में प्रयोग कीजिए–
   (क) वह जहाँ जाता है बैठ जाता है (, ।)
   (ख) क्या तुम स्नान करोगे (। ?)
   (ग) ओह मैं क्या करुँ (। !)
   (घ) अशोक अतुल और अमित पढ़ रहे थे पर अनिल खेल रहा था। (, ।)

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. [X] 2. [X] 3. [✓] 4. [✓]

19.4 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना*– डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती*– प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–20: अनुच्छेद-लेखन

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

20.1 अनुच्छेद-लेखन

20.1.1 अनुच्छेद-लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

20.1.2 अनुच्छेद-लेखन के कुछ उदाहरण

20.2 सारांश

20.3 शब्दकोश

20.4 अभ्यास-प्रश्न

20.5 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- अनुच्छेद-लेखन की कला से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

किसी एक भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए लिखे गये संबद्ध और लघु वाक्य-समूह को अनुच्छेद-लेखन कहते हैं। इसका मुख्य कार्य किसी एक विचार को इस तरह लिखना होता है, जिसके सभी वाक्य एक-दूसरे से बँधे होते हैं। एक भी वाक्य अनावश्यक और बेकार नहीं होना चाहिए।

20.1 अनुच्छेद-लेखन

अनुच्छेद अपने-अपने स्वतंत्र और पूर्ण होते हैं। अनुच्छेद का मुख्य विचार या भाव की कुंजी या तो आरम्भ में रहती है या अन्त में। उच्च कोटि के अनुच्छेद-लेखन में मुख्य विचार अन्त में दिया जाता है। इसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं।

20.1.1 अनुच्छेद-लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

1. अनुच्छेद किसी एक भाव या विचार या तथ्य को एक बार, एक ही स्थान पर व्यक्त करता है। इसमें अन्य विचार नहीं रहते।
2. अनुच्छेद के वाक्य-समूह में उद्देश्य की एकता रहती है। अप्रासंगिक बातों को हटा दिया जाता है।
3. अनुच्छेद एक स्वतंत्र और पूर्ण रचना है, जिसका कोई भी वाक्य अनावश्यक नहीं होता।
4. उच्च कोटि के अनुच्छेद-लेखन में विचारों को इस क्रम में रखा जाता है कि उनका आरम्भ, मध्य और अन्त आसानी से व्यक्त हो जाये।

नोट

5. अनुच्छेद सामान्यत: छोटा होता है, किन्तु इसकी तुलना लघुता या विस्तार विषयवस्तु पर निर्भर करता है।

6. अनुच्छेद की भाषा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए।

टास्क 'जन लोकपाल' विषय पर एक अनुच्छेद लिखिए।

20.1.2 अनुच्छेद-लेखन के कुछ उदाहरण

(1) साहित्य–ज्ञान राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवन्ती भिखारणी की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा श्री सम्पन्नता, उसकी मान मर्यादा उसके साहित्य ही पर अवलम्बित रहती है। जाति विशेष के उत्कर्षोपकर्ष का, उनके ऊंच-नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसके ऐतिहासिक घटना चक्रों और राजनैतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उसके ग्रंथ साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक आशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एक मात्र साहित्य ही है। जिस जाति विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी शून्यता आपको दीख पड़े, आप निस्सन्देह निश्चित् समझिए कि वह असभ्य है व अपूर्ण सभ्य है।

क्या आप जानते हैं 'साहित्य ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम है।' यह कथन हिंदी के महान् आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का है।

(2) क्रोध और विवेक– याद रखिए क्रोध और विवेक में शत्रुता है। क्रोध विवेक का पूरा शत्रु है। क्रोध एक प्रकार की प्रचण्ड आंधी है। जब क्रोध रूपी आंधी आ जाती है तब दूसरे की बात नहीं सुनाई पड़ती। उस समय कोई चाहे कुछ भी कहे, सब व्यर्थ जाता है। आंधी में भी किसी की बात नहीं सुनाई पड़ती। इसलिए ऐसी आंधी के समय बाहर से सहायता मिलना असम्भव है। यदि कुछ सहायता मिल सकती है तो भीतर से ही मिल सकती है। अतएव मनुष्य को उचित है कि वह पहले से ही विवेक, विचार और चिन्तन को अपने हृदय में इकट्ठा कर रखे, जिससे क्रोध रूपी आंधी के समय उसके भीतर से सहायता ले सके। जब कोई नगर किसी बलवान शत्रु से घेर लिया जाता है तब उस नगर में बाहर से कोई वस्तु नहीं आ सकती। जो कुछ भीतर होता है, वही काम आता है। क्रोधान्ध होने पर भी बाहर की कोई वस्तु काम नहीं आती। इसलिए हृदय के भीतर सुविचार और चिन्तन की आवश्यकता होती है।

(3) भक्ति– भक्ति में बड़ी भारी शर्त है निष्काम की। सच्ची भक्ति में लेन-देन का भाव नहीं होता। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी, इस भावना को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती। भक्ति के लिए भक्ति का आनन्द ही उसका फल है। वह शक्ति सौन्दर्य और शील के अनन्त समुद्र के तट पर खड़ा होकर लहरें लेने में ही जीवन का परम फल मानता है।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही [✓] अथवा गलत [X] का निशान लगाइए–

1. स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए अनुच्छेद लेखन में विषय का विस्तार आवश्यक है। [ ]

नोट

2. अनुच्छेद अपने आप में स्वतंत्र एवं पूर्ण होते हैं। ☐
3. उच्चकोटि के अनुच्छेदों में विस्तार अंत में दिया जाता है। ☐
4. संक्षिप्तता के कारण अनुच्छेद की भाषा कठिन हो जाती है। ☐

(4) लोकधर्म–जहां लोकधर्म और व्यक्ति धर्म का विरोध हो, वहां कर्ममार्गी गृहस्थ के लिए लोकधर्म अवलम्बन श्रेष्ठ है। यदि किसी अत्याचारी का दमन सीधे न्यायसंगत उपाय से नहीं हो सकता तो कुटिल नीति का अवलम्बन लोकधर्म की दृष्टि से उचित है। किसी अत्याचारी को जो हानि पहुंच रही है उसके सामने वह हानि कुछ भी नहीं है जो किसी एक व्यक्ति के बुरे दृष्टांत से होगी। लक्ष्य यदि व्यापक और श्रेष्ठ है तो साधन का अनिवार्य अनौचित्य उतना खुल नहीं सकता। भारतीय जन समाज को लाकधर्म का यह आदर्श पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित रहने पाता तो विदेशियों के आक्रमण को व्यर्थ करने में देश अधिक समर्थ होता।

(5) मानवता–हमारे शास्त्रों में धर्म के अनेक लक्षण हैं, किन्तु मेरी सम्मति में धर्म का एक ही लक्षण होना चाहिए और वह यह कि जिसके बिना किसी पदार्थ का अस्तित्व ही न रहे, वही उसका धर्म है। उदाहरण के लिए अग्नि का धर्म जलाना, जल का धर्म शीतलता है। यदि अग्नि जलाना छोड़ दे और जल अपनी शीतलता को त्याग दे तो इन पदार्थों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य का धर्म मानवता है। यदि मनुष्य में मानवता नहीं तो कुछ भी नहीं। आज कुछ लोगों ने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को भिन्न-भिन्न धर्मों के नाए दिए हैं, किन्तु वे सब हमारी दृष्टि में एक ही लक्ष्य अर्थात् मानवता की प्राप्ति के मार्ग हैं। मानवता ही सम्पूर्ण विश्व का धर्म हो सकता है। इसमें किसी का मतभेद अथवा विरोध नहीं हो सकता। निश्चय ही आज इस धर्म के प्रचार की आवश्यकता है।

20.2 सारांश

किसी एक भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए लिखे गये संबद्ध और लघु वाक्य-समूह को अनुच्छेद-लेखन कहते हैं। इसका मुख्य कार्य किसी एक विचार को इस तरह लिखना होता है, जिसके सभी वाक्य एक-दूसरे से बँधे होते हैं। एक भी वाक्य अनावश्यक और बेकार नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद अपने-अपने स्वतंत्र और पूर्ण होते हैं। अनुच्छेद का मुख्य विचार या भाव की कुंजी या तो आरम्भ में रहती है या अन्त में। उच्च कोटि के अनुच्छेद-लेखन में मुख्य विचार अन्त में दिया जाता है। इसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं।

1. अनुच्छेद किसी एक भाव या विचार या तथ्य को एक बार, एक ही स्थान पर व्यक्त करता है। इसमें अन्य विचार नहीं रहते।
2. अनुच्छेद के वाक्य-समूह में उद्देश्य की एकता रहती है। अप्रासंगिक बातों को हटा दिया जाता है।
3. अनुच्छेद एक स्वतंत्र और पूर्ण रचना है, जिसका कोई भी वाक्य अनावश्यक नहीं होता।

20.3 शब्दकोश

1. **अवलंबित–** आश्रित, लटकाया हुआ, सत्वर
2. **निष्काम–** कामना एवं वासना से रहित, निर्लिप्त
3. **कुटिल–** टेढ़ा, छली, चालबाज, दुष्ट, धोखेबाज
4. **अनौचित्य–** अनुचित, औचित्य का आभाव

उत्तर: स्व-मूल्यांकन **नोट**

1. [X] 2. [✓] 3. [✓] 4. [X]

20.4 अभ्यास-प्रश्न

1. अनुच्छेद-लेखन की विशेषताएँ बताइए।
2. निम्नलिखित विषयों पर अनुच्छेद लिखिए।

   स्वतंत्रता, खुशी, निर्लज्जता, आत्मसम्मान, अहिंसा

20.5 संदर्भ पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना*– डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती*– प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–21: आशय-लेखन

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

21.1 आशय या अर्थ-लेखन

21.2 आशय-लेखन के समय ध्यान देने योग्य बातें

21.3 आशय-लेखन के कुछ उदाहरण

21.4 सारांश

21.5 शब्दकोश

21.6 अभ्यास-प्रश्न

21.7 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- आशय-लेखन की कला से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

आशय-लेखन भी एक कला है। प्रस्तुत इकाई में आशय-लेखन से अभिप्राय तथा आशय-लेखन के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है।

21.1 आशय या अर्थ–लेखन

प्रश्नपत्रों में प्राय: गद्य या पद्य से कुछ अवतरण आशय लिखने के लिए दिये जाते हैं। आशय लिखने की अपनी विधि है। इसका विधान भावार्थ (substance) से भिन्न है। किसी अवतरण का आशय लिखने के लिए यह आवश्यक है कि मूल अवतरण के भावों और विचारों की रक्षा की जाय। आशय न तो किसी अवतरण का सारांश है, न व्याख्या, न भावार्थ। **मूलभावों को अपनी भाषा में उपस्थित करने की विधि को आशय या अर्थ-लेखन कहते हैं।**

21.2 आशय–लेखन के समय ध्यान देने योग्य बातें

आशय-लेखन के समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. मूल अवतरण को पहले ध्यान से पढ़िए और प्रत्येक पंक्ति तथा वाक्य को समझने का प्रयत्न कीजिए कि यहाँ किस प्रसंग में या किस विषय के सम्बन्ध में क्या कहा गया है।
2. अवतरण के मूलअर्थ को समझ लेने के बाद महत्त्वपूर्ण तथ्यों तथा विचारों का स्पष्ट विभाजन या विश्लेषण कर लीजिए। अवतरण में मूलरूप से क्या कहा गया है, इसपर ध्यान दीजिए। कोई भी विचार या भाव

नोट

कैसे कहा गया है, इसपर ध्यान देने की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी इसपर कि क्या कहा गया। तात्पर्य यह कि उसके विचारपक्ष पर प्रकाश डालना चाहिए।

3. अब मूल अवतरण के प्रत्येक तथ्य या विचार को अपनी भाषा में स्पष्टत: लिख लेना चाहिए। हर विचार एक-एक अनुच्छेद (पैरा) में लिखा जाना चाहिए।

4. आशय या अर्थ की रूपरेखा तैयार हो जाने के बाद उसे आप पढ़ जाइए। आवश्यकतानुसार यहाँ-वहाँ कुछ शब्दों मे हेर-फेर किया जा सकता है। तैयार किया गया अर्थ पढ़ने पर ऐसा मालूम हो कि मूल अवतरण का कोई भाव या विचार छूट नहीं गया है और आप उसे अच्छी तरह समझ गये हैं।

5. आशय या अर्थ के लिए विस्तार या संक्षेप का कोई निश्चित नियम नहीं है। लेकिन, विषय की लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधने या विस्तार के साथ प्रसंग-निर्देश करने या पंक्ति की सविस्तर व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। साथ ही, सिर्फ पदान्वय (paraphrasing) कर देने से भी काम नहीं चल सकता। 'अर्थ' मूल अवतरण से बड़ा भी हो जाये, तो हर्ज नहीं; क्योंकि मूल अवतरण के सभी भाव या विचार जब तक अच्छी तरह स्पष्ट न हो जायें तब तक अर्थ लिखते जाना चाहिए। लेकिन इसकी भी एक सीमा होनी चाहिए। यह सब कुछ अंकों पर निर्भर है। यदि 'अर्थ' का पूर्णांक 5 या 10 है, तो इसी के अनुसार हम अर्थ का विस्तार एवं संकोच करें। यदि दिया गया अवतरण बड़ा हो तो आशय संक्षेप में लिखना चाहिए; यदि छोटा हो, तो उसके आकार को थोड़ा बढ़ाया जा सकता है। इतना होते हुए भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि 'अर्थ' की विशेषता मूल की रक्षा और स्पष्टीकरण में है।

नोट्स आशय की भाषा लेखक की अपनी होनी चाहिए; जो सरल हो। आलंकारिक भाषा लिखने की आवश्यकता नहीं

21.3 आशय लेखन के कुछ उदाहरण

यहाँ दोनों प्रकार के आशयों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

1. निम्नलिखित अवतरणों का अर्थ अथवा आशय लिखिए–

(क) मनुष्य के व्यक्ति का जहाँ पूर्ण विकास होता है, उसके दिव्य गुणों का चरम प्रकाश होता है, वहीं हम मनुष्यत्व में ईश्वर की, नर में नारायण की कल्पना कर सकते हैं।

(ख) इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना,

किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

उत्तर–(क) इन पंक्तियों में लेखक ने मनुष्य के व्यक्तित्व में देवत्व के दर्शन किये हैं। मनुष्य एक चेतन प्राणी है, जो अपने गुणों को प्रकाशित कर मनुष्यत्व की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। यह तभी होता है, जब वह अपने व्यक्तित्व का चरम विकास कर लेता है। व्यक्तित्व का विकास अलौकिक गुणों को अपने में समाविष्ट करने पर होता है। ऐसे ही विकास का चरम प्रकाश मनुष्य को देवत्व का गौरव प्रदान करता है। देवत्व के इस धरातल पर पहुँचकर मनुष्य साधारण नर से नारायण बन जाता है। सर्वसाधारण ऐसे ही लोगों के सम्बन्ध में नारायण या देवता की कल्पना करते हैं। अत:, मूल अवतरण का अर्थ है कि व्यक्तित्व के निर्माण में मनुष्यत्व का उदय होता है और मनुष्यत्व के चरम विकास में देवत्व की उपलब्धि।

नोट

(ख) इन पंक्तियों में जीवन के उच्च आदर्श की चर्चा की गयी है। जीवन एक ऐसा राजपथ है जिससे होकर सभी को चलना पड़ता है। पथ की तो एक सीमा होती है, जहाँ पहुँचकर पथिक को अचानक रुक जाना पड़ता है। सीमाओं में बँधकर रह जाना और एक निर्दिष्ट स्थान तक चलकर रुक जाना जीवन का उद्देशय या आदर्श नहीं है। मृत्यु जीवन की एक सीमा है, जहाँ सर्वसाधारण पहुँचकर विराम ले लेते हैं; किन्तु कर्मठ पुरुष अपनी जययात्रा का अन्त यहीं नहीं मानते। वे तो आगे बढ़ते ही जाते हैं। प्रगति में उनका अटूट विश्वास होता है। वे तबतक चलते ही रहेंगे जब तक लक्ष्य न प्राप्त कर लें। जीवन के पथों का तो निश्चित ठिकाना होता है; पर आध्यात्मिक या पारमार्थिक पथ निस्सीम है, जहाँ जीवन रुकना नहीं जानता। आत्मा के परमात्मा या परमार्थ में लय हो जाने पर ही इस यात्रा का अन्त होता है। यहाँ से आगे बढ़ने की राह नहीं मिलती। संक्षेपत: भौतिक जीवन की एक सीमा है, जो विनाश का सूचक है; अध्यात्म या परमार्थ एक अनन्त पथ है, जिसमें प्रगति-ही-प्रगति है, आनन्द-ही-आनन्द है। यहाँ मनुष्य की मृत्यु नहीं होती।

इन प्रश्नोत्तरों के आधार पर अर्थ या आशय लिखने का अभ्यास किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में एक अनुभवी परीक्षक का कथन है कि "आशय देने का अर्थ है, दिये हुए उद्धरणों के भावों की परीक्षार्थी के शब्दों में अभिव्यक्ति; लम्बी-चौड़ी व्याख्या या शब्द-परिवर्तनमात्र नहीं।"

द्रष्टव्य–उपर्युक्त दो उदाहरणों में आशय के अवतरण छोटे थे, इसलिए अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विस्तार आवश्यक था।

टास्क दी गई पंक्तियों का आशय लिखिए–

शक्ति भी शांति भी भक्तों के गीत में है,
भारत के बासियों की मुक्ति पिरीत में है।

दूसरे प्रकार के आशय के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

2. निम्नलिखित अवतरण का आशय या अर्थ लिखिए–

मेरी समझ में केवल मनोरंजन काव्य का साध्य नहीं है। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है; पर उसके उपरान्त कुछ और भी होता है। मनोरंजन करना कविता का प्रधान गुण है, जिससे वह मनुष्य के चित्त को अपना प्रभाव जमाने के लिए वश में किए रहती है, उसे इधर-उधर जाने नहीं देती। यही कारण है कि नीति और धर्म से सम्बद्ध उपदेश चित्त पर वैसा असर नहीं करते, जैसाकि काव्य या उपन्यास से निकली हुई शिक्षा असर करती है। कविता अपनी मनोरंजक शक्ति के द्वारा पढ़ने या सुननेवाले का चित्त उचटने नहीं देती, हृदय के मर्मस्थानों का स्पर्श करती है और सृष्टि में उक्त कर्मों के स्थान और सम्बन्ध की सूचना देकर मानव-जीवन पर उनके प्रभाव और परिणाम विस्तृत रूप से अंकित करके दिखाती है।

उपर्युक्त अवतरण का आशय इस प्रकार लिखा जायेगा–

आशय–काव्य में मनुष्य को प्रभावित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। वह मनोरंजन द्वारा मानवहृदय को ऐसा प्रभावित करता है कि वह (मानवहृदय) इधर-उधर नहीं जा सकता। साथ ही, कविता मनुष्य के मर्मस्थलों का स्पर्श कर उसके सुप्त भावों को जगाती है और उसपर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है।

3. निम्नलिखित गद्यांश का आशय अपनी भाषा में लिखिए–

हमारे मन की थकावट और ताजगी के लिए हमारी मानसिक स्थिति सबसे अधिक जिम्मेदार है। निराशा हमारी सबसे बड़ी शत्रु है। शारीरिक योग्यता को नष्ट करनेवाला इससे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है। इसका जहरीला असर

नोट

इतना भीषण होता है कि महीनों के लगातार परिश्रम की थकावट भी उसका मुकाबला नहीं कर सकती। इसके प्रतिकूल शान्त निद्रा से जो ताजगी मिलती है, उससे भी इन्द्रियों में स्फूर्ति पैदा हो जाती है। प्रत्येक बुद्धिमान् आदमी शारीरिक योग्यता प्राप्त करना चाहता है। चाहे वह जीवन की किसी भी अवस्था मे क्यों न हो, चाहे वह व्यापार-वाणिज्य में लगा हुआ हो, पुस्तक लिखता हो, कारीगर हो, समाजसेवा में दत्तचित्त हो, प्रत्येक अवस्था में वह सदा अधिक काम करते रहने और आगे बढ़ते रहने के लिए आतुर रहता है। जो कुछ वह करता है, उसकी सदा यही इच्छा रहती है कि उसी योग्यता बढ़े। इसकी उपलब्धि का एकमात्र उपाय यह है कि प्रत्येक काम निपुणता के साथ शारीरिक योग्यता बढ़ाते हुए किया जाय।

आशय–संसार के हर क्षेत्र मे कार्य करनेवाले व्यक्ति की यह प्रबल इच्छा रहती है कि वह निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहे और उसके कार्य करने की शक्ति का विकास हो। यह तभी सम्भव है जब उसका शरीर स्वस्थ हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने जीवन में कभी निराश न हों। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारी मानसिक स्थिति पर ही हमारी शारीरिक स्थिति निर्भर करती है। चिन्ता और निराशा का हमारे शरीर पर बड़ा बुरा असर होता है।

4. निम्नलिखित गद्यांश का आशय लिखिए–

समाज की सेवा अपनी सेवा है। हम समाज से अलग नहीं। समाज को स्वच्छ रखना हमारा कर्तव्य है। संगति का प्रभाव मनुष्य पर बहुत ज्यादा पड़ता है। बुरे आदमियों की संगति में हम अच्छे रह नहीं सकते। जब परिवार के सभी आदमी दु:ख से कराहते हों, हम हँस नहीं सकते। समाज के साथ तो हमें आमरण रहना है। अगर हमें अपन-आपको सुखी और स्वच्छ रखना है, तो अपने परिवार को, अपने पड़ोस को सुखी और स्वच्छ रखना पड़ेगा। परिवार और पड़ोस समाज के ही अंग हैं। कुछ लोगों की यह शिकायत है कि समय की कमी के कारण वे समाज की सेवा करने में असमर्थ हैं। यह शिकायत निराधार है। आपका पड़ोसी सिरदर्द से छटपटा रहा हो और आप ग्रामोफोन का का रेकार्ड सुन रहे हैं! क्या समाज के एक अंग के लिए आप गाना सुनना बन्द नहीं कर सकते?

आशय–मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। समाज के सुखी रहने पर ही वह सुखी रह सकता है। अत:, उसे समाज को सुखी रखने की चेष्टा करनी चाहिए। कुछ लोग कहते हैं, उनके पास समय नहीं है कि वे समाज की सेवा करें। यह थोथी दलील है। यदि हममें समाजसेवा की आन्तरिक इच्छा है, तो हम जीवन की हर स्थिति में समाजसेवा कर सकते हैं। पड़ोसियों के दु:ख-दर्द में साथ देना हमारा कर्तव्य है।

द्रष्टव्य–उपर्युक्त अवतरणों के आशय से स्पष्ट है कि जब दिया गया अवतरण बड़ा या लम्बा हो, तो उसका आशय संक्षेप में लिखना चाहिए। उसे कम-से-कम मूल का आधा तो होना ही चाहिए और जब मूल अवतरण छोटा हो, तो उसका आशय थोड़ा विस्तार से लिखना चाहिए। उसे कम-से-कम उसका दुगुना तो होना ही चाहिए।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही [√] अथवा गलत [X] का निशान लगाइए–

1. आशय-लेखन भावार्थ एवं व्याख्या से भिन्न है। ☐
2. आशय-लेखन में विचार नहीं होते। ☐
3. आशय-लेखन में विस्तार आवश्यक है। ☐
4. काव्य में मनुष्य को प्रभावित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। ☐

5. निम्नलिखित अवतरण का आशय अथवा अर्थ लिखिए–

हमारे समाज में अनेक सामाजिक कुप्रथाएँ एवं कुरीतियाँ हैं। सर्वप्रथम तो हम वैवाहिक कुरीतियों को ही देखें। पाँच-सात वर्ष की बालिकाओं का विवाह साठ-सत्तर साल के वृद्धों के साथ कर दिया जाता है। दूसरी कुप्रथा

नोट

अस्पृश्यता है। जिन्हें अस्पृश्य समझा जाता है वे न तो देवालयों में जा सकते हैं और न जलाश्यों से पानी ले सकते हैं। अस्पृश्यता के नाम पर किये जानेवाले हमारे इन अन्यायों के कारण करोड़ों अन्त्यज कहे जानेवाले व्यक्ति हमसे दिन-प्रतिदिन दूर होते जा रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार ने कानून के द्वारा अस्पृश्यता को अवैध घोषित कर दिया है, फिर भी अस्पृश्यों की दशा सुधारने और समाज में उन्हें समान अधिकार दिलाने के लिए नवयुवकों को बहुत कार्य करना है।

आशय–हमारे समाज मे अनमेल विवाह और अस्पृश्यता-जैसी कुरीतियाँ हैं। अस्पृश्यों पर तरह-तरह के अन्याय किये जाते हैं। स्वतन्त्र भारत की सरकार का अस्पृश्यता को गैरकानूनी घोषित करना प्रशंसनीय है। फिर भी, नवयुवकों को अस्पृश्यों की दशा सुधारने के लिए अभी बहुत कुछ करना है।

21.4 सारांश

आशय लिखने की अपनी विधि है। इसका विधान भावार्थ (substance) से भिन्न है। किसी अवतरण का आशय लिखने के लिए यह आवश्यक है कि मूल अवतरण के भावों और विचारों की रक्षा की जाय। आशय न तो किसी अवतरण का सारांश है, न व्याख्या, न भावार्थ। **मूलभावों को अपनी भाषा में उपस्थित करने की विधि को आशय या अर्थ-लेखन कहते हैं।**

आशय-लेखन के समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. मूल अवतरण को पहले ध्यान से पढ़िए और प्रत्येक पंक्ति तथा वाक्य को समझने का प्रयत्न कीजिए कि यहाँ किस प्रसंग मे या किस विषय के सम्बन्ध में क्या कहा गया है।
2. अवतरण के मूलार्थ को समझ लेने के बाद महत्त्वपूर्ण तथ्यों तथा विचारों का स्पष्ट विभाजन या विश्लेषण कर लीजिए। अवतरण में मूलरूप से क्या कहा गया है, इसपर ध्यान दीजिए। कोई भी विचार या भाव कैसे कहा गया है, इसपर ध्यान देने की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी इसपर कि क्या कहा गया। तात्पर्य यह कि उसके विचारपक्ष पर प्रकाश डालना चाहिए।

21.5 शब्दकोश

1. **अभिप्राय–** मूल अर्थ, इरादा, नीयत, आशय, तात्पर्य, कथानक रूढ़ि।
2. **अवतरण–** लेखादि का उद्धृत अंश, उतरना, नीचे आना या जाना।
3. **विश्लेषण–** छानबीन करना, जाँच करना, अलग करना।

21.6 अभ्यास प्रश्न

1. आशय-लेखन के समय किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।
2. निम्नलिखित अवतरणों का आशय लिखिए–

1. जैसे ही कन्या का जन्म हुआ, माता-पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह की कठिनाइयों की ओर गया। यदि वह रोगी माता-पिता से पैतृक धन की तरह रोग ले आयी हो, तो भी उसके जन्मदाता अपने दुष्कर्म के इस कटु फल को पराई धरोहर कह-कहकर किसी को सौंपने के लिए व्याकुल होने लगे। चाहें कन्या को कुष्ठ हो, चाहे यक्ष्मा और चाहे अन्य रोग, परन्तु उसको विवाह-जैसे उत्तरदायित्व से वंचित करना वंश के लिए कलंक है। चाहे वह शरीर से उस जीवन के लिए असमर्थ है, चाहे मन से अनुपयुक्त, परन्तु विवाह के अतिरिक्त उसके जीने का अन्य साधन नहीं। उसकी इच्छा-अनिच्छा, स्वीकृति, योग्यता-अयोग्यता की न कभी किसी ने चिन्ता की

नोट

और न करने की आवश्यकता का अनुभव किया। यदि कन्या कुरूप होने के कारण विवाह की हाट मे रखने योग्य नहीं है तो उसके स्थान पर दूसरी रूपवती को दिखाकर, रोगिणी है तो उस रोग को छिपाकर; सारांश यह है कि लालच से, छल से, झूठ से या अच्छे-बुरे किसी भी उपाय से उसके लिए पत्नीत्व का प्रबन्ध करना ही पड़ता है। कारण, वही एक उसके भरण-पोषण का साधन है। यह सत्य है कि विवाह-जैसे उत्तरदायित्व के लिए समाज पुरुषों की भी योग्यता-अयोग्यता की चिन्ता नहीं करता, परन्तु उसके लिए यह बन्धन विनोद का साधन है, जीविका का नहीं। अत:, वे एक प्रकार से स्वच्छन्द हैं। प्राचीनता की दुहाई देनेवाले कुलों में बिना देखे-सुने जिस प्रकार उसका क्रय-विक्रय हो जाता है, वह तो लज्जा का विषय है ही; परन्तु नवीनता के पूजकों में भी विवाह-योग्य कन्या को बिकने के लिए खड़े हुए पशु की तरह देखना कुछ गर्व की वस्तु नहीं।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन

1. ✓ 2. X 3. X 4. ✓

21.7 संदर्भ पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना*– डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती*– प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–22: उपसर्ग

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

22.1 उपसर्ग

22.2 शब्दकोश

22.3 अभ्यास-प्रश्न

22.4 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- उपसर्ग के योग से शब्द रचना में होने वाले परिवर्तन को समझने में।

प्रस्तावना

'उपसर्ग' उस शब्दांश या अव्यय को कहते हैं, जो किसी शब्द के पहले आकर उसका विशेष अर्थ प्रकट करता है। यह दो शब्दों (उप-सर्ग) के योग से बनता है। 'उप' का अर्थ 'समीप', 'निकट', या 'पास' में' है। 'सर्ग' का अर्थ है सृष्टि करना। 'उपसर्ग' का अर्थ है पास में बैठकर दूसरा नया अर्थवाला शब्द बनाना। 'हार' के पहले 'प्र' उपसर्ग लगा दिया गया, तो एक नया शब्द 'प्रहार' बन गया, जिसका नया अर्थ हुआ 'मरना'। उपसर्गों का स्वतन्त्र अस्तित्व न होते हुए भी वे अन्य शब्दों के साथ मिलकर उनके एक विशेष अर्थ का बोध कराते हैं। उपसर्ग शब्द के पहले आते हैं। जैसे–'अन' उपसर्ग 'बन' शब्द के पहले रख देने से एक शब्द 'अनबन' बनता है, जिसका विशेष अर्थ 'मनमुटाव' है। कुछ उपसर्गों के योग से शब्दों के मूल अर्थ में परिवर्तन नहीं होता, बल्कि तेजी आती है। जैसे–'भ्रमण' शब्द के पहले 'परि' उपसर्ग लगाने से अर्थ में अन्तर न होकर तेजी आयी। कभी-कभी उपसर्गों के प्रयोग से शब्द का बिलकुल उलटा अर्थ निकलता है। उपसर्गों के प्रयोग से शब्दों की तीन स्थितियाँ होती हैं–

(1) शब्द के अर्थ में एक नई विशेषता आती है; (2) शब्द के अर्थ में प्रतिकूलता उत्पन्न होती है, (3) शब्द के अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। यहाँ 'उपसर्ग' ओर 'शब्द' का अन्तर समझ लेना चाहिए। शब्द अक्षरों का एक समूह है, जो अपने में स्वतंत्र है, अपना अर्थ रखता है और वाक्यों में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होता है। लेकिन, उपसर्ग अक्षरों का समूह होते हुए भी स्वतंत्र नहीं है और न स्वतंत्ररूप से उसका प्रयोग ही होता है। जब तक किसी शब्द के साथ उपसर्ग की संगति नहीं बैठती, तब तक उपसर्ग अर्थवान् नहीं होता।

संस्कृत में शब्दों के पहले लगने वाले कुछ निश्चित शब्दांशों को ही उपसर्ग कहते हैं और शेष को अव्यय। हिंदी में इस तरह का कोई अन्तर नहीं है। हिंदी भाषा में 'उपसर्ग' की योजना व्यापक अर्थ में हुई है।

22.1 उपसर्ग

नोट

जो शब्दांश या अव्यय किसी शब्द के पूर्व जोड़ा जाता है, उसे उपसर्ग कहते हैं। 'हार' शब्द के साथ उपसर्ग से कई शब्द बन जाते हैं। जैसे–विहार, प्रहार, संहार, आहार, उपसंहार आदि। उपसर्गों की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:

(*i*) ये स्वतंत्र रूप में नहीं आते।

(*ii*) ये न अर्थवान् होते हैं और न स्वतंत्र।

(*iii*) शब्दों के पूर्व में जुड़ कर ही ये अर्थवान् बनते हैं।

(*iv*) ये शब्द के अर्थ में कभी नयी विशेषता, कभी थोड़ा अन्तर और कभी प्रतिकूलता लाते हैं।

हिन्दी में तीन प्रकार के उपसर्ग प्रचलित हैं: संस्कृत, हिन्दी और उर्दू। संस्कृत के उपसर्ग तत्सम शब्दों के साथ, हिन्दी के उपसर्ग तद्भव शब्दों के साथ और उर्दू के उपसर्ग उर्दू शब्दों के साथ तथा थोड़ा–बहुत शब्दों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं।

संस्कृत उपसर्ग

1. **आ–**(सीमा, ग्रहण, विरोध, कभी, ओर, विपरीत सहित आदि) आजन्म आमरण, आचरण, आयुक्त आमुख, आदान, आरम्भ, आकार, आरोहण, आकर्षण, आक्रमण, आकाश, आबालवृद्ध आदि।
2. **अधि–**(श्रेष्ठ, ऊपर, समीप आदि) अधिकता, अधिकार, अधिराज, अधिकरण, अधिपति, अधिनियम, आध्यात्म, अधीक्षक, अध्यक्ष।
3. **अति** (अधिक, ऊपर, उसपार आदि)–अतिरिक्त, अतिशय, आत्मिक, अतिव्याप्ति, अत्यन्त, अतिक्रमण, अत्याचार अतिसंघ, अतिचार।
4. **अप–**(लघुता, हीनता, अभाव, विरोध आदि) अपमान, अपवाद, अपयश, अपशब्द, अपराध, अपकर्म, अपहरण, अपकीर्ति।
5. **अनु–**(क्रम, पीछे, समान आदि) अनुज, अनुचर, अनुताप, अनुरूप, अनुक्रम, अनुगमन, अनुमान, अनुग्रह, अनुस्वार, अनुशासन, अनुसंधान आदि।
6. **अभि–**(समीप, अधिक, जोर, इच्छा) अभिप्राय, अभ्यास, अभियोग, अभियान, अभियन्ता, अभिनव, अभिसार, अभिमुख, अभिमत, अभिमान आदि।
7. **अव–**(हीनता, पतन, अनादर, विशेष) अवसान, अवज्ञा, अवरोहण, अवक्षेप अवशेष, अवगुण, अवनति, अवतार, अवगाहन, अवगत, अवस्था आदि।
8. **उप–**(समीप, लघु, सहायक, हीन, गौण आदि) उपवन, उपग्रह उपकार उपदेश, उपनाम उपस्थित, उपायुक्त, उपभोग, उपवाक्य, उपवेद, उपभेद आदि।
9. **उत्–**(ऊपर, उत्कर्ष आदि)–उद्गम, उत्पादन, उत्पन्न, उद्गार, उत्तृप्त, उद्देश्य, उत्पात, उत्कर्ष, उद्यम, उल्लेख, उद्भव, उदाहरण आदि।
10. **कु–**(बुरा, हीन, नीचे आदि) कुकर्म, कुमार्ग, कुपुत्र, कुदृष्टि, कुख्यात, कुपाय, कुरूप, कुसंस्कार, कुयोग आदि।
11. **दुर-दुस्–**(कठिन, हीन, बुरा, दुष्ट आदि)–दुलर्भ, दुर्दशा, दुर्गुण, दुराचार, दुष्कर्म, दुस्साहस, दुर्बुद्धि, दुर्जय, दुर्गम, दुर्जन आदि।

नोट

12. **नि–**(भीतर, नीचे, बाहर, बहुत, निषेध)–नियोग, निकाय, निबन्ध, निरोध, निपात, निवारण, निमग्न, निकृष्ट निदर्शन, नियुक्त आदि।
13. **निर-निस–**(निषेध, रहित, बाहर)–निर्भय, निर्दोष, निर्धन, निर्वात, निर्वाह, निर्जीव, निर्लेप, निर्गन्ध, निराकार।
14. **परा–**(नाश, अनादर, विपरीत)–पराजय, पराभव, परामर्श, परास्त, परावर्तन, पराक्रम आदि।
15. **परि–**(चारों ओर, पूर्ण, आस-पास, अतिशय, त्याग) परिधि, परिजन, परिपूर्ण, परिचय, परिधान, परितोष, परिहार, परिणाम।
16. **प्र–**(अधिक, ऊपर, गति, यश, उत्पत्ति) प्रबल, प्रणाम, प्रचार, प्रलय, प्रस्थान, प्रभु, प्रयोग, प्रताप, प्रकाश, प्रसिद्ध, प्रसार, प्रकार आदि।
17. **प्रति–**(प्रत्येक, विशेष, बराबरी, परिवर्तन आदि) प्रतिदिन, प्रतिध्वनि, प्रतिकूल प्रतिनिधि, प्रत्युपकार, प्रत्युत्तर, प्रतिशब्द प्रतिवाद, प्रतिकार।
18. **वि–**(भिन्न, हीन, विशेष, असमान) वियोग, विदेश, विकार, विशेष विज्ञान, विवाद, विनय, विजय, विमुख, विराम, विकास, विभाग।
19. **सम्–**(पूर्ण, सहित, उत्तम, संतोष, सम्बन्ध, संयोग)–सम्पूर्ण, सम्मुख, सन्यास, सरंक्षण, सम्प्रदान, समकक्ष, समकोण, संग्राम।
20. **सु–**(उत्तम, श्रेष्ठ, सुगम) सुजन, सुकर्म सुभग, सुलभ, सुस्पष्ट, सुयश, सुकृत, सुसज्जित, सुभाषित, सूक्ति।

टास्क 'कु' तथा 'अभि' उपसर्ग से कुछ नए शब्द बनाइए।

उपसर्गवत् प्रयुक्त शब्दांश

संस्कृत में कुछ ऐसे शब्दांश हैं, जो उपसर्ग की तरह शब्दों के आगे जोड़े जाते हैं–जैसे:

21. **अ-अन्–**(निषेध, अभाव आदि)–अधर्म, अज्ञान, अव्यय, अकाम, अगम, अलौकिक, अनन्त, अनादि, अनिष्ट।
22. **अधस्–**(नीचे) अधोगति, अधोमुख, अधोमार्ग, अधोपतन आदि।
23. **अन्तर–**(भीतर)–अन्त:कण, अन्त:पुर, अन्तर्धान, अन्तर्दाह, अर्न्तमुख, अन्तर्गत, अन्तर्दशा आदि।
24. **अमा–**(पास) अमावस्या, अमान्य।
25. **आविर–**(प्रकट, बाहर)–आविर्भाव, अविर्भूत, आविष्कृत, आविष्कार, आविष्करण आदि।
25. **आविर–**(प्रकट, बाहर)–आविर्भाव, अविर्भूत, आविष्कृत, आविष्कार, आविष्करण आदि।
26. **अलम्–**(सुन्दर)–अलंकार, अलंकृत, अलंकृति, अलंबुष, अलंबुषा।
27. **इति–**(ऐसा)–इतिहास, इतिवृत्त, इतिश्रुत, इतिपूर्व, इतिश्री, इतिकर्त्तव्यता।
28. **का-कद्–**(बुरा)–कापुरुष, कदाचार, कदन्न, कदर्थ, कदर्य, कदभ्यास।
29. **चिर–**(बहुत, पुराना)–चिरकाल, चिरायु, चिरन्तन, चिरंजीवी, चिरस्थायी।
30. **तिरस्–**(तुच्छ)–तिरस्कर, तिरोधान, तिरोभाव, तिरोहित, तिरोगत आदि।
31. **न–**(अभाव)–नग्न, नेति, नास्तिक, नक्षत्र, नपुसंक, नयन आदि।

नोट

32. **प्राक्**–(पहले का)–प्राक्कथन, प्रात्कव, प्राक्कर्म, प्राक्कलन, प्राञ्चल, प्रागैतिहासिक, आदि।
33. **पुनर**–(फिर)–पुनर्जन्म, पुनर्विवाह, पुनर्मिलन, पुनर्गहन, पुनर्धनी।
34. **पुरस्**–(सामने, आगे)–पुरस्कार, पुरोहित, पुरोगामी, पुरश्चरण, पुरस्कृत।
35. **पुरा**–(पहले)–पुरातन, पुराकृत, पुरातत्व, पुरावृत्त, पुराकल्प, पुरावृत्ति।
36. **प्रातः**–(सबेरे)–प्रात:काल, प्रात:स्मरण, प्रात:स्नान, प्रात:भ्रमण आदि।
37. **प्रादुर**–(प्रगट)–प्रादुर्भाव, प्रादुर्भूत, प्रादुराक्षि।
38. **बहिर्**–(बाहर)–बहिर्गत, बहिर्मुख, बहिर्जगत, बहिद्वारि, बहिरंग आदि।
39. **सत्**–(अच्छा)–सत्कर्म, सत्पात्र, सत्कार, सदाचार, सज्जन, सद्गुरु आदि।
40. **स**–(सहित)–सफल, सजीव, सगोत्र, सानन्द, सावधान, सचेत, सकाम।
41. **सह**–(साथ)–सहचर, सहोदर, सहयोग, सहभोज, सहकर्मी, सहानुभूति।
42. **स्व**–(अपना)–स्वतंत्र, स्वजतन, स्वभाव, स्वागत, स्वगत, स्वरूप।
43. **स्वयं**–(अपने-आप)–स्वयंवर, स्वयंसेवक, स्वयसिद्ध, स्वयंभू, स्वयंपाकी।

क्या आप जानते हैं उपसर्ग किसी शब्द में जुड़कर कभी सकारात्मक अर्थ देते हैं तो कभी नाकारात्मक 'यथा-सुयश/अपमान' आदि।

'उपसर्गवत् प्रयुक्त शब्द'

44. **आत्म**–(आत्मत्याग, आत्मसंयम, आत्मद्रोह, आत्मरक्षा, आत्मप्रशंसा, आत्मशुद्धि, आत्मसेवा, आत्म विश्वास, आत्मनिर्भरता।
45. **अर्थ**–अर्थहीन, अर्थशास्त्र अर्थनीति, अर्थज्ञान, अर्थलोभ, अर्थव्यय आदि।
46. **आचार**–आचारनिष्ठा, आचारशील, आचारसेवी, आचारभ्रष्ट, आचारहीन, आचारविरुद्ध आदि।
47. **कर्म**–कर्मकाण्ड, कर्मयोग, कर्मकार, कर्मवीर, कर्मफल, कर्मचारी, कर्मशील।
48. **धर्म**–धर्मवीर, धर्मशील, धर्मभीरू, धर्मबुद्धि, धर्मध्वजा, धर्मराज।
49. **पथ**–पथभ्रष्ट, पथचारी, पथहारी, प्रथप्रदर्शक, पथहीन, पथधर्म।
50. **पुरुष**–पुरुषोत्तम, पुरुषेन्द्र, पुरुषरत्न, पुरुषभणि, पुरुषराज, पुरुषधर्म।
51. **बल**–बलधाम, बलवान, बलशाली, बलप्रयोग, बलपूर्वक, बलस्थिति।
52. **राज**–राजदूत, राजपथ, राजनीति, राजद्रोह, राजभोग, राजस्व आदि।
53. **लोक**–लोकसभा, लोकमत, लोकनिन्दा, लोकापवाद, लोकनाथ, लोककर्म।
54. **वन**–वनचर, वनमानुष, वनमाली, वनपशु, वनविहग, वनपाल, वनभोज, वनराज, वनवास, वनकुसुम आदि।
55. **विश्व**–विश्वकोष, विश्वव्यापी, विश्वविद्यालय, विश्वकर्मा, विश्वनाथ विश्वंभर, विश्वकर्मा, विश्वशर्मा।
56. **शक्ति**–शक्तिनाथ, शक्तिपूजक, शक्तिनिन्दक, शक्तिसेवक, शक्तिहीन, शक्तिशाली, शक्तिपूर्ण, शक्तिपूर्वक आदि।
57. **सत्य**–सत्यनारायण, सत्याग्रह, सत्यवादी, सत्यरक्षक, सत्यव्रती, सत्यहीन, सत्यकर्म, सत्यकाम, सत्यवक्ता

नोट

आदि।

58. **सहज**–सहजबुद्धि, सहजमित्र, सहजशत्रु, सहजपथ, सहजधारी, सहजकाम।
59. **सर्व**–सर्वथा, सर्वदा, सर्वनाम, सर्वनाश, सर्वभक्षी, सर्वग्रास, सर्वत्र आदि।
60. **षट्**–षट्चक्र, षट्ताल, षठ्पद, षट्कोण, षट्कर्म, षट्मुख आदि।
61. **षोडश**–षोडशकला, षोडशगण, षोडशदान, षोडशपूजन, षोडशोपचार।
62. **हत**–हतबुद्धि, हतभाग्य, हतश्री, हतवीर्य, हतप्रभ, हतबल आदि।
63. **हिम**–हिमालय, हिमांशु, हिमाद्रि, हिमपात, हिमरश्मि, हिमकण आदि।

'हिन्दी उपसर्ग'

64. **अ**–(अभाव, निषेध)–अजान, अमोल, अपढ़ अलग, अथाह, अचेत, अबूझ, अबेर आदि।
65. **अन**–अनजान, अनपढ़, अनबन, अनगढ़, अनमोल, अनरूप।
66. **औ**–(हीनता, निषेध)–औघट, औघड़, औचक, औचट, औक्षक, औढ़ब, औगुन, औढर, औजड़ औरस।
67. **अध**–(आधा)–अधमरा, अधजला, अधपका, अधभरा, अधकट्टा, अधपचा, अधमुआ, अधिखला।
68. **उन–(एक कम)**–उन्नीस, उनतीस, उन्तालीस, उन्नचास, उनसठ, उन्नहत्तर, उन्नासी आदि।
69. **कु**–(बुरा)–कुख्याल कुदिन, कुनेम, कुटेव, कुठौर, कुरोग, कुठाँव, कुपथ, कुपढ़, कुढंग, कुखेत आदि।
70. **चौ**–(चार) चौराहा, चौपाई, चौमासा, चौतरफा, चौहाटा, चौकोणा, चौरूपा।
71. **ति**–(तीन)–तिकोन, तिपाही, तिमाही।
72. **दु**–(बुरा, हीन, कठिन)–दुकाल, दुराज, दुमुँहा, दुबला, दुभाषिया, दुसूती, दुश्चरित्र।
73. **नि**–(अभाव, निषेध)–निडर, निठुर, निहत्था, निखट्टू, निठल्ला, निकम्मा, निगोड़ा, निठौर, निधड़क।
74. **बिन**–(निषेध)–बिनचाहा, बिनदेखा, बिनमाँगा, बिनब्याहा, बिनबोया।
75. **पर**–(दूसरा, बाद का)–परलोक, परोपकार, परहित, परजनित, परस्पर।
76. **भर**–(पूरा, ठीक)-भरमार, भरपूर, भरसक, भरपेट, भररात, भरमुँह, भरपाई, भरमहीन, भरदिन आदि।)
77. **स**–(सहित)–सपूत, सलोना, सरस, सगुण, सपरिवार, सजल, सचेत।
78. **सु**–(अच्छा)–सुडौल, सुजान, सुकाज, सुकाल, सुदिन, सुघड़ी।

"उर्दू उपसर्ग"

79. **अल**–(निश्चित)–अलबत्ता, अलगरज, अलविदा, अलहलाल, अलमस्त, अलबेला।
80. **ऐन**–(ठीक, निश्चित)–ऐनवक्त, ऐनमौका, ऐनजवानी।
81. **कम**–(थोड़ा, हीन)–कमजोर, कमअक्ल, कमखर्च, कमउम्र, कमबख्त, कमसिन, कमकीमत।
82. **खुश**–(श्रेष्ठ)–खुशहाल, खुशदिल, खुशबू, खुशखबरी, खुशकिस्मत, खुशनसीब।
83. **गैर**–(भिन्न)–गैरसरकारी, गैर-कानूनी, गैर-हाजिर, गैर-मामूली, गैर हिसाब गैर खिलाफ, गैरमौजूदगी, गैरमजदूरी।
84. **दर**–(में)–दरअसल, दरकार, दरकीमत, दरमियान, दरबार, दरहिसाब।
85. **ना**–(अभाव)–नाराज, नादान, नाहक, नालायक, नाचीज, नासमझ, नापसन्द, नाकरा, नाबालिग, नामुमकीन, नाउम्मीद।

नोट

नोट्स उर्दू के जो शब्द हिन्दी में सहज रूप में प्रचलित हैं किन्तु उपसर्ग के साथ उनका अर्थ बदलते ही हिन्दी में उनका प्रचलन सीमित हो जाता है जैसे–इज़्ज़त उपसर्ग के साथ 'बाइज्जत'।

86. **पेश–**(में)–पेशखिदमत, पेशगी, पेशेवर।

87. **फिल–**(में)–फिलहाल।

88. **फी–**(प्रत्येक) फीआदमी, फीघर, फीमन।

89. **ब–**(अनुसार, में, ओर)–बदौलत, बनाम, बतौर, बदस्तूर, बजिन्स, बखूबी।

90. **बा–**(साथ)–बाअदब, बाकलम, बाकायदा, बाइज्जत, बाअक्ल।

91. **बे–**(बिना)–बेकार, बेखबर, बेखटक, बेधड़क, बेरोक, बेचारा।

92. **बर–**(ऊपर)–बरकरार, बरदाश्त, बरखास्त, बरतरफ, बरवक्त।

93. **बद–**(हीन)–बदनाम, बदहजमी, बदनीयत, बदसूरत, बदबू।

94. **बिला–**(बिना)–बिलाशक, बिलाउम्र, बिलाशर्त, बिलाहुक्म।

95. **ला–**(अभाव)–लाचार, लापता, लाजवाब, लावारिस, लापरवाह।

96. **सर–**(प्रधान)–सरकार, सरदार, सरताज, सरहद, सरपंच, सरपरस्त।

97. **हम–**(साथ, समान)–हमसफर, हमवतन, हमदर्द, हमदम, हमजोली, हमसाया, हमपेशा, हमउम्र, हमराज, हमशक्ल, हमजबान।

98. **हर–**(प्रत्येक)–हरदम, हरदिल, हरघड़ी, हरसाल, हररोज, हरचीज, हरतरह, हरकाम, हरवक्त।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए उपसर्ग किस भाषा से संबंधित हैं– उन्हें छाँटकर रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

(1) कुमार्ग, (2) अधि (3) चीफ एक्जिक्यूटिव, (4)कम फहम, (5) अधकचरा, (6) षट्ऋतु, (7) गैरमुमकिन (8) सबऑर्डिन्टी

1. (1), (5) .....
2. (3), (8) .....
3. (2), (6) .....
4. (4), (7) .....

अंग्रेजी उपसर्ग

99. **सब–**(अधीन, नीचे)–सब-जज, सब-कमेटी, सब-इसंपेक्टर, सबडिवीजन।

100. **डिप्टी–**(सहायक)–डिप्टी-रजिस्ट्रार, डिप्टी-डायरेक्टर, डिप्टी इंसपेक्टर, डिप्टी-मिनिस्टर।

101. **वायस–**(उप-सहायक)–वायस-प्रिंसिपल, वायस-प्रेसीडेण्ट, वायस चांसलर।

102. **जनरल–**(प्रधान)–जनरल-मैनेजर, जनरल-सेक्रेटरी।

103. **चीफ–**(मुख्य)–चीफ मिनिस्टर, चीफ-सेक्रेटरी, चीफ इंजीनियर।

नोट

22.2 शब्दकोश

1. **आबालवृद्ध–** बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब
2. **निर्वात–** वायु रहित, वैक्यूम, शांत,
3. **बजिंस–** हूबहू, ज्यों का त्यों
4. **सरपरस्त–** अभिभावक

22.3 अभ्यास-प्रश्न

1. उपसर्ग किसे कहते हैं? उपसर्ग की विशेषताएँ बताइए।
2. हिन्दी में कितने प्रकार के उपसर्ग प्रचलित हैं? उनके अलग-अलग उदाहरण दीजिए।
3. अंग्रेजी तथा उर्दू उपसर्गों के कुछ उदाहरण दीजिए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन

1. हिन्दी 2. अंग्रेजी 3. संस्कृत 4. उर्दू

22.4 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना–* डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती–* प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–23: प्रत्यय

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

23.1 प्रत्यय के योग

23.2 शब्दकोश

23.3 अभ्यास-प्रश्न

23.4 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे–

- प्रत्यय के योग से शब्द रचना को समझने में।

प्रस्तावना

उपसर्ग के योग से न केवल शब्द का निर्माण होता है अपितु अर्थ में भी विकार उत्पन्न होता है। शब्द रचना के प्रयोजन के संदर्भ में यहाँ प्रत्यय के विभिन्न स्वरूपों का विवेचन प्रस्तुत है।

23.1 प्रत्यय के योग

जो शब्दांश या अव्यय किसी शब्द के अन्त में जोड़ा जाता है, वह प्रत्यय कहलाता है।

जैसे-पढ़ना + आई = पढ़ाई, गिनता + ती = गिनती।

प्रत्यय की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:

1. ये स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त नहीं होते।
2. ये स्वयं अर्थवान नहीं होते।
3. इसके प्रयोग से भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द बनते हैं।

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं–(*i*) अचरम प्रत्यय, (*ii*) चरम प्रत्यय।

1. **अचरम प्रत्यय**–इसके दो उपभेद होते हैं–(क) कृत प्रत्यय; (ख) तद्धित प्रत्यय।

   (क) **कृत प्रत्यय**–ये प्रत्यय केवल धातु के अंत में लगते हैं। कृत प्रत्यय के संयोग से बने शब्द कृदन्त कहलाते हैं।

'कृत प्रत्यय'

कृत प्रत्यय के मेल से बनने वाले शब्द संज्ञा या विशेषण होते हैं। संज्ञा बनाने वाले कृत् प्रत्ययों के योग से चार प्रकार की संज्ञाएँ बनती हैं।

नोट

(1) "भाववाचक संज्ञाएँ

(क) निम्न संस्कृत प्रत्ययों के योग से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं, वे हैं, अ, आ, अव, इय, ति, व, य आदि।

1. **अ**–पाक, काम, त्याग, शोक, लाभ, लाख आदि।
2. **आ**–कृपा, इच्छा, सेवा, शिक्षा, व्यथा, नेवा, लेखा।
3. **अन्**–गमन, कथन, ज्ञान, पावन, ध्यान, पावक, म्यान।
4. **इत्र**–चरित्र, पवित्र।
5. **ति**–शक्ति, भक्ति, श्रुति, दृष्टि, मुक्ति, सक्ति।
6. **न**–यज्ञ, यत्न, रत्न, भग्न, मग्न।

(ख) जिन हिन्दी प्रत्ययों से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं वे हैं–अ, आ, आई, आन, आप, आपा, आवा, अन्त, आस, ई, औनी, त, ती, म, ना, नी, र, रा, वट, हट आदि।

1. **अ**–चाल, मार, कूद, मांग, खेल।
2. **आ**–घेरा, फेरा, झगड़ा, रगड़ा, छुट।
3. **आई**–पढ़ाई, लड़ाई, लिखाई, कमाई, खुदाई, चढ़ाई।
4. **आन**–थकान, रुझान, चढ़ान, ढलान, उठान, उद्यान, मिलान, रिझान।
5. **आप**–मिलाप, विलाप।
6. **आपा**–बुढ़ापा, मुटापा।
7. **आव**–लगाव, कसाव, सुझाव, बहाव, छिड़काव।
8. **आस**–प्यास, विकास, हुलास, रोआस, विलास।
9. **आवा**–दिखावा, बुलावा, भुलावा, पहिरावा, पछतावा।
10. **अन्त**–रटन्त, गढ़न्त, लड़न्त, भिड़न्त।
11. **ई**–बोली, चोरी, जोड़ी, हँसी, घुड़की, घटी, धमकी।
12. **औनी**–पढ़ौनी, पिसौनी, कुटौनी, लिखौनी।
13. **त**–बचत, खपत, रंगत, लागत, रजत, पढ़त, लिखत।
14. **ती**–चढ़ती, घटती, गिनती, भरती, फबती, रटती, पढ़ती।
15. **न**–लेन, देन, चलन, बुहारन, खान, पान, वान।
16. **नी**–चटनी, कटनी, भरनी, मँगनी, रगड़नी, होनी।
17. **र**–ठोकर, नौकर, चोकर, जोकर, मोटर।
18. **रा**–बँटवारा, निपटारा, किनारा, संबारा, आबरा।
19. **वट**–मिलावट, सजावट, लिखावट, बनावट।
20. **हट**–चिल्लाहट, खुजलाहट, चिकनाहट, गड़गड़ाहट, गुर्राहट।

(2) "कर्तृवाचक संज्ञाएँ"

प्रत्यय के संयोग से बचने वाली जिन कृदन्त, संज्ञाओं से कर्त्ता का बोध होता है। उन्हें कर्तृवाचक संज्ञाएँ कहते हैं।

नोट

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **अ (अच्)**–भू-भव, सृ-सर्प।
2. **अक् (ण्वुल्)**–नृत्-नर्तक, पाठक, गायक, नायक, पाचक, पालक।
3. **अन्–(ल्युट्)**–गहन, रमण, साधन।
4. **उ**–मनु, बन्धु, सिन्धु।
5. **उ (उण्)**–तालु, साधु।
6. **उक् (उक्)**–कामुक, भावुक, भिक्षुक।
7. **ता**–(तण, तृच्), वक्ता, कर्त्ता, दता, रचयिता।

(ख) हिन्दी प्रत्ययः आ, इया, का, र, री, वाला।

1. **आ**–भूँजा, मूँगा, गुँगा।
2. **इया**–धुनिया, जड़िया, मढ़िया, पहिया, चिड़िया।
3. **का**–उचक्का।
4. **र**–झालर।
5. **री**–कटारी, महतारी, रखवारी, वनवारी, पनवारी।
6. **वाला**–बेचने वाला, लिखनेवाला, चलनेवाला, खिलौने वाला।

(3) "कर्मवाचक संज्ञाएँ"

प्रत्यय के संयोग से बनने वाली जिन कृदन्त संज्ञाओं से कर्म का बोध होता है। उन्हें कर्मचावचक संज्ञाएँ कहते हैं।

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **अ (घञ्, अप्)**–हन्-घात।
2. **य (क्वप्)**–कृ-कृत्य, मृत्य, शिष्य।
3. **मन्–(मनिन)**–कृ-कर्म, धृ-धर्म।

(ख) हिन्दी प्रत्यय

1. **ना**–ओढ़-ओढ़ना, खा-खाना, गा-गाना।
2. **नी**–सूँघ-सुँघनी, चाट-चटनी, कर-करनी, भर-भरनी।
3. **औना**–बिछाना-बिछौना, खेलना-खिलौना।

(4) "करणवाचक संज्ञाएँ"

प्रत्यय के मेल से बनने वाली जिन कृदन्त, संज्ञाओं के कारण अर्थात् क्रिया के साधन का बोध होता है। उन्हें करणवाचक कृदन्त कहते हैं।

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **अ (घञ्)**–पद्-पाद।
2. **अव् (मानिन्)**–कृ-करण, चर-चरण, घ्रा-घ्राण, नी-नयन।
3. **इत्र–(इत्र)**–खन्-खनित्र।
4. **त्र (त्र)**–अस्-अस्त्र, शस्-शस्त्र, पत्-पत्र।

नोट

(ख) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आ–**झूल-झूला, ठेल-ठेला, डोल-डोला।
2. **आनी–**मथ-मथानी।
3. **ई–**रेत-रेती।
4. **ऊ–**झाड़-झाड़ू।
5. **औटा–**मुख-मुखौटा, अतर-अतरौटा, सिल-सिलौटा, पत्थर-पथरौटा।
6. **औटी–**कस-कसौटी, कज-कजरौटी, लंग-लंगौटी, बाप-बपौती।
7. **न-झाड़-**झाड़न, बेल-बेलन, ढक-ढक्कन, लोट-लोटन।
8. **ना–**झार-झारना, ढाप-ढपना, छान-छानना।
9. **नी–**कातर-कतरनी, घिर-घिरनी, चाल-चलनी, घोट-घोटनी, धौंक-धौंकनी।

"विशेषण बनाने वाले प्रत्यय"

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **आलु (आलुच्)–**दय्-दयालु, श्रद्ध-श्रद्धालु, कृप-कृपालु।
2. **वर (क्वरप्, वरच्)–**स्या-स्यावर, नश-नश्वर।

(ख) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आऊ–**टिकना-टिकाऊ, बिकना-बिकाऊ, कमाना-कमाऊ, जड़ना-जड़ाऊ, खाऊ।
2. **आक–**तैरना-तैराक, दौड़ना-दौड़ाक।
3. **आका–**लड़ना-लड़का, फटना-फटाका।
4. **आकू–**लड़ाना-लड़ाकू, उड़ना-उड़ाकू।
5. **आड़ी–**खेलना-खिलाड़ी।
6. **आलू–**झगड़ा-झगड़ालू, चलना-चालू, ढलना-ढालू।
7. **इया–**घटना-घटिया, बढ़ना-बढ़िया, चखना-चखिया।
8. **एरा–**लूटना-लुटेरा, बसना-बसेरा।
9. **ऐत–**लड़का-लड़ैत, चढ़ना-चढ़ैत, ढलना-ढलैत, फेंकना-फेंकैत, डकैत।
10. **ओड़–**हँसना-हँसोड़, भगोड़।
11. **क–**मारक, घातक, पालक।
12. **कक्कड़–**पियक्कड़, भुलक्कड़, कुदक्कड़, बुझक्कड़, कथक्कड़।
13. **टा–**चुराना-चोट्टा।
14. **नी–**रानी-रोनी।
15. **लू–**उठना-उठल्लू, निठल्ला-निठल्लू।
16. **वैया–**गवैया, खवैया, रखवैया, चरवैया, नचवैया, खिलवैया।
17. **हार–**होना-होनहार, सिरजनहार, पालनहार।
18. **वन–**सुहावन, लुभावन, पठावन, पकावन, लिखावन।

कृतप्रत्ययों के योग से शुद्ध संज्ञा और विशेषण के अलावा क्रिया द्योतक भी बनते हैं। ये कृदन्त होते हैं और क्रिया का भाव बतलाते हुए किसी संज्ञा की विशेषता प्रकट करते हैं अतः क्रियाद्योत कृदन्त विशेषण होते हैं। इसके दो भेद हैं–(1). वर्तमानकालिक; (2). भूतकालिक।

नोट

"वर्तमानकालिक क्रिया द्योतक"

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **आन, मान (शानच्)**–विद्-विद्यमान, वृत-वर्तमान, वृध्-वर्धमान, दीप्-देदीप्यमान।
2. **अन् (शतृ)**–विद्-विद्वान।

(ख) हिन्दी प्रत्ययः

1. **ता**–पढ़-पढ़ता, खेल-खेलता, उड़-उड़ता, चढ़-चढ़ता, गिर-गिरता।
2. ऐसे शब्दों के साथ 'हुआ' या 'हुई' भी जोड़ा जाता है; जैसे–पढ़ता-पढ़ता हुआ, गाता हुआ, चढ़ता हुआ, चढ़ती हुई, ढलती हुई आदि।

भूतकालिक क्रिया द्योतक

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **त (क्त)**–पुर-पूर्ण, रुज्-रुग्ण, स्था-स्थित, कल्प्-कल्पित, जीव-जीवित, श्रृ-श्रुत, पुष-पुष्ट, क्षि-क्षीण आदि।

(ख) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आ**–पढ़-पढ़ा, खेल-खेला, चल-चला, हट-हटा, छिप-छिपा, सो-सोता, रुक-रुका।
2. **या**–गा-गाया, खा-खाया, पाया, धोया, पीया, जिया आदि।

"उर्दू कृदन्त (फारसी)"

1. **अ**–आमद-आमदा।
2. **आ (हा)**–मुर्दा-मुर्दा।
3. **इश**–कोश-कोशिश, साज-साजिश, रंज-रंजिश।
4. **इन्दा**–जी-जिन्दा, चर-चरिन्दा, बास-बाशिन्दा, रि-रिंदा।
5. **ई**–आमदन-आमदनी, रफ्तन-रफ्तनी।
6. **आँ**–पुस-पूसाँ, चस्प-चस्पाँ।

"तद्धित प्रत्यय"

तद्धित प्रत्यय बहुधा संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम के आगे लगते हैं। तद्धितान्त शब्द अनेक प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य हैं–1. भाववाचक, 2. कर्तृवाचक, 3. ऊनवाचक, 4. सम्बन्ध वाचक, 5. अपत्यवाचक, 6. अव्ययवाचक।

1. भाववाचक

(क) संस्कृत प्रत्ययः (संज्ञा से संज्ञा बनाने वाले)

1. **अ**–(अण्)–मुनि-मौन, सुहृद-सौहार्द्र, कुतक-कौतुक।
2. **ता**–सरल-सरलता, सम-समता, मित्र-मित्रता।
3. **त्व-प्रभु**–प्रभुत्व, गुरु-गुरुत्व, साधु-साधुत्व।
4. **य**–सखा-साख्य, मधुर-माधुर्य, चतुर-चातुर्य, प्रचुर-प्राचुर्य।

(ख) संस्कृत प्रत्ययः (विशेषण से संज्ञा बनाने वाले)

1. **अ**–(अण्)–गुरु-गौरव, लघु-लाघव।
2. **इमा**–अरुण–अरुणिमा, काल-कालिमा, गुरु-गरिमा।
3. **ता**–महत्-महत्ता, नम्र-नम्रता, शिष्ट-शिष्टता।
4. **त्व**–घु-लघुत्व, एक-एकत्व, मूर्ख-मूर्खत्व।

नोट

(ग) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आई–**बुरा-बुराई, चतुर-चतुराई, भला-भलाई।
2. **आना–**ठीक-ठिकाना, राजपूत-राजपूताना, हिन्दू-हिन्दुआना।
3. **पा–**बूढ़ा-बुढ़ापा, मोटा-मोटापा, पूजा-पूजापा, अपना-अपनापा।
4. **त–**रंग-रंगत, संग-संगत, मेल-मिल्लत, चाह-चाहत।
5. **नी–**चाँद-चाँदनी, पाँच-पैजनी।
6. **पन–**लड़का-लड़कपन, बच्चा-बचपन, पागल-पागलपन।
7. **वट**–लेख-लिखावट, बुनाई-बुनावट।
8. **स–**मीठा-मिठास, खट्टा-खटास, तीता-तितास।
9. **हट–**कड़वा-कड़वाहट, रुखड़ा-रुखड़ाहट, चिकनाहट।

"कर्तृवाचक"

कर्तृवाचक कृदन्त से कर्त्ता का बोध होता है, किन्तु कर्तृवाचक तद्धित से कर्त्ता का बोध न होकर वस्तु या पदार्थ का अधिकार युक्त भाव प्रकट होता है।

(क) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आर–**सोना-सुनार, लुहार, गँवार, चमार, कुम्हार।
2. **अरी–**जुआ-जुआरी, भिखारी।
3. **इया–**मखनिया, अढ़तिया, नोनिया।
4. **ई–**तेली, हलवाई पहाड़ी, चोरी, बिहारी।
5. **उआ–**महुआ, गेरुवा, फगुआ।
6. **ऐत–**लठैत, डकैत, बनैत, कमनैत।
7. **एरा–**सपेरा, कसेरा, बटेरा।
8. **री–**पुजारी, जुआरी।
9. **वान–**गाड़ीवान, पहलवान, कोचवान, भगवान।
10. **वाल–**गयावाल, पालीवाल, अग्रवाल, पल्लीवाल।
11. **वाला–**टोपीवाला, दूधवाला, पानवाला, फेरीवाला, फूलवाला।
12. **हारा–**चूड़िहारा, पानिहारा, गोबरहारा, लकड़हारा, फगुहारा।

ऊनवाचक

1. **आ–**पिल्ला-पिलुआ, बबुआ।
2. **इया–**डिबिया, खटिया, लुटिया, कुतिया, बछिया, धुनिया।
3. **री–**कोठरी, छतरी, गठरी, खलरी।
4. **ड़ी–**पलंगड़ी, पंखुड़ी, टँगड़ी।
5. **ड़ा–**मुखड़ा, दुखड़ा, जोगड़ा।
6. **क–**ढोलक, धमक।
7. **ओली–**खटोली।
8. **ई–**नाली, रस्सी, डोरी, कटोरी।

"संबंधवाचक" **नोट**

1. **आल**–ससुराल, भुआल।
2. **औती**–बपौती, कठौती, मनौती, बुढ़ौती, कटौती।
3. **औटी**–चुनौटी, हथौटी, वनौटी, बटौती।
4. **जा**–भाई-भानजा।
5. **एल**–नकेल, फुलेल, बघेल।
6. **एरा**–ममेरा, चचेरा, फुफेरा।
7. **ठी**–अंगीठी।
8. **हर**–खंडहर, खेतिहर, छुटहर।

टास्क संबंधवाचक प्रत्यय 'आल' तथा 'औती' से नए शब्द बनाइए।

"अपत्यवाचक"

संस्कृत प्रत्ययः

1. **अ (अञ्)**–राघव, मानव, यादव।
2. **आयन्**–नारायण, वादरायण, गर्ग्यायण।
3. **इ**–दाशरथि, वाशिष्ठि, मारुति।
4. **य**–दैत्य, चाणक्य, मानक्य।
5. **ज्य**–राधेय, कौन्तेय।

"अव्ययवाचक"

1. **था**–यथा, सर्वथा, अन्यथा, वृथा।
2. **त्र**–यत्र, तत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, परत्र।
3. **शः**–कोटिशः, शल्शः, क्रमशः, प्रायशः, अल्पशः।
4. **एन**–येन, केन, सुखेन, प्रकारेण।
5. **तः**–विशेषतः प्रथमत्ः, प्रधानतः, वस्तुतः, यथार्थतः, फलतः, स्वतः।
6. **चित्**–कदाचित्, किंचित्, कयंचित्, कुत्रचित्, कर्हिचित्।
7. **दा**–सदा, एकदा, सर्वदा।
8. **धा**–एकधा, बहुधा, शतधा, द्विधा, विधा।

(ख) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आँ**–यहाँ, वहाँ, कहाँ, जहाँ, तहाँ।
2. **ओं**–दोनों, महीनों, घंटों, कोसों, क्यों।
3. **सों**–परसों, तरसों, नरसों।
4. **तक**–जबतक, कबतक, अबतक, तबतक, देरतक।
5. **भर**–दिनभर, रातभर, जन्मभर, पेटभर।
6. **यों**–ज्यों, त्यों, क्यों।
7. **तना**–इतना, जितना, कितना।

नोट

"गुणवाचक विशेषण"

(क) संस्कृत प्रत्ययः

1. **इक् (ठक्, टञ्)**–वैदिक, नागरिक, दैविक, भौतिक, रसायनिक, दैहिक।
2. **दत**–फलित, पुष्पित, शंकित, कंटकित, जीवित, मृत।
3. **इल**–जटिल, पंकिल, फेनिल, धूमिल, तन्द्रिल, बोझिल।
4. **इय**–राष्ट्रीय, यज्ञिय।
5. **ईय**–जलीय, वर्गीय, क्षेत्रीय, नारकीय।
6. **मय्**–जलमय, दयामय, कर्ममय, रन्ध्रमय।
7. **मत्, वत्**–श्रीमान, श्रीमती, रूपवान, रूपवती।
8. **य (यत्, य)**–तालव्य, दैन्य, प्राच्य, अन्त्य।
9. **र**–मुखर, मधुर, सिन्धुर, पाण्डुर।
10. **ल**–मांसल, शीतल, युगल, ऊर्मिल, छिद्रल।

(क) हिन्दी प्रत्ययः

1. **आ**–भूखा, मैला, ठंडा, प्यासा, कुबड़ा।
2. **आऊ**–उपजाऊ, बिकाऊ।
3. **ई**–रेशमी, देहाती, शहरी, बनारसी, सूती।
4. **ईला**–चमकीला, रसीला, नचीला, रंगीला, गठीला।
5. **इयल**–दढ़ियल, लठियल, कड़ियल, मुँछियल।
6. **इया**–पटनिया, कनौजिया, कलकत्तिया।
7. **उ**–कुचालु।
8. **ऊ**–पेटू, ढालू, बाजारू, खाऊ।
9. **ऐल**–खपड़ैल, इड़ैल, मूँछैल, गुबरैल।
10. **का**–माँ–मायका।
11. **ठा**–छः–छठा।
12. **ल**–पहल-पहला, पिछला, अगला, दुबला, पतला।
13. **वाँ**–पाँचवाँ, आठवाँ, सातवाँ, वानवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ।
14. **वी**–लखनऊ–लखनवी।
15. **वन्त**–धनवन्त, दयावन्त, श्रद्धावन्त, तृषावन्त, गुनन्त, भगवन्त।
16. **सा**–चाँद-सा, दूध-सा, काला-सा, गोरा-सा, पतला-सा, दुबला-सा।
17. **सरा**–दूसरा, तीसरा।
18. **हा**–भुतहा, कमहा, खजहा, तेलहा।
19. **हर**–धुतहर, धरहर, धनहर।
20. **हरा**–सुनहरा, एकहरा, दोहरा, तिहरा।
21. **हला**–रूपहला, सुनहला, नहला, दहला।

"उर्दू-तद्धित (फारसी)"

22. **आना**–दोस्ताना, दस्ताना, मस्ताना, फकीराना, शायराना, सालाना।
23. **आब**–गुलाब, जुलाब, गिलाब, किमखाब, खिजाब।
24. **आवर**–जोरावर, दिलावर, दस्तावर, कछावर।

नोट

25. **ई**–परेशानी, हैरानी, शैतानी, नादानी, तूफानी, बेईमानी।
26. **कार**–पेशकार, काश्तकार, दस्तकार, कलमकार, गुलकार।
27. **गर**–जादूगर, बाजीगर।
28. **गार**–रोजगार, यादगार, मद्दगार, गुनहगार, खिदमतगार।
29. **गी**–जिन्दगी, गन्दगी, पेशगी, मर्दानगी, बेपरदगी, नामजदगी।
30. **चा**–ईचा, बागीचा, संदूकचा, देगचा, डोलचा, खोमचा।
31. **जादा**–शाहजादा, नवाबजादा, हरामजादा, बादशाहजादा।
32. **दान**–इत्रदान, कलमदान, कद्रदान, पायदान, खानदान, शमादान।
33. **नाक**–खतरनाक, दर्दनाक, शर्मनाक, खौफनाक।
34. **नामा**–इकरारनामा, वकालतनामा, कुर्कनामा, रेहनामा, मुख्तारनामा।
35. **बान**–मेहरबान, दरबान, बागबान, मेजबान, मर्त्तबान, बादबान।
36. **मन्द**–अक्लमन्द, हुनरमन्द, दौलतमन्द, जरूरतमन्द, गैरतमन्द।
37. **वर**–ताकतवर, जानवर, नामवर, हमलावर, पेशेवर।
38. **वार**–उम्मीदवार, पैदावार, कसूरवार, सजावार, सिलसिलेवार, माहवार।

"उर्दू-तद्धित (अरबी)"

39. **आनी**–जिस्मानी, रूहानी, मर्दानी, जबानदानी।
40. **इयत**–इन्सानियत, हैवानियत, आदमियत, काबिलियत, खासियत, खैरियत।
41. **ई**–खूनी, हुक्मी, जुल्मी, इल्मी।
42. **ची**–गुलची, मशालची, नकलची, अफीमची, तबलची, खजानची।
43. **म**–बेगम, खानम, जानम।
44. **उल्**–दार–उल्–सलाम, अशरफ–उल्–मखलुकात हबीब–उल्लाह।
45. **ए**–कैसर–ए–हिन्द, कोह–ए–नूर, शेर–ए–हिन्दुस्तान।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए शब्दों में से प्रत्यय छांटकर लिखिए–

1. गगन, जतन .....
2. मुखौटा, सिलौटा .....
3. साजिश, रंजिश .....
4. बुढ़ापा, मोटापा .....
5. बरतना, इतना .....
6. दोस्ताना, शायराना .....

तद्धितवत् प्रयुक्त शब्द (फारसी)

46. **आबाद**–दौलताबाद, हैदराबाद, जैकोवाबाद, मुरादाबाद, मुर्शीदाबाद, औरंगाबाद।
47. **अन्दाज**–तीरंदाज, गोलन्दाज।
48. **इस्तान**–कब्रिस्तान, परिस्तान, पाकिस्तान, रेगिस्तान, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्कीस्तान।

नोट

नोट्स उर्दू तद्धित फारसी एवं उर्दू तद्धित अरबी प्रत्यय हिंदी में समान रूप से प्रयोग होते हैं।

49. **खोर**–आदमखोर, घूसखोर, चुगलखोर, गंदखोर, हरामखोर, गमखोर।
50. **खाना**–दवाखाना, कारखाना, पागलखाना, मुसाफिरखाना।
51. **गाह**–ईदगाह, दरगाह, बन्दरगाह, ख्वाबगाह।
52. **गीर**–राहगीर, दिलगीर, दस्तगीर, जहाँगीर।
53. **दान**–गुलदान, नाबदान, रोशनदान, पानदान।
54. **दार**–मजेदार, दुकानदार, ईमानदार, जमीनदार, रोबदार, दावेदार।
55. **नशीन**–परदानशीन, गद्दीनशीन, तख्तनशीन, जाँनशीन, सज्जादानशीन।
56. **नवीस**–नकलनवीस, नक्शानवीस, चिटनवीस।
57. **नुमा**–कुतुबनुमा, खुशनुमा, किश्तीनुमा, प्यालीनुमा, मस्जिदनुमा।
58. **पोश**–नकाबपोश, सफेदपोश, कतापोश।
59. **फरोश**–जॉफरोश, परदाफरोश, दुख्तरफरोश।
60. **बन्द**–नजरबन्द, हथियारबन्द, नालबन्द, गलाबन्द, ईजारबन्द।
61. **बीन**–खुर्दबीन, दूरबीन, तमाशबीन।
62. **बाज**–दगाबाज, नशाबाज, कुश्तीबाज, मुकदमेबाज, शतंरजबाज।
63. **बाद**–जिन्दाबाद, मुर्दाबाद, मुबारकबाद।
64. **बार**–दरबार, कारोबार।
65. **साज**–घड़ीसाज, जालसाज, जीनसाज, जिल्दसाज, पन्नीसाज दमसाज।
66. **सार**–मिलनसार, चलनसार, खाकसार, किफायतसार।

"प्रत्ययवत् प्रयुक्त शब्द"

67. **अर्थ**–धर्मार्थ, दानार्थ, ज्ञानार्था, प्रकाशनार्थ, आलोचनार्थ, अवलोकनार्थ, विचारार्थ, सेवार्थ, लक्ष्यार्थ, प्रतीकार्य।
68. **अर्थी**–विद्यार्थी, वित्तार्थी, शरणार्थी, ज्ञानार्थी, परमार्थी, स्वार्थी।
69. **अधीन**–इच्छाधीन, विचाराधीन, स्वाधीन, कर्माधीन, राज्याधीन, दैवाधीन, पराधीन।
70. **अतीत**–आशातीत, कल्पनातीत, गुणातीत, कालातीत, नायातीत, भावातीत।
71. **अन्तर**–रूपान्तर, देशान्तर, अर्थान्तर, भाषान्तर, मतान्तर, विषयान्तर, पाठान्तर, स्थानान्तर।
72. **अन्वित**–गौरवान्वित, विस्मयान्वित, भयान्वित, रागान्वित, सेवान्वित, महिमान्वित, मोहान्वित, क्रोधान्वित, लोभान्वित, आश्चार्यान्वित।
73. **अनुरूप**–आज्ञानुरूप, कार्यानुरूप, विषयानुरूप, कथनानुरूप, भावनानुरूप, गुणानुरूप, दृश्यानुरूप।
74. **अनुसार**–समयानुसार, आज्ञानुसार, नियमानुसार, कर्मानुसार, धर्मानुसार, योजनानुसार, इच्छानुसार, सुविधानुसार।
75. **अध्यक्ष**–कोषाध्यक्ष, प्रधानाध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महाध्यक्ष, बलाध्यक्ष, बीजाध्यक्ष, दानाध्यक्ष, पुस्तकालयाध्यक्ष, स्वागताध्यक्ष।
76. **आक्रान्त**–पदाक्रान्त, शोकाक्रान्त, रोगाक्रान्त, भयाक्रान्त, क्षुधाक्रान्त, होहाक्रान्त, चिन्ताक्रान्त, दु:खाक्रान्त।
77. **आकुल**–शंकाकुल, शोकाकुल, चिन्ताकुल, क्षुधाकुल, व्यथाकुल, पिपासाकुल।
78. **आर्त्त**–भयार्त्त, दु:खार्त्त, शोकार्त्त, कामार्त्त, क्षुधार्त्त, तृषार्त्त।

नोट

79. **आचार**–शिष्टाचार, युगाचार, योगाचार, पापाचार, धर्माचार, लोकाचार।
80. **आघात**–कुठाराघात, बज्राघात, पक्षाघात, जनाघात।
81. **आतुर**–क्षुधातुर, कामातुर, प्रेमातुर, भयातुर, हिंसातुर, चिंतातुर।
82. **आशय**–महाशय, जलाशय, पित्ताशय, पक्वाशय, मूत्राशय, सदाशय, आमाशय, गर्भाशय।
83. **आस्पद**–हास्यास्पद, विवादास्पद, घृणास्पद, निन्दास्पद, लज्जास्पद।
84. **आपन्न**–संकटापन्न, दोषापन्न, स्थानापन्न, सुखापन्न, दु:खापन्न, ज्ञानापन्न।
85. **आच्छन्न**–मेघाच्छन्न, शोकाच्छन्न, तिमिराच्छन्न, दु:खाच्छन्न, मापाच्छन्न।
86. **उत्तर**–लोकोत्तर, उत्तरोत्तर, स्नातकोत्तर, पश्चिमोत्तर, पूर्वोत्तर, प्रश्नोत्तर, लघुत्तर।
87. **उन्मुख**–विकासोन्मुख, पतनोन्मुख, पापोन्मुख, धर्मोन्मुख, ह्रासोन्मुख।
88. **कार**–कलाकार, चर्मकार, कर्मकार, स्वर्णकार, ग्रन्थकार, रचनाकार, साहित्यकार, उपन्याकार, चित्रकार।
89. **कर्म**–कृषिकर्म, शिल्पकर्म, क्रियाकर्म, सौरकर्म, शल्यकर्म, देवकर्म।
90. **क्रीड़ा**–कन्दुकक्रीड़ा, बालक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, सिन्दूरक्रीड़ा, मानक्रीड़ा।
91. **कालीन**–प्रात:कालीन, ऊषाकालीन, वेदकालीन, उत्तरकालीन, समकालीन, भूतकालीन, पूर्वकालीन।
92. **गत**–दृष्टिगत, कंठगत, जलगत, व्यक्तिगत, परम्परागत, दिवंगत, हृदयगत, दलगत।
93. **गम**–हृदयंगम, भुजंगम, विहंगम, निहंगम, जंगम, संगम।
94. **ग्रस्त**–रोगग्रस्त, भयग्रस्त, अभावग्रस्त, चिन्ताग्रस्त, शोकग्रस्त, व्याधिग्रस्त।
95. **घ्न**–शत्रुघ्न, कृतघ्न, कृमिघ्न, तमोघ्न, पापघ्न, ज्वरघ्न, यशोघ्न, मलघ्न।
96. **चर**–गुप्तचर, सहचर, जलचर, थलचर, नभचर, खेचर, तृणचर, तमचर, दिविचर, धन्वचर।
97. **चक्र**–जीवनचक्र, कृषिचक्र, घटनाचक्र, धर्मचक्र, जलचक्र, क्रीड़ाचक्र, ज्योतिचक्र, विश्वचक्र, उल्काचक्र, पवनचक्र, नाड़ीचक्र, नीलचक्र।
98. **च्युत**–पदच्युत, धर्मच्युत, कर्मच्युत, अर्थच्युत, स्वर्गच्युत।
99. **चिंतक**–शुभचिन्तक, तत्वचिंतक, हितचिंतक, वेदचिंतक, ईश्वरचिन्तक।
100. **जीवी**–श्रमजीवी, दीर्घजीवी, बुद्धिजीवी, मायाजीवी, भूमिजीवी, परजीवी, जलजीवी, सहजीवी, देवजीवी।
101. **जाल**–वाग्जाल, इन्द्रजाल, शब्दजाल, मायाजाल, प्रेमजाल, मांसजाल, मोहजाल।
102. **तंत्र**–प्रजातंत्र, राजतंत्र, एकतंत्र, जनतंत्र, लोकतंत्र, राष्ट्रतंत्र, अधिनायकतंत्र।
103. **दर्शी**–क्रान्तिदर्शी, त्रिकालदर्शी, दूरदर्शी, तत्त्वदर्शी, प्रत्यक्षदर्शी, स्वप्नदर्शी, प्रियदर्शी।
104. **द्रष्टा**–स्वप्नद्रष्टा, युगद्रष्टा, भविष्यद्रष्टा।
105. **दान**–श्रमदान, अंकदान, विद्यादान, अन्नदान, सिन्दूरदान।
106. **दृष्टि**–दयादृष्टि, कृपादृष्टि, क्रूरदृष्टि, ग्रहदृष्टि, गिधदृष्टि, तत्त्वदृष्टि, नष्टदृष्टि।
107. **धर्म**–मानवधर्म, गुरुधर्म, मातृधर्म, पितृधर्म, राजधर्म, गृहस्थधर्म।
108. **निष्ठ**–सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ, आचारनिष्ठ, नियमनिष्ठ, क्रियानिष्ठ, तपोनिष्ठ, भवनिष्ठ।
109. **नाशक**–विघ्ननाशक, रोगनाशक, बलनाशक, दु:खनाशक, भयनाशक, दर्दनाशक, कीटाणुनाशक, जीवनाशक।
110. **प्रिय**–शान्तिप्रिय, कलहप्रिय, न्यायप्रिय, सत्यप्रिय, प्राणप्रिय, लोकप्रिय।
111. **पटु**–वाक्पटु, कर्मपटु, चाटुपटु, व्यवहारपटु, युद्धपटु।
112. **परायण**–कर्त्तव्यपरायण, धर्मपरायण, न्यायपरायण, नीतिपरायण, सत्यपरायण।

नोट

113. **बद्ध**–धर्मबद्ध, कर्मबद्ध, वचनबद्ध, श्रृंखलाबद्ध, पंक्तिबद्ध, कटिबद्ध, लिपिबद्ध, कोष्ठकबद्ध, नियमबद्ध, पंजीबद्ध, कोटिबद्ध।
114. **भ्रष्ट**–पथभ्रष्ट, स्थानभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट, आचरणभ्रष्ट, नष्टभ्रष्ट।
115. **मूल**–भुजमूल, बाहुमूल, दन्तमूल, शून्यमूल, वर्गमूल, महामूल, धनमूल, कन्दमूल, ग्रन्थिमूल, पदमूल।
116. **यात्रा**–जीवनयात्रा, शोभायात्रा, शवयात्रा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा, समुद्रयात्रा।
117. **रूप**–प्रकृतरूप, विकृतरूप, देवरूप, दानवरूप, पशुरूप, मानवरूप।
118. **लोक**–देवलोक, सुरलोक, त्रिलोक, कर्मलोक, परलोक, ज्ञानलोक, गोलोक, नर्कलोक।
119. **वाद**–समाजवार, साम्यवाद, मानववाद, मानवतावाद, छायावाद, रहस्यवाद, शून्यवाद, व्यक्तिवाद, गाँधीवाद, नाजीवाद, मार्क्सवाद।
120. **व्रत**–अहिंसाव्रत, मौनव्रत, सेवाव्रत, सत्यव्रत, क्षत्रव्रत, देवव्रत, अर्कव्रत, दिग्व्रत, धन्यव्रत, क्षरिव्रत।
121. **वृत्ति**–आकाशवृत्ति, सेवावृत्ति, दस्युवृत्ति, मनोवृत्ति, भिक्षावृत्ति, शिक्षावृत्ति, चक्रवृत्ति, वाह्यवृत्ति, आत्मवृत्ति।
122. **शून्य**–विचारशून्य, ज्ञानशून्य, नीतिशून्य, धर्मशून्य, वेतनाशून्य, कर्मशून्य, चक्रशून्य।
123. **शाला**–देवशाला, प्रयोगशाला, चित्रशाला, नृत्यशाला, पाठशाला, धर्मशाला, पर्णशाला, पाकशाला, व्यायामशाला, यज्ञशाला, गोशाला।
124. **शाली**–भाग्यशाली, प्रभावशाली, वीर्यशाली, बलशाली, गौरवशाली।
125. **शील**–कर्मशील, विनयशील, सहनशील, विचारशील, दहनशील, दमनशील, विकासशील।
126. **स्थ**–गृहस्थ, तटस्थ, उदरस्थ, कूटस्थ, कायस्थ।
127. **साध्य**–कष्टसाध्य, श्रमसाध्य, प्रयत्नसाध्य, बुद्धिसाध्य, धर्मसाध्य।
128. **हर**–कष्टहर, तापहर, शोकहर, मनोहर, ज्ञानहर।
129. **ज्ञ**–नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, वेदज्ञ, गुणज्ञ, इतिहासज्ञ, शास्त्रज्ञ।

23.2 शब्दकोश

1. **कृदंत**– धातु में कृत प्रत्यय लगान से बनने वाला शब्द।
2. **कृत**– किया हुआ, बनाया हुआ, निर्मित
3. **कर्तृ**– करने वाला
4. **अपत्य**– संतान, वंशज

23.3 अभ्यास-प्रश्न

1. प्रत्यय से आप क्या समझते हैं? इसके भेदोपभेदों का उल्लेख कीजिए।
2. संस्कृत प्रत्यय के योग से भाववाचक संज्ञा शब्दों के उदाहरण दीजिए।
3. भाववाचक संज्ञा बनाने वाले हिंदी प्रत्ययों का उल्लेख करें।
4. विशेषण बनाने वाले संस्कृत प्रत्ययों की सहायता से उदाहरण स्वरूप नए शब्द बनाइए।
5. तद्धित प्रत्यय किसे कहते हैं? ये कितने प्रकार के होते हैं?
6. उर्दू तद्धित प्रत्ययों के उदाहरण दीजिए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन **नोट**

1. अन् 2. औटा 3. इश 4. पा 5. तना 6. आना

23.4 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना*– डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, भारती भवन, पटना।
2. *व्याकरण भारती*– प्रो. सुरेंद्र कुमार झा, डॉ. अनुपमा सेठ, एच.जी. पब्लिकेशंस, दिल्ली।

नोट

इकाई–24: पारिभाषिक शब्दावली– अंग्रेजी हिंदी वाक्यांश तथा पारिभाषिक शब्द

अनुक्रमणिका

उद्देश्य

प्रस्तावना

24.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ एवं परिभाषा

24.2 पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता एवं महत्त्व

24.3 अंग्रेजी हिंदी वाक्यांश तथा पारिभाषिक शब्द

24.4 सारांश

24.5 शब्दकोश

24.6 अभ्यास-प्रश्न

24.7 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् योग्य होंगे–

- पारिभाषिक शब्दावली के अर्थ एवं स्वरूप से परिचित होंगे।
- अंग्रेजी हिंदी वाक्यांशों के लिए प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों से परिचित होंगे।

प्रस्तावना

प्रकृति की हर वस्तु परिवर्तनधर्मी है। भाषा भी परिवर्तन की प्रक्रिया से अपने को अनछूई नहीं रख सकी है। इस नियम का अनुपालन करते हुए समय की गरज और जरूरत के अनुसार हिंदी ने भी अपना चेहरा और चरित्र बदला है। हिंदी अब कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंधादि जैसे साहित्यिक तथा समीक्षापरक पारंपरिक स्वरूप को छोड़कर 'कामकाज की भी भाषा' बनी है। यह अब सूर, तुलसी, कबीर, रसखान की साहित्यिक अभिव्यक्ति या व्याकरण तथा भाषा-विज्ञान का माध्यम मात्र नहीं रह गयी है, यह अब सूक्तियों, कहावतों, मुहावरों की भाषा ही नहीं रह गयी है, बल्कि व्यावहारिक धरातल पर यह जमीनी रूप से रोजी-रोटी की भाषा बनी है। यह स्वीकार करने में किसी को एतराज नहीं होना चाहिए कि यह अपने पुराने संस्कारों को छोड़ आज पत्रकारिता, कानून, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, मीडिया, सूचना तकनीक की भाषा बन लोगों को कामकाज और रोजगार मुहैया करा रही है।

24.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ एवं परिभाषा

वस्तुतः विभिन्न कालखण्डों का भाषायी इतिहास हमें यह बताता है कि पारिभाषिक शब्द अपनी सीमा और दायरे में सहज-सामान्य बोलचाल की भाषा में कतई प्रयुक्त नहीं होते, बल्कि इस तरह के शब्दों का प्रयोग बेलाग रूप में, किसी अर्थ विशेष के संदर्भ और संकेत रूप में ही हुआ करता है। बिना बहस के यह भी स्वीकार किया जा

नोट

सकता है कि सामान्य अर्थों में प्रयुक्त न होते हुए भी व्यावहारिक जमीन पर पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग का रकबा या क्षेत्रफल संकुचन तथा विस्तार को समय-समय पर छूता रहता है। डॉ0 भोलानाथ तिवारी भी उक्त तथ्य की ताईद करते हैं, कि अर्थ के स्तर पर पारिभाषिक शब्दों के संबंध में एक यह बात भी उल्लेख्य है कि प्रायः अधिकांश पारिभाषिक शब्द बनते हैं। उदाहरण के लिए 'धातु' का मूल अर्थ है–' वह आधार सामग्री जिससे अनेक चीजें बनती हैं। 'धातु विज्ञान में यही 'धातु' का मूल शब्द अर्थ-संकोच के कारण केवल कुछ थोड़ी आधार सामग्रियों (सोना, लोहा, जस्ता, चाँदी आदि) अर्थात् Metal का ही बोध कराता है, तो व्याकरण में केवल क्रिया बोधक आधार शब्दों (चल, खा, ले, रो आदि) अर्थात् root का। इस तरह 'धातु' शब्द में व्याकरण में भी अर्थ-संकोच हो गया है तथा धातु विज्ञान में भी। अंग्रेजी root के संबंध में भी यही बात है। व्याकरण में अर्थ संकोच के कारण वह एक सीमित अर्थ (धातु) देता है तो वनस्पति विज्ञान में एक दूसरा सीमित अर्थ (जड़)। कुल मिलाकर डॉ. राकेश के शब्दों में इस देश की राजभाषा गत दो-तीन शताब्दियों से अंग्रेजी ही रही है। परिणामतः अंग्रेजी के अनेकानेक शब्द ज्यों-के-त्यों अथवा ध्वनि-परिवर्तन के साथ भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होते रहे हैं। आज देश के संविधान में हिन्दी राजभाषा घोषित कर दी गयी है। अतः हिन्दी परिभाषिक शब्दावली के प्रयोग की सीमा, दैनिक व्यवहार एवं औपचारिक लिखने-पढ़ने एवं विचार-विनिमय के लिए भी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। जीवन में नए-नए आविष्कार एवं अनेकानेक नयी वस्तुओं के आने से तत्संबंधी क्रियाओं और विचारों में नए-नए शब्दों का प्रवेश होता जा रहा है। परिणामस्वरूप अन्य विदेशी भाषाओं तथा अंग्रेजी के अनेक शब्द हिन्दी शब्दावली के प्रमुख अंग बन गए हैं। पर आज की स्थिति को देखकर यह कहना कि ऐसे श्ब्द सदैव के लिए हिन्दी के अभिन्न अंग हो गए, उचित नहीं रहेगा, क्योंकि ऐसे लक्षण देखने को मिले हैं कि अंग्रेजी के महत्त्व और प्रभाव के ह्रास के साथ ही अंग्रेजी शब्द अपने प्रतिद्वन्द्वी हिन्दी-परिणामों को छोड़कर हिन्दी शब्दावली से लुप्त होने की स्थिति में हैं।

नोट्स ज्ञान-विज्ञान की असीम परिधि को व्यक्त करने वाली विशेष शब्दावली पारिभाषिक शब्दावली की संज्ञा पाती है।

विद्वानों ने पारिभाषिक शब्दावली को अपने-अपने ढंग से तराश कर पारिभाषित करने की कोशिश की है। इन सभी परिभाषाओं को यदि परखकर कर देखा जाय तो हम निष्कर्ष के इस पड़ाव पर पहुँचते हैं कि इनमें से कुछ कई स्तरों पर अधूरी और आंशिक हैं, कुछ तुरत-फुरत गढ़ ली गई हैं, तो कुछ अति बौद्धिकता की आँच से पीड़ित हैं और कई अपने ही अन्तर्विरोधों की शिकार हैं, फिर भी, सभी परिभाषाओं को नकारना संभव नहीं बहरहाल, कुछ प्रमुख परिभाषाओं को निम्नवत् देखा जा सकता है–

1. **चैम्बर्स टेक्निकल डिक्शनरी** में पारिभाषिक शब्द को इस प्रकार रूपायित किया गया है-''Technical terms in symbol adopted or inverted by special and technicians to facilitate the precise recording ideas.'' अर्थात् पारिभाषिक शब्दावली वस्तुतः विशेषज्ञों एवं तकनीकीविदों के अपने विशेष विचारों को लिपिबद्ध करने के लिए ग्रहण, अनुकूलन तथा निर्माण के द्वारा तैयार किए जाने वाले प्रतीक हैं।''

2. एक अन्य सुप्रसिद्ध शब्दकोश रेण्डम डिक्शनरी ने पारिभाषिक शब्दावली को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''A word or phrase used in definite or precise sense in some particular subject as a science or art a technical impression (more fully term of art.)'' अर्थात् विशिष्ट विषय जैसे विज्ञान अथवा कला विषय की तकनीकी अभिव्यक्ति के लिए निश्चित अथवा विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त एक शब्द, अशिकांशतः साधारण शब्द होते हैं।

नोट

3. डॉ. रघुवीर के अनुसार, पारिभाषिक शब्द किसको कहते हैं, जिसकी परिभाषा की गई हो। पारिभाषिक शब्द का अर्थ है, जिसकी सीमाएँ बाँध दी गई हों। जिन शब्दों की सीमा बाँध दी जाती है, वे पारिभाषिक शब्द हो जाते हैं और जिनकी सीमा नहीं बाँधी जाती, वे साधारण शब्द होते हैं।

4. डॉ. भोलानाथ तिवारी–के अनुसार पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं, जो सामान्य व्यवहार की भाषा के शब्द न होकर ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों (जैसे– रसायन, भैतिकी, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, समाज शस्त्र, दर्शन, अलंकार शास्त्र, गणित, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि इत्यदि) के होते हैं तथा विशिष्ट ज्ञान, विज्ञान या शास्त्र में जिनका अर्थ सीमा परिभाषित या निश्चित रहती है।

5. डॉ. माईदयाल जैन के विचार से पारिभाषिक शब्दों से अभिप्राय उन शब्दों से है, जो किसी विशेष विज्ञान, शिल्प विज्ञान, उद्योग, व्यवसाय, घरेलू दस्तकारी, रेल, तार-डाक, राज-शासन न्याय साहित्य तथा कला आदि में किसी विशेष अर्थ को बताते हैं।

6. डॉ0 दंगल झाल्टे का कहना है कि जो शब्द सामान्य व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त न होकर ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विषय एवं संदर्भ के अनुसार विशिष्ट किन्तु निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें पारिभाषिक शब्द कहते हैं।

7. डॉ0 विनोद गोदरे लिखते हैं कि किसी विशिष्ट ज्ञान शाखा की विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त विशिष्ट शब्द पारिभाषिक शब्द कहलाता है। यह शब्द विशिष्ट ज्ञान शाखा के किसी सुनिश्चित विशिष्ट अर्थ को ही ध्वनित करता है। इसके अलावा उक्त संदर्भ में उसके लिए न तो किसी प्रकार के अर्थ-भेद की गुंजाइश होती है और न किसी प्रकार के अनिश्चय का ही वह वाहक होता है। वह तो बस मीन की आँख के लक्ष्य का बेधी तथा साधक होता है।

8. डॉ0 देवेन्द्र नाथ शर्मा का विचार है कि पारिभाषिक शब्दावली ही वह कच्चा माल है, जिससे कुछ भी बनाया जा सकता है। शिक्षा में, शासन में, विधि में, चाहे कहीं भी हिन्दी का प्रयोग करना है, तो उपयुक्त शब्दावली होनी चाहिए और उसके अभाव में न तो कार्यालयों में कार्य हो सकता है, न विश्वविद्यालयों में शिक्षा दी जा सकती है और न न्यायालयों में न्याय की व्यवस्था संभव है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि पारिभाषिक शब्द दैनिक व्यवहार के शब्द नहीं होते। वस्तुत: ज्ञान की विशिष्ट या निश्चित शाखा में दक्षता प्राप्त करने वाले लोग हो इस तरह के शब्दों का इस्तेमाल करते हैं।

टास्क विधि के क्षेत्र में प्रयोग होने वाले कुछ पारिभाषिक शब्दों के उदाहरण दीजिए।

24.2 पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता एवं महत्त्व

किसी भाषा के लिए पारिभाषिक शब्दावली का महत्त्व असंदिग्ध है। **डॉ. माई दयाल जैन** तो यहाँ तक कहते हैं कि किसी भी भाषा के लिए शब्दावली का स्थान पहला है और साहित्य का दूसरा। संभवत: इसीलिए वे यह भी स्वीकारते हैं कि हिन्दी और दूसरी भाषाओं में वैज्ञानिक तथा शिल्प-विज्ञान संबंधी उच्च कोटि का साहित्य और उस साहित्य के लिए उपर्युक्त पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने का काम अत्यन्त आवश्यक है। वैज्ञानिक साहित्य और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का आपस में गहरा संबंध है। पश्चिमी भाषाविद् **मोरिये पेई** का भी यही विचार है कि यह अनुमान लगाया गया है कि सभी सभ्य भाषाओं की शब्दावलियों में आधे शब्द वैज्ञानिक तथा शिल्प-विज्ञान संबंधी पारिभाषिक शब्द हैं, जिसमें से बहुत से शब्द पूरी तरह से अन्तर्राष्ट्रीय हैं, तो इधर, वैज्ञानिक तथा शिक्षाशास्त्री

नोट

डॉ. शन्तिस्वरूप भटनागर का भी मानना था कि समस्त भारत के शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि देश में आधुनिक विज्ञानों के ज्ञान के प्रचार में सबसे बड़ी बाधा समुचित पारिभाषिक शब्दावली का अभाव है। कुल मिलाकर यह कि उक्त उद्धरण इस बात के कयास और शहादत के लिए पर्याप्त हैं कि किसी भी भाषा के लिए पारिभाषिक शब्दावली कितनी आवश्यक है।

दरअसल, प्रौद्योगिकी और विज्ञान-संबंधी विचारों का प्रकटीकरण प्रामाणिक और जीवंत पारिभाषिक शब्दावली के अभाव में कठिन काम है। उदाहरण के लिए यूरोपीय राष्ट्रों की सभी भाषाओं की शब्दावली में आज तक एकरूपता नहीं लायी जा सकी है। हर राष्ट्र के लोगों की अपनी-अपनी प्रकृति ने एक ही शब्द ऐसे अलग-अलग रूपों में बदल दिया है कि साधारण व्यक्ति उन्हें पहचान ही नहीं सकता। यह सोचकर चलना कि विश्व में किसी युग में विज्ञान की कभी एक भाषा बन सकेगी, मात्र एक कल्पना है, जिसे कभी भी साकार नहीं किया जा सकेगा। इसलिए यह जरूरी है कि भारतीय भाषाओं की अपनी पारिभाषिक शब्दावली हो, जिसमें हम अपने संचित एवं सवलित ज्ञान को लिपिबद्ध कर सकें। **डॉ. भोलानाथ तिवारी** कहते हैं कि विभिन्न शास्त्रीय विषयों की अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्द बड़े ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। शास्त्रीय विषयों में यह बहुत आवश्यक होता है कि वक्ता या लेखक जो कहना या लिखना चाहे, श्रोता या पाठक तक वह बात ठीक उसी रूप में बिना अर्थ-विस्तार या अर्थ-संकोच के स्पष्ट एवं असंदिग्ध रूप में पहुँच जाय। ऐसा तभी हो सकता है जब उस विषय के संकल्पना सूचक या वस्तुसूचक पारिभाषिक शब्द सुनिश्चित हों। यह सुनिश्चित दो दिशाओं में होता है– एक तो यह कि उस शब्द का अर्थ पूर्णत: निश्चित हो, दूसरे उस भाषा के उस विषय के सभी विद्वान् उस शब्द का उसी अर्थ में प्रयोग न करेंगे तो उस विद्वानों में उस विषय में आपसी यथातथ्य विचार-विनिमय संभव न होगा। यदि एक उसका अर्थ अलग ले और दूसरा उसका दूसरा अर्थ ले, तो एक अलग बात कहेगा और दूसरा अलग बात समझेगा। इस प्रकार एक कालिक विचार-विनिमय में स्पष्ट और अपेक्षित अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्दों का महत्त्व असंदिग्ध है। बहुकालिक विचार-विनिमय की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कम नहीं है। सुनिश्चित पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से ही यह संभव होगा कि आज किसी विषय पर कोई लेखक कोई बात लिखे। 10, 20, 25, 50, 100 वर्ष बाद लेखन काल के पारिभाषिक अर्थ के आधार पर लोग मूल लेखक की बात को ठीक रूप में समझ लें। कुल मिलाकर कोई भी भाषा ऐसे विशिष्ट शब्दों का पृथक से विवेचन नहीं करती, वरन् ये शब्द भी भाषा की संपन्नता में विशेष महत्त्व रखते हैं।

क्या आप जानते हैं स्वतंत्र देश की अपनी निजी राजभाषा में पारिभाषिक शब्दों का महत्त्व एवं उपयोगिता और अधिक हो जाती है क्योंकि शासन संबंधी सभी कार्य उसकी अपनी भाषा में होते हैं। इस दृष्टि से हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का महत्त्व बहुत अधिक है।

स्व-मूल्यांकन

दिए गए कथन के सामने सही [✓] अथवा गलत [X] का निशान लगाइए–

1. पारिभाषिक शब्द दैनिक व्यवहार के शब्द नहीं होते। ☐
2. पारिभाषिक शब्द हिंदी साहित्य का अभिन्न अंग हैं। ☐
3. वर्तमान संविधान के अनुसार भारत की राजभाषा हिंदी है। ☐
4. हिंदी में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की प्रक्रिया सन् 1857 के बाद से ही शुरू हो गयी थी। ☐

नोट

24.3 अंग्रेजी हिन्दी वाक्यांश तथा परिभाषिक शब्द

1. Above mentioned	उपर्युक्त
2. Accord sanction	स्वीकृति दी जाए
3. Acceptance is awaited	स्वीकृति की प्रतीक्षा है
4. Accepted on trail basis	परीक्षण के आधार पर स्वीकृति
5. Acknowledgment may be obtained	इसकी पावती मांगी जाए
6. Action may be taken as proposed	यथा प्रस्तावित कार्यवाही की जाए
7. Action is required to be taken early	शीघ्र कार्यवाही अपेक्षित है
8. Actual expenses incurred may be paid	वास्तविक खर्च का भुगतान किया जाए
9. Accede to his request	उसकी प्रार्थना स्वीकार करें
10. Act of omission and commission	भूल चूक लेनी देनी
11. Adjourned sine die	अनिश्चित काल के लिए स्थगित
12. Advice accordingly	तद्नुसार सूचित करें
13. All concerned to note	संबधित व्यक्ति ध्यान में रखें
14. Appear for interview	साक्षात्कार के लिए उपस्थित होइए
15. Approved as proposed	यथा प्रस्तावित अनुमोदित
16. Arrangement may be made	व्यवस्था की जाए
17. As directed	यथा निर्देशित
18. As desired	यथा वांछित
19. As modified	यथा परिष्कृत संशोधित
20. Alteration in draft	प्रारूप में परिवर्तन
21. As per list enclosed	संलग्न सूची के अनुसार
22. Attention is invited to	की ओर ध्यान आकर्षित किय जाता है
23. Background of the case	मामले की पृष्ठभूमि
24. Before issue	जारी करने से पूर्व
25. Biased opinion	पक्षपातपूर्ण मत
26. Break in service due to bad conduct	दुर्व्यवहार के कारण सेवाकाल भंग
27. By return of post	लौटती डाक से
28. By Authority of	के अधिकार
29. Budget provision exists	बजट में व्यवस्था है
30. Bill outstanding	बकाया बिल
31. Case is closed now	प्रकरण के संबंध में कार्यवाही समाप्त

नोट

32. Carry out orders	आदेशों का पालन करें
33. Cease to have effect	अप्रभावी होना
34. Charge handed over	कार्यभार संभाल दिया
35. Condone	क्षमा करना / छूट देना
36. Come into force	लागू होना
37. Contempt of court	न्यायालय अवमानना
38. Checked and found correct	जांच की और सही पाया
39. Decision is awaited	निर्णय की प्रतीक्षा है
40. Delay was unavoidable	विलम्ब अपरिहार्य था
41. Deemed to be	समझा जाएगा
42. Delay is regretted	विलम्बन के लिए खेद है
43. Delete the following line	नीचे की पंक्ति हटा दें
44. Do the needful	आवश्यक कार्यवाही करें
45. Duly signed	विधिवत हस्ताक्षर किया हुआ
46. Error is regretted	भूल के लिए खेद है
47. Exact should be taken	उद्धरण किया जाना चाहिए
48. Explanation may be called for	स्पष्टीकरण मांगा जाना चाहिए
49. Ex-parte Statement	एकपक्षीय बयान
50. Facilities are available	सुविधाएं उपलब्ध हैं
51. Figures do not tally	आंकड़े मेल नहीं खाते
52. For inquiry and report	जांच को प्रतिवेदन के लिए
53. For disposal	निपटान के लिए
54. For favors of orders	ओदश देने की कृपा करें
55. Forwarded and recommended	अग्रेषित एवं संस्तुत
56. Forwarded for ready reference	तत्काल संदर्भ के लिए प्रेषित
57. Government is of the opinion	सरकार का मत है
58. Hard and fast rule	पक्का नियम
59. Hold in abeyance	रोक रखना
60. I am desired to say	मुझे निवेदन करने के लिए कहा गया है
61. Inconfirmation of your letters	आपके पत्र की पुष्टि में
62. Incontravention	के विपरीत
63. Inpursance of the policy	नीति के अनुसार
64. Issue as modified	यथा परिष्कृत जारी कीजिए

नोट

65. Item by item	मदवार
66. Joined duty	कार्यभार ग्रहण किया
67. Joining report	कार्यग्रहण रिपोर्ट सूचना
68. Keep with the file	फाइल के साथ देखिए
69. Last pay certificate	अन्तिम वेतन प्रमाण पत्र
70. Lowest Quotation	न्यूनतम भाव
71. Make Interim arrangements	अंतिरम प्रबन्ध करें
72. May be kept in view	ध्यान में रखा जाए
73. Mentioned against each	प्रत्येक के सामने लिखा हुआ
74. Nature of work	कार्य स्वरुप
75. Natglect of duty	कर्त्तव्य की उपेक्षा
76. No bar	कोई प्रतिबंध नहीं
77. No objection certificate	अनापत्ति प्रमाण पत्र
78. Noted please	नोट कर लिया
79. Not satisfactory	संतोषजनक नहीं
80. Null and void	व्यर्थ और अमान्य, प्रवृत्तिहीन
81. Obligatory	अनिवार्य
82. On temporary basis	अस्थायी आधार पर
83. Otherwise action will be taken	अन्यथा कार्यवाही की जाएगी
84. Office proposes	कार्यलय का प्रस्ताव
85. Pay order	भुगतान आदेश
86. Please expedite reply	कृपया शीघ्र उत्तर दें
87. Posting order	तैनाती ओदश
88. Prime facia	प्रथम दृष्टि में
89. Personal attention is required	वैयक्तिक ध्यान की आवश्यकता है
90. quash the order	ओदश रद्द करें
91. quick disposal	तुरन्त निपटान
92. Returned duly endorse	यथोचित रूप से पृष्ठांकित
93. Remarks adverse	प्रतिकूल अभियुक्तियां
94. Subject to approval	अनुमोदन की शर्त पर
95. Terms of reference	विचारणीय विषय
96. Under consideration	विचाराधीन
97. Violation of rules	नियमों का उल्लंघन

नोट

24.4 सारांश

हिंदी अब कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंधादि जैसे साहित्यिक तथा समीक्षापरक पारंपरिक स्वरूप को छोड़कर 'कामकाज की भी भाषा' बनी है। यह अब सूर, तुलसी, कबीर, रसखान की साहित्यिक अभिव्यक्ति या व्याकरण तथा भाषा-विज्ञान का माध्यम मात्र नहीं रह गयी है, यह अब सूक्तियों, कहावतों, मुहावरों की भाषा ही नहीं रह गयी है, बल्कि व्यावहारिक धरातल पर यह जमीनी रूप से रोजी-रोटी की भाषा बनी है। यह स्वीकार करने में किसी को एतराज नहीं होना चाहिए कि यह अपने पुराने संस्कारों को छोड़ आज पत्रकारिता, कानून, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, मीडिया, सूचना तकनीक की भाषा बन लोगों को कामकाज और रोजगार मुहैया करा रही है।

वस्तुतः विभिन्न कालखण्डों का भाषायी इतिहास हमें यह बताता है कि पारिभाषिक शब्द अपनी सीमा और दायरे में सहज-सामान्य बोलचाल की भाषा में कतई प्रयुक्त नहीं होते, बल्कि इस तरह के शब्दों का प्रयोग बेलाग रूप में, किसी अर्थ विशेष के संदर्भ और संकेत रूप में ही हुआ करता है।

किसी अर्थ विशेष के संदर्भ और संकेत रूप में ही हुआ करता है। बिना बहस के यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि सामान्य अर्थों में प्रयुक्त न होते हुए भी व्यावहारिक जमीन पर पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग का रकबा या क्षेत्रफल संकुचन तथा विस्तार को समय-समय पर छूता रहता है। डॉ0 भोलानाथ तिवारी भी उक्त तथ्य की ताईद करते हैं, कि अर्थ के स्तर पर पारिभाषिक शब्दों के संबंध में एक यह बात भी उल्लेख्य है कि प्रायः अधिकांश पारिभाषिक शब्द बनते हैं। उदाहरण के लिए 'धातु' का मूल अर्थ है–' वह आधार सामग्री जिससे अनेक चीजें बनती हैं। 'धातु विज्ञान में यही 'धातु' का मूल शब्द अर्थ-संकोच के कारण केवल कुछ थोड़ी आधार सामग्रियों (सोना, लोहा, जस्ता, चाँदी आदि) अर्थात् Metal का ही बोध कराता है, तो व्याकरण में केवल क्रिया बोधक आधार शब्दों (चल, खा, ले, रो आदि) अर्थात् root का। इस तरह 'धातु' शब्द में व्याकरण में भी अर्थ-संकोच हो गया है तथा धातु विज्ञान में भी।

जीवन में नए-नए आविष्कार एवं अनेकानेक नयी वस्तुओं के आने से तत्संबंधी क्रियाओं और विचारों में नए-नए शब्दों का प्रवेश होता जा रहा है। परिणामस्वरूप अन्य विदेशी भाषाओं तथा अंग्रेजी के अनेक शब्द हिन्दी शब्दावली के प्रमुख अंग बन गए हैं।

डॉ. विनोद गोदरे लिखते हैं कि किसी विशिष्ट ज्ञान शाखा की विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त विशिष्ट शब्द पारिभाषिक शब्द कहलाता है। यह शब्द विशिष्ट ज्ञान शाखा के किसी सुनिश्चित विशिष्ट अर्थ को ही ध्वनित करता है। इसके अलावा उक्त संदर्भ में उसके लिए न तो किसी प्रकार के अर्थ-भेद की गुंजाइश होती है और न किसी प्रकार के अनिश्चय का ही वह वाहक होता है। वह तो बस मीन की आँख के लक्ष्य का बेधी तथा साधक होता है।

हिन्दी और दूसरी भाषाओं में वैज्ञानिक तथा शिल्प-विज्ञान संबंधी उच्च कोटि का साहित्य और उस साहित्य के लिए उपर्युक्त पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने का काम अत्यन्त आवश्यक है। वैज्ञानिक साहित्य और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का आपस में गहरा संबंध है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि विभिन्न शास्त्रीय विषयों की अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्द बड़े ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। शास्त्रीय विषयों में यह बहुत आवश्यक होता है कि वक्ता या लेखक जो कहना या लिखना चाहे, श्रोता या पाठक तक वह बात ठीक उसी रूप में बिना अर्थ-विस्तार या अर्थ-संकोच के स्पष्ट एवं असंदिग्ध रूप में पहुँच जाय। ऐसा तभी हो सकता है जब उस विषय के संकल्पना सूचक या वस्तुसूचक पारिभाषिक शब्द सुनिश्चित हों।

नोट

24.5 शब्दकोश

1. **ताईद–** समर्थन, पुष्टि
2. **कतई–** निश्चित, बिल्कुल, एकदम, हरगिज, तत्काल
3. **कयास–** कल्पना, अनुमान
4. **शहादत–** गवाही, साक्ष्य, शहीद होने का भाव

24.6 अभ्यास-प्रश्न

1. पारिभाषिक शब्दावली से आप क्या समझते हैं? परिभाषा देकर समझाइए।
2. कार्यालयी कामकाज में पारिभाषिक शब्दावली का क्या महत्त्व है?

उत्तरः स्व-मूल्यांकन

1. ☑ 2. ☒ 3. ☑ 4. ☒

24.7 संदर्भ पुस्तकें

पुस्तकें

1. *प्रयोजनमूलक हिंदी की नयी भूमिका–* कैलाशनाथ पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
2. *प्रयोजनमूलक हिंदी–* माधव सोनटक्के, लोभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in